ओं नमः

प्रस्तावना।

प्रिय पाठकगण! आज मैं श्रीमहावीर प्रभुकी कृपासे आपके सामने यह क्षपणासार-गर्भित लब्धिसार ग्रंथ संस्कृत छाया तथा संक्षिप्त हिंदीभाषाटीका सहित उपस्थित करता हूं; जो कि गोंमटसारका परिशिष्ट भाग है। गोंमटसारके दोनों भागोंमें जीव और कर्मका स्वरूप विस्तारसे दिखलाया गया है। तथा इस उक्त ग्रंथमें कर्मोंसे छूटनेका उपाय विस्तार सहित दिखलाया है। सब कर्मोंमें मोहनीयकर्म बलवान है, उसमें भी दर्शनमोहनीय जिसका दूसरा नाम मिथ्यात्वकर्म है सबसे अधिक बलवान है। इसी कर्मके मौजूद रहनेसे जीव संसारमें भटकता हुआ दुःख भोगरहा है। यदि यह दर्शनमोहनीयकर्म छूट जावे तो जीव सभी कर्मोंसे मुक्त होकर अनन्तसुखमय अपनी स्वाभाविक अवस्थाकोप्राप्त होसकता है।

इसीकारण इस लब्धिसार ग्रंथमें पहले मिथ्यात्वकर्म छुड़ानेकेलिये पांच लब्धियोंका वर्णन है। पांचोंमें भी मुख्यतासे करणलब्धिका स्वरूप अच्छीतरह दिखलाया गया है। इसीसे मिथ्यात्व कर्म छूटकर सम्यक्त्वगुणकी प्राप्ति होती है। यही गुण मोक्षका मूलकारण है। उसके बाद चारित्रकी प्राप्तिका उपाय बतलाया है। चारित्रके कथनमें चारित्रमोहनीयकर्मके उपशम व क्षय (नाश) होनेका क्रम दिखलाया है। उसके बाद बाकी कर्मोंके क्षय होनेकी विधि बतलाई गयी है। कर्मोंका क्षय होनेपर मोक्षको प्राप्त जीवके मोक्षस्थानका स्वरूप दिखलाके ग्रंथ समाप्त किया गया है।

यह ग्रंथ श्रीचामुंडराय राजाके प्रश्नके निमित्तसे श्रीनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्तीने बनाया है जोकि कषायप्राभृत नामा जयधवलसिद्धांतके पंद्रह अधिकारोंमेंसे पश्चिमस्कंध नामके पंद्रहवें अधिकारके अभिप्रायसे गर्भित है। इसकी संस्कृतटीका उपशम चारित्रके अधिकारतक केशववर्णीकृत मिलती है आगेके क्षपणाधिकारकी नहीं।

इसकी भाषाटीका श्रीमान् विद्वच्छिरोमणि टोडरमल्लजीने बनाई है, वह बहुत विस्तारसे है। उसमें उन्होंने लिखा है कि उपशमचारित्रतक तो संस्कृतटीकाके अनुसार व्याख्यान किया गया है। किंतु कर्मोंके क्षपणा अधिकारके गाथाओंका व्याख्यान श्रीमाधवचंद्र आचार्यकृत संस्कृतगद्य रूप क्षपणासारके अनुसार अभिप्राय शामिल कर किया गया है। इसीसे इस ग्रंथका नाम लब्धिसार क्षपणासार प्रसिद्ध है।

इस ग्रंथके कर्ता श्रीनेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्तीका जीवन—चरित्र जीवकांड भाषाटीकाकी भूमिकामें विस्तारसे लिखा गया है इससे यहां लिखनेकी विशेष आवश्यकता नहीं है। लेकिन इसके भाषाटीकाकारके विषयमें कुछ लिखना है जोकि वे स्वयं लिखगये हैं ।

इस ग्रंथकी भाषाटीका रचनेवाले श्रीमद्विद्वद्वर्य **टोडरमल्लजी** हैं । इनकी जन्मभूमि ढूंढार देशमें जयपुरनगर है । उन्होंने लिखा है "रायमल्लनामके साधर्मी भाईकी प्रेरणासे संवत् १८१८ माघसुदि पंचमीके दिन सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामकी भाषाटीका बनाके पूर्ण की" । इससे उनका जन्म संवत् भी लगभग अठारह सौके है ।

इसकी भाषाटीकाका बहुतविस्तार होनेसे सबका मुद्रित करना दुस्साध्य समझकर श्रीपरमश्रुतप्रभावकमंडलके ऑनरेरी सेक्रेटरी श्रीमान् शा० **रेवाशंकर** जगजीवन जह्वेरीकी प्रेरणासे मैंने संस्कृतछाया तथा संक्षिप्त हिंदी भाषाटीका तयार की है । यद्यपि इस भाषानुवादमें सब विषयोंका खुलासा नहीं आया है तो भी मैं समझता हूं कि मूलार्थ कहीं नहीं छोड़ा गया है । सब विषयोंका खुलासा इसकी बड़ी भाषाटीकामें ही होसकता है । इस समयके अनुकूल गाथा सूची और विषयसूची भी लगादी गई हैं इसलिये पाठकोंको बांचनेमें सुगमता होसकती है ।

यह भाषाटीका बड़ी टीकामें प्रवेश होनेकेलिये सहायकरूप अवश्य होगी यह मैं आशा करता हूं । तथा तत्त्वज्ञानी स्वर्गीय श्रीमान् **रायचंद्रजी** द्वारा स्थापित श्रीपरमश्रुतप्रभावकमंडलकी तरफसे इस ग्रंथका जो उद्धार हुआ है इसलिये उक्तमंडलके सेक्रेटरी तथा अन्य सभ्योंको कोटिशः धन्यवाद देता हूं कि जिन्होंने उत्साहित होकर इस महान् ग्रंथका प्रकाशन कराके भव्यजीवोंका महान् उपकार किया है । द्वितीय धन्यवाद श्रीमान् स्याद्वादवारिधि गुरुवर **पं० गोपालदासजी** वरैयाको दिया जाता है कि जिन्होंके ज्ञानदानकी सहायता पाकर उनके चरणकमलोंकी कृपासे अपनी बुद्धिके अनुसार यह संक्षिप्त भाषाटीका निर्विघ्न समाप्त कीगई है ।

इस ग्रंथकी तथा गोंमटसार ग्रंथकी विशेष संज्ञाओंके तथा गणितके जाननेके लिये इसी मंडलकी तरफसे इन्हीं नेमिचंद्राचार्यका **त्रिलोकसार** ग्रंथ भी संस्कृतटीका तथा भाषाटीकासहित शीघ्र ही प्रकाशित किया जायगा ।

अब अंतमें पाठकोंसे मेरी यह प्रार्थना है कि जो प्रमादसे, दृष्टिदोषसे तथा बुद्धिकी मंदतासे कहींपर अशुद्धियां रहगई हों तो पाठकगण मेरे ऊपर क्षमा करके शुद्ध करते हुए पढ़ें । क्योंकि ऐसे कठिनविषयमें अशुद्धियोंका रहजाना संभव है । इसतरह धन्यवाद पूर्वक प्रार्थना करता हुआ इस प्रस्तावनाको समाप्त करता हूं । कृत पल्लवितेन विज्ञेषु ।

जैनग्रन्थ उद्धारककार्यालय खत्तरगली हौदावाडी
पोष्ट गिरगाव—बंबई
आसोज सुदि १५ वी० सं० २४४२

जैनसमाजका सेवक
मनोहरलाल
पाढम (मैनपुरी) निवासी

लब्धिसारके गाथाओंकी अकारादि-क्रमसे सूची।

गाथा. ... पृ. गा.

रायचंद्रजैनशास्त्रमालाद्वारा प्रकाशित ग्रंथोंकी सूची।

१ पुरुषार्थसिद्ध्युपाय भाषाटीका–यह प्रसिद्ध शास्त्र दूसरीवार छपाया गया है। न्यों. १ रु०.
२ पंचास्तिकाय संस्कृत भा० टी०–इसमें दो संस्कृत टीकायें और एक हिंदी भाषाटीका है। यह भी दूसरी वार छपाया गया है। न्यों० २ रु०.
३ ज्ञानार्णव भा० टी०–इसमें ब्रह्मचर्यका विस्तारसे कथन है दूसरी वार छपाया गया है। न्यों० ४ रु.
४ सप्तभंगी तरंगिणी भा० टी०–यह भी दूसरी वार छपाई गई है। न्यों. १ रु०.
५ बृहद्द्रव्यसंग्रह सं० भा टी०–षट्द्रव्यका उत्तम कथन किया है। न्यों २ रु०.
६ द्रव्यानुयोगतर्कणा भा० टी०–इसमें नयोंका कथन है। न्यों० २ रु०.
७ सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्र भा० टी०–इसकी थोड़ी प्रतियां रहीं थीं इसलिये अब दूसरी वार छपाया जा रहा है। अबकी वार पहलेकी त्रुटियां निकाल दी जायगीं। न्यों० २ रु०.
८ स्याद्वादमंजरी सं० भा० टी०–इसमें छहों मतोंका विवेचन है। न्यों० ४ रु०.
९ गोंमटसार (जीवकांड) संस्कृत छाया और संक्षिप्त हिन्दी भा० टी०। न्यों. २॥ रु०.
१० गोंमटसार (कर्मकांड) संस्कृत छाया और संक्षिप्त हिन्दी भा० टी० न्यों० २ रु०.
११ प्रवचनसार सं०भा०टी०–इसमें दो संस्कृतटीका और एक हिन्दी भाषाटीका है। न्यों. ३ रु०.
१२ परमात्मप्रकाश सं० भा० टी०–यह अध्यात्म ग्रंथ है। न्यों० ३ रु०.
१३ लब्धिसार (क्षपणासार गर्भित) संस्कृत छाया और संक्षिप्त हिन्दी भाषाटीका सहित छपाया गया है। न्यों० १॥ रु०.
१४ मोक्षमाला–यह ग्रंथ श्रीमद् रायचंद्रजीकृत है। गुजराती भाषामें छपा है। न्यों० बार आना।
१५ भावनाबोध–यह ग्रंथ भी उक्त महान् पुरुष कृत है। गुजराती भाषामें छपा है। न्यों० चार आना।

आवश्यक सूचना।

सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम भा० टी०–यह ग्रंथ दूसरी वार शुद्ध कराके छपाया जा रहा है। पहली वारकी सब त्रुटियां यथा संभव निकाल दी जावेंगी।

त्रिलोकसार–यह ग्रंथ श्रीमन्नेमिचंद्राचार्य सिद्धांत चक्रवर्ती विरचित मूल गाथारूप है। गोंमटसार वगैरहकी संज्ञाओंके जाननेकेलिये तथा तीन लोककी रचनाका स्वरूप और विशेषकर भूगोल, खगोल, भरतखंडकी सृष्टिकी रचना और संहार इत्यादि बहुत बातोंके विस्तारसे जाननेकेलिये संस्कृत टीका और हिन्दी भाषाटीका इन दो टीकाओं सहित इसी मंडलसे शीघ्र प्रकाशित कर पाठकोंके सामने एक वर्षके अंदर उपस्थित किया जायगा।

यह संस्था किसी स्वार्थकेलिये नहीं है केवल प्राचीन आचार्योंके ग्रंथोंका उद्धार कर पाठकोंके उपकारके वास्ते खोली गई है। जो द्रव्य आता है वह इसी जैनशास्त्रमालामें उत्तम ग्रंथोंके उद्धारके वास्ते लगाया जाता है। इति शम्।

ग्रन्थोंके मिलनेका पता–

शा० रेवाशंकर जगजीवन जौंहरी
आनरेरी व्यवस्थापक श्रीपरमश्रुत प्रभावकमंडल
जौंहरी बजार खाराकुवा पो० नं० २ बंबई।

श्रीनेमिचंद्राय नमः

अथ छायासंक्षिप्तहिंदीभाषासहितः

लब्धिसारः

(क्षपणासारगर्भितः)

मंगलाचरण ।

दोहा—सम्यग्दर्शन चरन गुन, पाय कुकर्मक्षिपाय ।
केवलज्ञान उपाय प्रभु, भए भजौं शिवराय ॥ १ ॥
लब्धिसारकों पायकें, करिकें क्षपणासार ।
हो है प्रवचनसारसों, समयसार अविकार ॥ २ ॥

पहले श्री गोमटसार शास्त्रमें जीवकांड कर्मकांड अधिकारोंसे जीव और कर्मका स्वरूप दिखलाया उसको यथार्थ जानकर मोक्षमार्गमें प्रवर्त होना चाहिये क्योंकि आत्माका हित मोक्ष है । मोक्षके मार्ग (उपाय) दर्शन व चारित्र हैं और सम्यक् ज्ञान भी है परंतु यहां गुणस्थानके क्रममें सम्यग्ज्ञानकी गौणता है इसीलिये मुख्यतासे दर्शन चारित्रकी ही लब्धि (प्राप्ति) का उपाय बतलाते हुए प्रथम अपने इष्ट देवको नमस्कार करते हैं:—

सिद्धे जिणिंदचंदे आयरिय उवज्झाय साहुगणे ।
वंदिय सम्मद्दंसण-चरित्तलद्धिं परूवेमो ॥ १ ॥

सिद्धान् जिनेंद्रचंद्रान् आचार्योपाध्यायसाधुगणान् ।
वंदित्वा सम्यग्दर्शनचारित्रलब्धी प्ररूपयामः ॥ १ ॥

अर्थ—सिद्ध अर्हंत आचार्य उपाध्याय और साधुओंको नमस्कारकर हम सम्यग्दर्शन-लब्धि और चारित्रलब्धि—इन दोनोंका स्वरूप कहेंगे ।

आगे दर्शनलब्धिके कथनमें पहले प्रथमोपशम सम्यक्त्व होनेका विधि कहते हैं:—

चदुगदिमिच्छो सण्णी पुण्णो गब्भजविसुद्धसागारो ।
पढमुवसमं स गिण्हदि पंचमवरलद्धिचरिमम्हि ॥ २ ॥

चतुर्गतिमिथ्यः संज्ञी पूर्णः गर्भजो विशुद्धः साकारः ।
प्रथमोपशमं स गृह्णाति पंचमवरलब्धिचरमे ॥ २ ॥

अर्थ—चारों गतिवाला अनादि या सादि मिथ्यादृष्टि संज्ञी (मनसहित) पर्याप्त गर्भज जन्मवाला मंदकोपादिकषायरूप विशुद्धताका धारक गुणदोषविचाररूप साकार ज्ञानोपयोगवाला जो जीव है वही पांचवीं लब्धिके अनिवृत्तिकरण भागके अंतसमयमें प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करता है ॥ २ ॥

आगे प्रथमोपशम सम्यक्त्व होनेसे पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें पांच लब्धियां होतीं हैं उनके नाम कहते हैं;—

खयउवसमियविसोही देसणपाउग्गकरणलद्धी य ।
चत्तारि वि सामण्णा करणं सम्मत्तचारित्ते ॥ ३ ॥

क्षयोपशमविशुद्धी देशनाप्रायोग्यकरणलब्धयश्च ।
चतस्रोपि सामान्याः करणं सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥

अर्थ—क्षयोपशम १ विशुद्धि २ देशना ३ प्रायोग्य ४ करण ५– ये पांच लब्धियां हैं । उनमेंसे पहलीं चार तो साधारण हैं अर्थात् भव्यजीव और अभव्यजीव दोनोंके होतीं हैं । लेकिन पांचवीं करणलब्धि सम्यक्त्व और चारित्रकी तरफ झुके हुए भव्यजीवके ही होती है ॥ ३ ॥

आगे इन पांचोंमेंसे पहली क्षयोपशमलब्धिका स्वरूप कहते हैं;—

कम्ममलपडलसत्ती पडिसमयमणंतगुणविहीणकमा ।
होदूणुदीरदि जदा तदा खओवसमलद्धी दु ॥ ४ ॥

कर्ममलपटलशक्तिः प्रतिसमयमनंतगुणविहीनक्रमा ।
भूत्वा उदीर्यते यदा तदा क्षयोपशमलब्धिस्तु ॥ ४ ॥

अर्थ—कर्मोंमें मैलरूप जो अशुभ ज्ञानावरणादि समूह उनका अनुभाग जिस कालमें समय समय अनंतगुणा क्रमसे घटता हुआ उदयको प्राप्त होता है उस कालमें क्षयोपशम लब्धि होती है ॥ ४ ॥

आगे विशुद्धिलब्धिका स्वरूप कहते हैं;—

आदिमलद्धिभवो जो भावो जीवस्स सादपहुदीणं ।
सत्थाणं पयडीणं बंधणजोगो विसुद्धलद्धी सो ॥ ५ ॥

आदिमलब्धिभवो यः भावो जीवस्य सातप्रभृतीनाम् ।
शस्तानां प्रकृतीनां बंधनयोग्यो विशुद्धिलब्धिः सः ॥ ५ ॥

अर्थ—पानी (प्रयोजन) लब्धिसे उत्पन्न हुआ जो जीवके साता आदि शुभ प्रकृतियोंके बंधनेका कारण शुभपरिणाम उसकी जो प्राप्ति वह विशुद्धिलब्धि है। अशुभकर्मके अनुभाग घटनेसे संक्लेशकी हानि और उसके विपक्षी विशुद्धपनेकी वृद्धि होना ठीक ही है ॥ ५ ॥

आगे देशनालब्धिका स्वरूप कहते हैं;—

छद्दव्वणवपयत्थोपदेसयरसूरिपहुदिलाहो जो ।
देसिदपदत्थधारणलाहो वा तदियलद्धी दु ॥ ६ ॥

षड्द्रव्यनवपदार्थोपदेशकरसूरिप्रभृतिलाभो यः ।
देशितपदार्थधारणलाभो वा तृतीयलब्धिस्तु ॥ ६ ॥

अर्थ—छह द्रव्य और नौपदार्थका उपदेश करनेवाले आचार्य आदिका लाभ यानी उपदेशका मिलना अथवा उपदेशे हुए पदार्थोंके धारण करने (याद रखने) की प्राप्ति वह तीसरी देशनालब्धि है। तु शब्दसे नरकादि गतिमें जहां उपदेश देनेवाला नहीं है वहां पूर्वभवमें धारण किये हुए तत्त्वार्थके संस्कारके बलसे सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति जानना ॥ ६ ॥

आगे प्रायोग्यलब्धिको कहते हैं;—

अंतोकोडाकोडी विट्ठाणे ठिदिरसाण जं करणं ।
पाउग्गलद्धिणामा भवाभवेसु सामण्णा ॥ ७ ॥

अंतःकोटीकोटिविस्थाने स्थितिरसयोः यत्करणम् ।
प्रायोग्यलब्धिर्नाम भव्याभव्येषु सामान्या ॥ ७ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त तीन लब्धिवाला जीव हरसमय विशुद्धताकी बढवारी होनेसे आयुके विना सातकर्मोंकी स्थिति घटाता हुआ अंतःकोड़ाकोड़ि मात्र रखे और कर्मोंकी फल देनेकी शक्तिको भी कमजोर करदे ऐसे कार्यकरनेकी योग्यताकी प्राप्तिको प्रायोग्यलब्धि कहते हैं। वह सामान्यरीतिसे भव्यजीव और अभव्यजीव दोनोंके ही होसकती है ॥ ७ ॥

जेट्ठवरट्ठिदिबंधे जेट्ठवरट्ठिदितियाण सत्ते य ।
ण य पडिवज्जदि पढमुवसमसम्मं मिच्छजीवो हु ॥ ८ ॥

ज्येष्ठावरस्थितिबंधे ज्येष्ठावरस्थितित्रिकाणां सत्त्वे च ।
न च प्रतिपद्यते प्रथमोपशमसम्यक्त्वं मिथ्याजीवो हि ॥ ८ ॥

अर्थ—संक्लेशपरिणामवालेके सबसे बढ़के बंधके समय जो उत्कृष्ट स्थितिबंध और उत्कृष्ट स्थिति अनुभाग प्रदेशका सत्त्व तथा विशुद्ध क्षपकश्रेणीवालेके समय जो जघन्य

स्थितिबंध और जघन्यस्थिति अनुभाग प्रदेश इन तीनोंकी सत्ता उसके होनेपर मिथ्याती जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको नहीं ग्रहण करता ॥ ८ ॥

सम्मत्तहिमुहमिच्छो विसोहिवड्ढीहिं वड्ढमाणो हु ।
अंतोकोडाकोडिं सत्तण्हं बंधणं कुणई ॥ ९ ॥

सम्यक्त्वाभिमुखमिथ्यः विशुद्धिवृद्धिभिः वर्धमानो हि ।
अंतःकोटीकोटिं सप्तानां बंधनं करोति ॥ ९ ॥

अर्थ—प्रथमोपशमसम्यक्त्वके सन्मुख हुआ मिथ्यादृष्टि जीव विशुद्धपनेकी वृद्धिसे बढ़ता हुआ प्रायोग्यलब्धिके पहले समयसे लेकर पूर्वस्थितिबंधके संख्यातवें भाग अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण आयुके विना सात कर्मोंकी स्थिति बांधता है ॥ ९ ॥

तत्तो उदय सदस्स य पुधत्तमेत्तं पुणो पुणोदरिय ।
बंधम्मि पयडिम्हि य छेदपदा होंति चोत्तीसा ॥ १० ॥

ततः उदये शतस्य च पृथक्त्वमात्रं पुनः पुनरुदीर्य ।
बंधे प्रकृतौ च छेदपदा भवंति चतुश्चत्वारिंशत् ॥ १० ॥

अर्थ—उस अंतःकोड़ाकोड़ी सागर स्थितिबंधसे पल्यका संख्यातवां भागमात्र घटता हुआ स्थितिबंध अंतर्मुहूर्ततक समानतालिये हुए करता है । फिर उससे पल्यके संख्यातवें भाग घटता स्थितिबंध अंतर्मुहूर्ततक करता है । इसतरह क्रमसे संख्यातस्थितिबंधापसरणोंकर पृथक्त्व सौसागर घटनेसे पहला प्रकृतिबंधापसरणस्थान होता है । फिर उसी क्रमसे उससे भी पृथक्त्व सौ सागर घटनेसे दूसरा प्रकृतिबंधापसरणस्थान होता है । इसतरह इसी क्रमसे इतना २ स्थितिबंध घटनेपर एक एक स्थान होता है । ऐसे प्रकृतिबंधापसरणके चौंतीस स्थान होते हैं ॥ १० ॥

आगे चौंतीस स्थानोंमें क्रमसे कौन कौनसी प्रकृतिका व्युच्छेद होता है ऐसा कहते हैं;-

आऊ पडि णिरयदुगे सुहुमतिये सुहुमदोणि पत्तेयं ।
बादरजुत दोण्णि पदे अपुण्णजुद वितिचसण्णिसण्णीसु ॥ ११ ॥

आयुः प्रति निरयद्विकं सूक्ष्मत्रयं सूक्ष्मद्वयं प्रत्येकं ।
बादरयुतं द्वे पदे अपूर्णयुतं द्वित्रिचतुरसंज्ञिसंज्ञिषु ॥ ११ ॥

अर्थ—पहला नरकायुका व्युच्छित्तिस्थान है अर्थात् वहांसे लेकर उपशमसम्यक्त्वतक नरकायुका बंध नहीं होता । इसीतरह आगे भी जानना । दूसरा तिर्यंचायुका स्थान है तीसरा मनुष्यायुका है चौथा देवायुका है । पांचवां नरकगति नरकगत्यानुपूर्वीका है छठा

१ यहां पृथक्त्व नाम सात वा आठका है इसलिये पृथक्त्व सौ सागर कहनेसे सातसौ वा आठसौ सागर जानना । २ यहां प्रथमोपशम सम्यक्त्वमें आयुबंधका अभाव है इसलिये सब आयुबंधकी व्युच्छित्ति कही गई है ।

संयोगरूप सूक्ष्म अपर्याप्तसाधारणोंका है। सातवां संयोगरूप सूक्ष्म अपर्याप्त प्रत्येकका है, आठवां संयोगरूप बादर अपर्याप्त साधारणका है, नवमां संयोगरूप बादर अपर्याप्त प्रत्येकका है दशवां संयोगरूप दोइन्द्री जाति अपर्याप्तका है, ग्यारवां तेंद्री अपर्याप्तका है, बारवां चौइंद्री अपर्याप्तका है, तेरहवां असंज्ञी पंचेंद्री अपर्याप्त है और चौदहवां संज्ञी पंचेंद्री अपर्याप्तका है ॥ ११ ॥

अट्ठ अपुण्णपदेसु वि पुण्णेण जुदेसु तेसु तुरियपदे।
एइंदिय आदावं थावरणामं च मिलिदव्वं ॥ १२ ॥

अष्टौ अपूर्णपदेष्वपि पूर्णेन युतेषु तेषु तुरीयपदे।
एकेंद्रियं आतापं स्थावरनाम च मिलितव्यम् ॥ १२ ॥

अर्थ—पन्द्रहवां सूक्ष्मपर्याप्तसाधारणका है, सोलवां सूक्ष्मपर्याप्तप्रत्येकका है, सत्रहवां बादरपर्याप्त साधारणका है, अठारवां बादर पर्याप्त प्रत्येक एकेंद्री आतपस्थावरका है, उन्नीसवां दो इंद्री पर्याप्तका है, बीसमां ते इंद्री पर्याप्तका है, इकीसवां चौइंद्री पर्याप्तका है और बावीसवां असंज्ञीपंचेंद्री पर्याप्तका है ॥ १२ ॥

तिरिगदुगुज्जोवोवि य णीचे अपसत्थगमण दुभगतिए।
हुंडासंपत्तेवि य णउंसए वामखीलीए ॥ १३ ॥

तिर्यग्द्विकोद्योतोपि च नीचैः अप्रशस्तगमनं दुर्भगत्रिकं।
हुंडासंप्राप्तेपि च नपुंसकं वामनकीलिते ॥ १३ ॥

अर्थ—तेईसवां तिर्यंचगति तिर्यंचगत्यानुपूर्वी उद्योतका है, चौवीसवां नीचगोत्रका है, पचीसवां अप्रशस्तविहायोगतिदुर्भगदुःस्वर अनादेयका है, छव्वीसवां हुंडसंस्थान सृपाटिका संहननका है, सत्ताईसवां नपुंसकवेदका है और अट्ठाईसवां वामनसंस्थान कीलितसंहननका है ॥ १३ ॥

खुज्जद्धं णाराए इत्थीवेदे य सादिणाराए।
णग्गोधवज्जणारा-ए मणुओरालदुगवज्जे ॥ १४ ॥

कुब्जार्धनाराचं स्त्रीवेदं च स्वातिनाराचे।
न्यग्रोधवज्रनाराचे मनुष्यौदारिकद्विकवज्रे ॥ १४ ॥

अर्थ— उनतीसवां कुब्जकसंस्थान अर्धनाराचसंहननका है, तीसवां स्त्रीवेदका है, इकतीसवां स्वातिसंस्थाननाराचसंहननका है, बत्तीसवां न्यग्रोधसंस्थान वज्रनाराचसंहननका है और तेतीसवां मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्वी औदारिक शरीर औदारिक अंगोपांग वज्रवृषभनाराच संहननका है ॥ १४ ॥

अथिरसुभग जस अरदी सोयअसादे य होंति चोतीसा ।
बंधोसरणट्ठाणा भव्वाभव्वेसु सामण्णा ॥ १५ ॥

अस्थिरसुभगयशः अरतिः शोकासाते च भवंति चतुस्त्रिंशत् ।
बंधापसरणस्थानानि भव्याभव्येषु सामान्यानि ॥ १५ ॥

अर्थ—चौंतीसवां संयोगरूप अस्थिर अशुभ अयश अरति शोक असाताका बंधव्युच्छित्तिस्थान है । ऐसे ये कहे हुए चौंतीस स्थान भव्य अथवा अभव्यके समान होते हैं ॥१५॥

णरतिरियाणं ओघो भवणतिसोहम्मजुगलए विदियं ।
तिदियं अट्ठारसमं तेवीसदिमादि दसपदं चरिमं ॥ १६ ॥

नरतिरश्चामोघः भवनत्रिसौधर्मयुगलके द्वितीयं ।
तृतीयं अष्टादशमं त्रयोविंशत्यादि दशपदं चरमम् ॥ १६ ॥

अर्थ—मनुष्य और तिर्यंचोंके सामान्य कहे हुए चौंतीसस्थान पाये जाते हैं अर्थात् उनके बंधयोग्य एकसौ सत्रह प्रकृतियोंमेंसे चौंतीसस्थानोंकर छ्यालीस प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती है । वहां आदिके छहस्थानोंमें नौ अठारवें स्थानमें एकेन्द्रियादि तीन उन्नीसवां आदि बीचके स्थानोंमें दो इंद्री ते इंद्री चौइंद्री ये तीन और तेईसवां आदि बारह स्थानोंमें इकतीस–ऐसे छ्यालीसकी व्युच्छित्ति होती है शेष इकहत्तरि बंधती हैं । भवनवासी आदि तीनमें सौधर्मस्वर्ग युगलमें दूसरा तीसरा अठारवां तेईसवेंको आदिले दस और अंतका चौंतीसवां–ये चौदह स्थान ही संभवते हैं अर्थात् वहां इकतीस प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती है, बंधयोग्य एकसौ तीनमें बहत्तरि प्रकृतियोंका बंध बाकी रहता है॥१६॥

ते चेव चोद्दसपदा अट्ठारसमेण हीणया होंति ।
रयणादिपुढविछक्के सणक्कुमारादिदसकप्पे ॥ १७ ॥

तानि चैव चतुर्दशपदानि अष्टादशेन हीनानि भवंति ।
रत्नादिपृथिवीषट्के सनत्कुमारादिदशकल्पे ॥ १७ ॥

अर्थ—रत्नप्रभा आदि छह नरककी पृथिवीयोंमें और सानत्कुमार आदि दस स्वर्गोंमें पूर्व कहे हुए चौदह स्थान होते हैं लेकिन उनमेंसे अठारवां स्थान नहीं होता । अर्थात् तेरहस्थानोंसे अट्ठाईस प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती है वहां बंधयोग्य सौ प्रकृतियोंमेंसे बहत्तरिका बंध शेष रहता है ॥ १७ ॥

ते तेरस विदिएण य तेवीसदिमेण चावि परिहीणा ।
आणदकप्पादुवरिमगेवेज्जंतोत्ति ओसरणा ॥ १८ ॥

तानि त्रयोदश द्वितीयेन च त्रयोविंशतिकेन चापि परिहीनानि ।
आनतकल्पादुपरि ग्रैवेयकांतमित्यपसरणाः ॥ १८ ॥

अर्थ—आनतस्वर्गको आदि लेके उपरले ग्रैवेयकतक उन तेरहस्थानोंमेंसे दूसरे और तेईसवें स्थानोंके विना ग्यारह बंधापसरण स्थान पाये जाते हैं । वहां उन ग्यारह स्थानोंकर चौबीस घटानेसे बंधयोग्य छ्यानवै प्रकृतियोंमेंसे बहत्तरि बांधता है ॥ १८ ॥

ते चेवेक्कारपदा तदिऊणा विदियठाणसंजुत्ता ।
चउवीसदिमेणूणा सत्तमिपुढविम्मि ओसरणा ॥ १९ ॥

तानि चैवैकादशपदानि तृतीयोनानि द्वितीयस्थानसंयुक्तानि ।
चतुर्विंशतिकेनोनानि सप्तमीपृथिव्यामपसरणानि ॥ १९ ॥

अर्थ—सातवीं नरककी पृथिवीमें उन ग्यारहोंमेंसे तीसरे और चौवीसवें स्थानके विना तथा दूसरे स्थानसहित–इस तरह दस स्थान पाये जाते हैं । उन दस स्थानोंमेंसे तेईस वा उद्योतसहित चौवीस घटानेपर बंधयोग्य छ्यानवै प्रकृतियोंमेंसे तेहत्तरि वा बहत्तर बांधी जाती हैं क्योंकि उद्योतको बंध वा अबंध दोनों संभवते हैं ॥ १९ ॥

घादिति सादं मिच्छं कसायपुंहस्सरदि भयस्स दुगं ।
अपमत्तडवीसुच्चं बंधंति विसुद्धणरतिरिया ॥ २० ॥

घातित्रयं सातं मिथ्यं कषायपुंहास्यरतयः भयस्य द्विकम् ।
अप्रमत्ताष्टाविंशोच्चं बध्नंति विशुद्धनरतिर्यंचः ॥ २० ॥

अर्थ—इसप्रकार व्युच्छित्ति होनेपर प्रथमोपशमसम्यक्त्वको सन्मुख हुए मिथ्यादृष्टि मनुष्य तिर्यंच हैं वे ज्ञानावरण आदि तीन घातियाओंकी उन्नीस सातावेदनीय मिथ्यात्व सोलह कषाय पुरुषवेद हास्य रति भय जुगुप्सा अप्रमत्तकी अट्ठाईस उच्चगोत्र–इसतरह इकहत्तरि प्रकृतियोंको बांधते हैं ॥ २० ॥

देवतसवण्णअगुरुचउक्कं समचउरतेजकम्मइयं ।
सग्गमणं पंचिंदी थिरादिछण्णिमिणमडवीसं ॥ २१ ॥

देवत्रसवर्णागुरुचतुष्कं समचतुरतेजःकार्मणकम् ।
सद्गमनं पंचेंद्री स्थिरादिषण्निर्माणमष्टाविंशम् ॥ २१ ॥

अर्थ—देवचतुष्क[1] त्रसचतुष्क वर्णचतुष्क अगुरुलघुचतुष्क समचतुरस्रसंस्थान तैजस कार्माण शुभविहायोगति, पंचेंद्री, स्थिर आदि छह, निर्माण–ये अट्ठाईस प्रकृतियां अप्रमत्तकी हैं ॥ २१ ॥

तं सुरचउक्कहीणं णरचउवज्जजुद पयडिपरिमाणं ।
सुरछप्पुडवीमिच्छा सिद्धोसरणा हु बंधंति ॥ २२ ॥

---

१ देवचतुष्कसे देवगति देवगत्यानुपूर्वी वैक्रियिकशरीर वैक्रियिक अंगोपांग जानना ।

तत् सुरचतुष्कहीनं नरचतुर्वेद्युतं प्रकृतिपरिमाणं ।
सुरषट्पृथिवीमिथ्याः सिद्धापसरणा हि बध्नंति ॥ २२ ॥

अर्थ—उन इकहत्तरमेंसे देवचतुष्क घटानेसे तथा मनुष्यचतुष्क वज्रऋषभ नाराच मिलानेसे बहत्तरि प्रकृतियोंको जिनके बंधापसरणसिद्ध हुए हैं ऐसे मिथ्यादृष्टि देव या छह पृथिवियोंके नारकी बांधते हैं ॥ २२ ॥

तं णरदुगुच्चहीणं तिरियदुणीचजुद पयडिपरिमाणं ।
उज्जोवेण जुदं वा सत्तमखिदिगा हु बंधंति ॥ २३ ॥

तत् नरद्विकोच्चहीनं तिर्यग्द्विकं नीचयुतं प्रकृतिपरिमाणं ।
उद्योतेन युतं वा सप्तमक्षितिका हि बध्नंति ॥ २३ ॥

अर्थ—उन बहत्तरमेंसे मनुष्यद्विक उच्चगोत्रके विना और तिर्यंचद्विक नीचगोत्रसहित बहत्तर अथवा उद्योतसहित तेहत्तर प्रकृतियोंको सातवीं नरकपृथ्वीवाले बांधते हैं ॥ २३ ॥
इस तरह प्रकृतिबंध अधिकका विभाग कहा है ।

अंतोकोडाकोडीठिदं असत्थाण सत्थगाणं च ।
बि चउट्ठाणरसं च य बंधाणं बंधणं कुणइ ॥ २४ ॥

अंतःकोटाकोटिस्थितिं अशस्तानां शस्तकानां च ।
अपि चतुःस्थानरसं च च बंधानां बंधनं करोति ॥ २४ ॥

अर्थ—प्रथमसम्यक्त्वके सन्मुख चारोंगतिवाला मिथ्यादृष्टि जीव बध्यमानप्रकृतियोंके स्थितिके स्थानोंमेंसे एक एक स्थानके प्रति पृथक्त्व सौसागर घटता क्रम लिये हुए अंतःकोडाकोडीसागर प्रमाण स्थिति बांधता है। और प्रशस्तप्रकृतियोंका चार स्थानको प्रति समय २ अनंतगुणा बढता बांधता है ॥ २४ ॥

मिच्छणथीणति सुरचउ समवज्जपसत्थगमणसुभगतियं ।
णीचुक्कस्सपदेसमणुक्कस्सं वा पबंधदि हु ॥ २५ ॥

मिथ्यात्वस्त्यानत्रिकं सुरचतुः समवज्रप्रशस्तगमनसुभगत्रिकं ।
नीचोत्कृष्टप्रदेशमनुत्कृष्टं वा प्रबध्नाति हि ॥ २५ ॥

अर्थ—वह जीव मिथ्यात्व अनंतानुबंधीचतुष्क स्त्यानगृद्धित्रिक देवचतुष्क समचतुरस्र वज्रऋषभनाराच प्रशस्तविहायोगति सुभगादि तीन नीचगोत्र–इन उन्नीसप्रकृतियोंका उत्कृष्ट वा अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध करता है ॥ २५ ॥

एदेहिं विहीणाणं तिण्णिमहादंडएसु उत्ताणं ।
एकट्ठिसमाणाणमणुक्कस्सपदेसबंधणं कुणइ ॥ २६ ॥

---

१ मनुष्य मनुष्यायु मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्वी औदारिक शरीर औदारिक अंगोपांग जानना ।

एतैर्विहीनानां त्रिमहादंडकेपूक्तानाम् ।
एकषष्टिप्रमाणानामनुत्कृष्टप्रदेशबंधनं करोति ॥ २६ ॥

अर्थ—इनसे हीन जो तीन महादंडकों (स्थानों) में कहीं गईं ऐसी प्रकृतियोंमें इकसठ प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध करता है ॥ २६ ॥

पढमे सव्वे विदिये पण तिदिये चउ कमा अपुणरुत्ता ।
इदि पयडीणमसीदी तिदंडएसुवि अपुणरुत्ता ॥ २७ ॥

प्रथमे सर्वे द्वितीये पंच तृतीये चतुः क्रमादपुनरुक्ताः ।
इति प्रकृतीनामशीतिः त्रिदंडकेष्वपि अपुनरुक्ताः ॥ २७ ॥

अर्थ—मनुष्यतिर्यंचके बंध योग्य जो पहला दंडक (स्थान) उसमें सब (इकहत्तर) ही अपुनरुक्त हैं भवनत्रिकादिके योग्य दूसरे दंडकमें मनुष्यचतुष्क वज्रऋषभनाराच–ये पांच अपुनरुक्त हैं अन्यप्रकृतियां पहले दंडकमें कहीं ही थीं । और सातवीं पृथ्वीवालेके योग्य तीसरे दंडकमें तिर्यंचद्विक नीचगोत्र उद्योत–ये चार अपुनरुक्त हैं । ऐसे तीनों दंडकोंमें अपुनरुक्त अस्सी प्रकृतियां जाननी ॥ २७ ॥ ऐसे बंध कहा ।

अब उसी जीवके उदय कहते हैं:—

उदये चउदसघादी णिद्दा पयलाणमेक्कदरगं तु ।
मोहे दस सिय णामे वचि ठाणं सेसगे सजोगेक्कं ॥ २८ ॥

उदये चतुर्दश घातिनः निद्रा प्रचलानामेकतरकं तु ।
मोहे दश स्यात् नामनि वचःस्थानं शेषके सयोग्येकं ॥ २८ ॥

अर्थ—प्रथमसम्यक्त्वके सन्मुख जीवके नरकगतिमें ज्ञानावरणकी पांच दर्शनावरणकी आदिकी चार अंतरायकी पांच–ऐसे चौदह तथा मोहनीयकी दस वा नौ वा आठ, आयुकी एक नरकायु नामकर्मकी भाषापर्याप्तिकालमें उदययोग्य उनतीस, वेदनीयकी एक गोत्रकी एक नीचगोत्र–ऐसे इन प्रकृतियोंका उदय है ॥ २८ ॥ यहांपर मोहनीय आदिकी प्रकृतियां बदलनेसे जो भंग (भेद) होते हैं उनका कथन गोमटसारके कर्मकांडके स्थानसमुत्कीर्तन अधिकारमें है वहांसे समझलेना ।

उदइल्लाणं उदये पत्तेक्कट्ठिदिस्स वेदगो होदि ।
विचउट्ठाणमसत्थे सत्थे उदयल्लरसभुत्ती ॥ २९ ॥

उदयवतामुदये प्राप्ते एकस्थितेः वेदको भवति
[illegible]

अथ [illegible]

हुआ एक निषेक उसका ही भोगनेवाला वह जीव होता है । और अप्रशस्त प्रकृतियोंका द्विस्थानरूप तथा शुभ प्रकृतियोंका चारस्थानरूप अनुभागका भोगना उसके होता है॥२९॥

अजहण्णमणुक्कस्सपदेसमणुभवदि सोदयाणं तु ।
उदयिल्लाणं पयडिचउक्कण्णमुदीरगो होदि ॥ ३० ॥

अजघन्यमनुत्कृष्टप्रदेशमनुभवति सोदयानां तु ।
उदयवतां प्रकृतिचतुष्काणामुदीरको भवति ॥ ३० ॥

अर्थ—उदयरूप प्रकृतियोंका अजघन्य वा अनुत्कृष्ट प्रदेशको भोगता है । यहां जघन्य वा उत्कृष्ट परमाणुओंका उदय नहीं है । और प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभाग जो उदयरूप कहे हैं उनका ही यह जीव उदीरणा करनेवाला होता है । क्योंकि जिसके जिन प्रकृतियोंका उदय उसके उन्हींकी उदीरणा भी संभवती है ॥ ३० ॥ इसप्रकार उदय और उदीरणा कहे हैं ।

अब सत्त्व कहते हैं;—

दुति आउ तित्थहारचउक्कणा सम्मगेण हीणा वा ।
मिस्सेणूणा वा वि य सबे पयडी हवे सत्तं ॥ ३१ ॥

द्वित्रि आयुः तीर्थाहारचतुष्काणां सम्यक्त्वेन हीना वा ।
मिश्रेणोना वापि च सर्वेषां प्रकृतीनां भवेत् सत्त्वम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—सम्यक्त्वके सन्मुख अनादि मिथ्यादृष्टिके अबद्धायुके तो भुज्यमान विना तीन आयु, तीर्थंकर, आहारकचतुष्क, सम्यग्मोहनी, मिश्रमोहनी—इन दसके विना एकसौ अड़तीसका सत्त्व है । उसी बद्धायुके एक बध्यमान आयु सहित एकसौ उनतालीसका सत्त्व है । और सम्यक्त्वके सन्मुख सादि मिथ्यादृष्टि अबद्धायुके तो भुज्यमान विना तीन आयु, तीर्थंकर आहारकचतुष्क—इन आठके विना एकसौ चालीसका सत्त्व है । सम्यक्त्वमोहनीकी उद्वेलना होनेपर एकसौ उनतालीसका सत्त्व है, मिश्रमोहनीयकी उद्वेलना होनेसे एकसौ अड़तीसका सत्त्व होता है । तथा उसी बद्धायुके बध्यमान आयुसहित एकसौ इकतालीस एकसौ चालीस एकसौ उनतालीसका सत्त्व होता है क्योंकि आहारकचतुष्टयकी उद्वेलना हुए विना तीर्थंकर सत्तावाला जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्वके सन्मुख नहीं होता॥३१॥

अजहण्णमणुक्कस्सं ठिदीतियं होदि सत्तपयडीणं ।
एवं पयडिचउक्कं बंधादिसु होदि पत्तेयं ॥ ३२ ॥

अजघन्यमनुत्कृष्टं स्थितित्रिकं भवति सत्त्वप्रकृतीनाम् ।
एवं प्रकृतिचतुष्कं बंधादिषु भवति प्रत्येकम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—उन सत्तारूप प्रकृतियोंके स्थिति अनुभाग प्रदेश हैं वे अजघन्य अनुत्कृष्ट हैं । यहां पर जघन्य वा उत्कृष्ट स्थिति अनुभाग प्रदेशका सत्त्व नहीं संभवता । इसप्रकार प्रकृति

स्थिति अनुभाग प्रदेशरूप चतुष्क हैं वे बंध उदय उदीरणा सत्त्वमें कहे गये हैं सो प्रायोग्यतामात्र सोभी लब्धिके अंततक जानने ॥ ३२ ॥

आगे करणलब्धिका स्वरूप कहते हैं,—

तत्तो अभव्वजोग्गं परिणामं बोलिऊण भव्वो हु ।
करणं करेदि कमसो अधापवत्तं अपुव्वमणियट्टिं ॥ ३३ ॥

ततः अभव्ययोग्यं परिणामं मुक्त्वा भव्यो हि ।
करणं करोति क्रमशः अधःप्रवृत्तमपूर्वमनिवृत्तिम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—उसके बाद अभव्यके भी योग्य ऐसे चार लब्धिरूप परिणामोंको समाप्तकर भव्यजीव ही अधःप्रवृत्त, अपूर्व, और अनिवृत्ति करण—इन तीन करणोंको करता है ॥३३॥ इन तीनों करणों (परिणामों) का गोमट्टसारके जीवकांडमें गुणस्थानाधिकारमें तथा कर्मकांडमें त्रिकरणचूलिकाधिकारमें विशेष व्याख्यान है वहांसे जानना ।

अब यहां भी सामान्यतासे कहते हैं;—

अंतोमुहुत्तकाला तिण्णिवि करणा हवंति पत्तेयं ।
उवरीदो गुणियकमा कमेण संखेज्जरूवेण ॥ ३४ ॥

अंतर्मुहूर्तकालानि त्रीण्यपि करणानि भवंति प्रत्येकम् ।
उपरितः गुणितक्रमाणि क्रमेण संख्यातरूपेण ॥ ३४ ॥

अर्थ—तीनों ही करण हरएक अंतर्मुहूर्तकालतक स्थित रहते हैं तौ भी ऊपरसे संख्यातगुणा क्रम लिये हुए हैं । अनिवृत्तिकरणका काल थोड़ा है उससे अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है उनसे संख्यातगुणा काल अधःप्रवृत्तकरणका है ॥ ३४ ॥

जम्हा हेट्ठिमभावा उवरिमभावेहिं सरिसगा हुंति ।
तम्हा पढमं करणं अधापवत्तोत्ति णिद्दिट्ठं ॥ ३५ ॥

यस्मादधस्तनभावा उपरितनभावैः सदृशा भवंति ।
तस्मात् प्रथमं करणं अधःप्रवृत्तमिति निर्दिष्टम् ॥ ३५ ॥

अर्थ—जिसकारण नीचेके समयवर्ती किसी जीवके परिणाम ऊपरले समयवर्ती किसी जीवके परिणामोंकि समान होते हैं इसकारण ऐसे परिणामका नाम अधःप्रवृत्तिकरण है । भावार्थ—करणोंका कथन नाना जीवोंकी अपेक्षा है सो किसी जीवको अधःकरण शुरू किये थोड़ा काल हुआ किसीको बहुतकाल हुआ उनके परिणाम इस करणमें सख्या और विशुद्धताकर समान भी होते हैं ऐसा जानना ॥ ३५ ॥

समए समए भिण्णा भावा तम्हा अपुव्वकरणो हु ।
अणियट्टीवि तहं वि य पडिसमयं एक्कपरिणामो ॥ ३६ ॥

समये समये भिन्ना भावा तस्मादपूर्वकरणो हि।
अनिवृत्तिरपि तथैव च प्रतिसमयमेकपरिणामः ॥ ३६ ॥

अर्थ—समय समयमें जीवोंके भाव जुदे २ ही होते हैं इसीलिये ऐसे परिणामका नाम अपूर्वकरण है। और जहां हरसमयमें एक ही परिणाम हो वह अनिवृत्ति करण है। भावार्थ—किसी जीवको अपूर्वकरण शुरू कियें थोड़ाकाल हुआ किसीको बहुतकाल हुआ वहां उनके परिणाम सर्वथा समान नहीं होते। नीचले समयवालोंके परिणामसे ऊपरले समयवालोंका परिणाम अधिकसंख्यावाला विशुद्धता सहित होता है और जिनको करण प्रारंभ कियें समान काल होगया उनके परिणाम आपसमें समान भी होते हैं अथवा असमान भी होते हैं। जिनको अनिवृत्तिकरण प्रारंभ किये समान काल हुआ उनके परिणाम समान ही होते हैं और नीचले समयवालोंसे ऊपरले समयवालोंके अधिक होते हैं ऐसा मानना ॥ ३६ ॥

गुणसेढी गुणसंकम ठिदिरसखंडं च णत्थि पढमम्हि।
पडिसमयमणंतगुणं विसोहिवड्ढीहिं वड्ढदि हु ॥ ३७ ॥

गुणश्रेढी गुणसंक्रमं स्थितिरसखंडं च नास्ति प्रथमे।
प्रतिसमयमनंतगुणं विशुद्धिवृद्धिभिर्वर्धते हि ॥ ३७ ॥

अर्थ—पहले अध:करणमें गुणश्रेणी गुणसंक्रम स्थितिकांडकघात अनुभागकांडकघात नहीं होता और यहां समय २ में अनंतगुणी विशुद्धता बढती है ॥ ३७ ॥

सत्थाणमसत्थाणं चउविट्ठाणं रसं च बंधदि हु।
पडिसमयमणंतेण य गुणभजियकमं तु रसबंधे ॥ ३८ ॥

शस्तानामशस्तानां चतुर्विस्थानं रसं च बध्नाति हि।
प्रतिसमयमनंतेन च गुणभजितक्रमं तु रसबंधे ॥ ३८ ॥

अर्थ—साता आदि शुभप्रकृतियोंका हरसमय अनंतगुणा चारस्थानरूप अनुभाग बांधता है और असाता आदि अप्रशस्त प्रकृतियोंका समय समयके प्रति अनंतवें भाग ही अनुभाग बांधता है ॥ ३८ ॥

पल्लस्स संखभागं मुहुत्तअंतेण उसरदे बंधे।
संखेज्जसहस्साणि य अधापवत्तम्मि ओसरणा ॥ ३९ ॥

पल्यस्य संख्यभागं मुहूर्तांतरेण उत्सरते बंधे।
संख्येयसहस्राणि च अध:प्रवृत्ते अपसरणानि ॥ ३९ ॥

अर्थ—अब अपूर्वकरणके पहले समयमें लेकर अंतर्मुहूर्ततक पूर्वस्थिति बंधसे पल्यके असंख्यातवें भाग घटता हुआ स्थिति बंध होता है। और उसके बाद अंतर्मुहूर्ततक उससे भी पल्यके असंख्यातवें भाग घटता हुआ स्थितिबंध होता है। इस तरह एक अंतर्मुहूर्तकर

पल्यका असंख्यातवां भागमात्र स्थितिबंधापसरण होता है। इसप्रकार अधःप्रवृत्तिकरणमें अपसरण संख्यात हजार होते हैं ॥ ३९ ॥

आदिमकरणद्धाए पढमट्ठिदिबंधदो दु चरिमम्हि ।
संखेज्जगुणविहीणो ठिदिबंधो होइ णियमेण ॥ ४० ॥

आदिमकरणाद्धायां प्रथमस्थितिबंधतस्तु चरमे ।
संख्यातगुणविहीनः स्थितिबंधो भवति नियमेन ॥ ४० ॥

अर्थ—पहले कालमें पहले समयकी अंतःकोड़ाकोड़ीसागर प्रमाण स्थितिबंधसे उसके अंतसमयमें संख्यातगुणा हीन स्थितिबंध नियमसे होता है ॥ ४० ॥

तच्चरिमे ठिदिबंधो आदिमसम्मेण देससयलजमं ।
पडिवज्जमाणगस्स वि संखेज्जगुणेण हीणकमो ॥ ४१ ॥

तच्चरमे स्थितिबंध आदिमसम्येन देशसकलयमम् ।
प्रतिपद्यमानस्यापि संख्येयगुणेन हीनक्रमः ॥ ४१ ॥

अर्थ—उस अंतके समयमें जो स्थितिबंध कहा है उससे देशसंयमसहित प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवके संख्यातगुणा कम स्थितिबंध होता है। उससे सकल-संयम (चरित्र) सहित प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवके संख्यातगुणा कम स्थितिबंध होता है ॥ ४१ ॥

आदिमकरणद्धाए पडिसमयमसंखलोगपरिणामा ।
अहियकमा दु विसेसे मुहुत्तअंतो दु पडिभागो ॥ ४२ ॥

आदिमकरणाद्धायां प्रतिसमयमसंख्यलोकपरिणामाः ।
अधिकक्रमा हि विशेषे मुहूर्तांतर्हि प्रतिभागः ॥ ४२ ॥

अर्थ—पहले अधःप्रवृत्तकरण कालमें त्रिकालवर्ती जीवोंके जो कषायोंके विशुद्ध-स्थान होते हैं उनमें समय समयके प्रति संभव असंख्यातलोकमात्र परिणाम हैं। वे पहले समयसे द्वितीय आदि समयोंमें क्रमसे समान प्रमाणरूप एक एक विशेष (चय) कर बढ़ते हुए जानने। और उस चयका प्रमाण अंतर्मुहूर्तमात्र भागहारका भाग देनेसे आता है ॥ ४२ ॥

ताए अधापवत्तद्धाए संखेज्जभागमेत्तं तु ।
अणुकट्टीए अद्धा णिव्वग्गणकंडयं तं तु ॥ ४३ ॥

[illegible]

[illegible]

अर्थ—[illegible] उसके [illegible]

कृष्टिका गच्छ होता है। एक एक समय संबंधी परिणामोंमें इतने २ खंड होते हैं। वे निर्वर्गणकांडक समान जानना ॥ ४३ ॥

पडिसमयगपरिणामा णिव्वग्गणसमयमेत्तखंडकमा ।
अहियकमा हु विसेसे मुहुत्तअंतो हु पडिभागो ॥ ४४ ॥

प्रतिसमयगपरिणामा निर्वर्गणसमयमात्रखंडक्रमाः ।
अधिकक्रमा हि विशेषे मुहूर्तांतर्हि प्रतिभागः ॥ ४४ ॥

अर्थ—समय समयके परिणामोंमें निर्वर्गणाकांडक समान खंड करना। वे भी पहले खंडसे द्वितीय आदि क्रमसे विशेष (चय) कर बढते हैं। यहां पहले खंडमें अंतर्मुहूर्तका भाग देनेसे विशेषका प्रमाण आता है ॥ ४४ ॥

पडिखंडगपरिणामा पत्तेयमसंखलोगमेत्ता हु ।
लोयाणमसंखेज्जा छट्ठाणाणी विसेसेवि ॥ ४५ ॥

प्रतिखंडगपरिणामाः प्रत्येकमसंख्यलोकमात्रा हि ।
लोकानामसंख्येया पट्स्थानानि विशेषेपि ॥ ४५ ॥

अर्थ—हरएक खंडमें जघन्य मध्यम उत्कृष्टता लिये हुए विशुद्धपरिणामोंके भेद असंख्यातलोकमात्र हैं और यहां एक एक खंडमें तथा एक एक अनुकृष्टि विशेषमें भी असंख्यातलोकमात्रवार छहस्थानरूपी वृद्धिका संभव है ॥ ४५ ॥

पढमे चरिमे समये पढमं चरिमं च खंडमसरित्थं ।
सेसा सरिसा सव्वे अट्ठुवंकादिअंतगया ॥ ४६ ॥

प्रथमे चरमे समये प्रथमं चरमं च खंडमसदृशम् ।
शेषाः सदृशाः सर्वे अष्टोर्वंकाद्यंतगताः ॥ ४६ ॥

अर्थ—प्रथमसमयका प्रथमखंड अंतसमयका अंतखंड–ये दोनों तो किसी खंडके समान नहीं हैं। बाकी सबखंड अन्यखंडोंसे यथासंभव समान पाये जाते हैं उन खंडोमें जो परिणामोंका पुंज कहा है उसमें पहला परिणाम अष्टांक है अर्थात् पूर्व परिणामसे अनंतगुणा वृद्धिरूप है। और अंतका परिणाम उर्वक है अर्थात् पूर्वपरिणामसे अनंतभागवृद्धिरूप है। क्योंकि छह स्थानोंका आदि अष्टांक और अंत उर्वक कहा गया है ॥ ४६ ॥

चरिमे सव्वे खंडा दुचरिमसमओत्ति अवरखंडाए ।
असरिसखंडाणोली अधापवत्तम्हि करणम्मि ॥ ४७ ॥

---

१ वर्गणा अर्थात् समयोंकी समानता उससे रहित ऊपर २ समयवर्ती परिणामखंडोंका कांडक (पर्व) उसको निर्वर्गणाकांडक कहते हैं। वे अध:करणकालमें संख्यात हजार होते हैं।

चरमे सर्वे खंडा द्विचरमसमय इति उपरितनैः ।
असदृशाः खंडानामावलिरधःप्रवृत्ते करणे ॥ ४७ ॥

अर्थ—अधःप्रवृत्तकरणकालमें अंतसमयके तो सब खंड और दूसरे समयसे लेकर द्विचरमसमयतकके प्रथम प्रथम खंड हैं वे उनके ऊपरके समयके सब खंडोंसे समान नहीं हैं इसलिये असदृश हैं ॥ ४७ ॥

पढमे करणे अवरा णिव्वग्गणसमयमेत्तगा तत्तो ।
अहिगदिणा चरमवरं तो वरपंती अणंतगुणियकमा ॥ ४८ ॥

प्रथमे करणे अवरा निर्वर्गणसमयमात्रकाः ततः ।
अहिगतिना चरमवरमतो वरपंक्तिरनंतगुणितक्रमा ॥ ४८ ॥

अर्थ—पहले करणमें विशुद्धताके अविभागप्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा हरएक समयके प्रथमखंडोंके जघन्य परिणाम हैं वे ऊपर ऊपर अनंतगुणे हैं उसके बाद निर्वर्गणकांडके अंतसमयके प्रथमखंडको जघन्य परिणामसे पहले समयके अंतखंडका उत्कृष्ट परिणाम अनंतगुणा है । उससे द्वितीयकांडकके प्रथमसमयके प्रथमखंडका जघन्यपरिणाम अनंतगुणा है इसतरह जैसे सर्प इधरसे उधर उधरसे इधर गमन करता है उसीतरह जघन्यसे उत्कृष्टका उत्कृष्टसे जघन्यका अनंतगुणा क्रम है जबतक कि अंतकांडकके अंतसमयके प्रथमखंडका जघन्यपरिणाम होवे तबतक । यहां षट् स्थान नहीं संभवते ॥ ४८ ॥

पढमे करणे पढमा उड्ढगसेढीए चरमसमयस्स ।
तिरियगखंडाणोली असरित्थाणंतगुणियकमा ॥ ४९ ॥

प्रथमे करणे प्रथमा ऊर्ध्वगश्रेण्याः चरमसमयस्य ।
तिर्यग्गतखंडानामावलिरसदृशा अणंतगुणितक्रमा ॥ ४९ ॥

अर्थ—प्रथमकरणमें समय समयके परिणामोंकी ऊपर २ पंक्ति करनेसे और अंतसमयके परिणामोंकी बराबर तिर्यग्रूपपंक्ति करनेसे अंकुशाकार रचना होती है । वह इनके ऊपरके परिणामोंसे समानरूप नहीं है इसलिये असदृश हैं । तथा ये परिणाम अनंतगुणा क्रमलिए विशुद्धतास्वरूप जानने ॥ ४९ ॥ इसतरह अधःकरणका स्वरूप कहा ।

अब दूसरे अपूर्वकरणका स्वरूप कहते हैं;—

पढमं व विदियकरणं पडिसमयमसंखलोगपरिणामा ।
अहियकमा हु विसेसे मुहुत्तअंतो हु पडिभागो ॥ ५० ॥

प्रथमं व द्वितीयकरणं प्रतिसमयमसंख्यलोकपरिणामाः ।
अधिकक्रमा हि विशेषे मुहूर्तांतर्हि प्रतिभागः ॥ ५० ॥

अर्थ—पहले अधःकरणकी तरह दूसरा अपूर्वकरण है । उसमें विशेषता इतनी है कि

असंख्यातलोकमात्र अधःकरणके परिणामोंसे अपूर्वकरणके परिणाम असंख्यातलोकगुणे हैं। वे समय समयके प्रति विशेष (चय) कर अधिक हैं। सो प्रथमसमयके परिणामोंमें अंतर्मुहूर्तका भाग देनेसे चयका प्रमाण आता है ॥ ५० ॥

जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहिं णत्थि सरिसत्तं ।
तम्हा विदियं करणं अपुव्वकरणेत्ति णिद्दिट्ठं ॥ ५१ ॥

यस्मादुपरिमभावानां अधस्तनभावैः नास्ति सदृशत्वम् ।
तस्मात् द्वितीयं करणमपूर्वकरणमिति निर्दिष्टम् ॥ ५१ ॥

अर्थ—क्योंकि ऊपरसमयके परिणाम हैं वे नीचले समयके परिणामोंके समान इसमें नहीं होते। अर्थात् प्रथमसमयकी उत्कृष्ट विशुद्धतासे भी द्वितीयसमयकी जघन्य विशुद्धता अनंत गुणी है। इसतरह परिणामोंमें अपूर्वपना है। इसलिये दूसरा करण अपूर्वकरण कहा गया है ॥ ५१ ॥

विदियकरणादिसमयादंतिमसमओत्ति अवरवरसुद्धी ।
अहिगदिणा खलु सवे होंति अणंतेण गुणियकमा ॥ ५२ ॥

द्वितीयकरणादिसमयादंतिमसमय इति अवरवरशुद्धी ।
अहिगतिना खलु सर्वे भवंत्यनंतेन गुणितक्रमाः ॥ ५२ ॥

अर्थ—दूसरे करणके प्रथमसमयसे लेकर अंतसमयतक अपने जघन्यसे अपना उत्कृष्ट और पूर्वसमयके उत्कृष्टसे उत्तरसमयका जघन्यपरिणाम क्रमसे अनंतगुणी विशुद्धतालिये सर्पकी चालकी तरह जानना। यहांपर अनुकृष्टि नहीं होती ॥ ५२ ॥

गुणसेढीगुणसंकमठिदिरसखंडा अपुव्वकरणादो ।
गुणसंकमणेण समा मिस्साणं पूरणोत्ति हवे ॥ ५३ ॥

गुणश्रेणीगुणसंक्रमस्थितिरसखंडा अपूर्वकरणात् ।
गुणसंक्रमणेन समा मिश्राणां पूरण इति भवेत् ॥ ५३ ॥

अर्थ—अपूर्वकरणके पहले समयसे लेकर जबतक सम्यक्त्वमोहनीमिश्रमोहनीयका पूर्णकाल है अर्थात् जिसकालमें गुणसंक्रमणसे मिथ्यात्वको सम्यक्त्वमोहनीय मिश्रमोहनीयरूप परिणमाता है उसकालके अंतसमयतक गुणश्रेणी गुणसंक्रम स्थितिखंडन अनुभागखंडन—ये चार आवश्यक होते हैं ॥ ५३ ॥

ठिदिबंधोसरणं पुण अधापवत्तादुपूरणोत्ति हवे ।
ठिदिबंधट्ठिदिखंडुक्कीरणकाला समा होंति ॥ ५४ ॥

स्थितिबंधापसरणं पुन अधःप्रवृत्तात्पूरण इति भवेत् ।
स्थितिबंधस्थितिखंडोत्कीरणकालाः समा भवंति ॥ ५४ ॥

अर्थ—फिर स्थितिबंधापसरण है वह अधःप्रवृत्तकरणकालके प्रथमसमयसे लेकर गुणसंक्रमण पूर्ण होनेके कालतक होता है। यद्यपि प्रायोग्यलब्धिसे ही स्थितिबंधापसरण होता है तौभी प्रायोग्यलब्धिके सम्यक्त्व होनेका नियम नहीं इससे ग्रहण नहीं किया। और स्थितिबंधापसरणका काल तथा स्थितिकांडकोत्करण काल–ये दोनों समान अन्तर्मुहूर्तमात्र हैं ॥ ५४ ॥

गुणसेढीदीहत्तमपुव्वदुगादो दु साहियं होदि।
गलिदवसेसे उदयावलिबाहिरदो दु णिक्खेवो ॥ ५५ ॥

गुणश्रेणीदीर्घत्वमपूर्वद्विकात् तु साधिकं भवति।
गलितावशेषे उदयावलिबाह्यतस्तु निक्षेपः ॥ ५५ ॥

अर्थ—गुणश्रेणीका निषेकोंके प्रमाणमात्र आयाम है वह अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण इन दोनोंके कालसे कुछ अधिक है। यह गुणश्रेणी आयाम गलितावशेष है यानी समय बीतनेपर वह गुणश्रेणी आयाम भी घटता जाता है। और उदयावलिसे बाह्य है क्योंकि उदयावलिसे ऊपर गुणश्रेणि आयामके निषेक हैं। उस गुणश्रेणी आयाममें गुणश्रेणीके-लिये अपकर्षण किये गये द्रव्योंका निक्षेपण किया जाता है ॥ ५५ ॥

णिक्खेवमदित्थावणमवरं समकरण आवलितिभागं।
तण्णूणावलिमेत्तं विदियावलियादिमणिसेगे ॥ ५६ ॥

निक्षेपमतिस्थापनमवरं समकरणमावलित्रिभागम्।
तन्न्यूनावलिमात्रं द्वितीयावलिकादिमनिषेके ॥ ५६ ॥

अर्थ—द्वितीय आवलिके प्रथमनिषेकमें समय कम आवलीका त्रिभाग एक समय अधिकप्रमाण निषेक तो जघन्य निक्षेप है और उससे न्यून अर्थात् न मिलानेसे उतना कम आवलि मात्र जघन्य अतिस्थापन है ॥ ५६ ॥

एतो समऊणावलितिभागमेत्तो तु तं खु णिक्खेवो।
उवरिं आवलिवज्जिय सगट्ठिदी होदि णिक्खेवो ॥ ५७ ॥

अतः समयोनावलित्रिभागमात्रस्तु तत्खलु निक्षेपः।
उपरि आवलिवर्जिता स्वकस्थितिर्भवति निक्षेपः ॥ ५७ ॥

अर्थ—इससे ऊपर द्वितीयावलिके द्वितीयनिषेकका अपकर्षण किया उस जगह एक समय अधिक आवलिमात्र इसके नीचे निषेक हैं उनमें निक्षेप तो समय कम आवलिका त्रिभाग मात्र ही है अतिस्थापन पहलेसे एक समय अधिक है। इसतरह क्रमसे अतिस्थापन एक एक समय अधिक जानना और निक्षेप पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ५७ ॥

---

१ अधिकका प्रमाण अनिवृत्तिकरणकालके संख्यातवें भागमात्र जानना।

उक्कस्सट्ठिदिबंधो समयजुदावलिदुगेण परिहीणो ।
उक्कट्ठिदिम्मि चरिमे ठिदिम्मि उक्कस्सणिक्खेवो ॥ ५८ ॥

उत्कृष्टस्थितिबंधः समययुतावलिद्विकेन परिहीनः ।
उत्कृष्टस्थितौ चरमे स्थितौ उत्कृष्टनिक्षेपः ॥ ५८ ॥

अर्थ—स्थितिके अंत निषेकके द्रव्यको अपकर्षणकर नीचले निषेकोंमें निक्षेपण करनेसे उस अंत निषेकके नीचे आवलीमात्र निषेक तो अतिस्थापना स्वरूप है और समय अधिक दो आवलिकर हीन उत्कृष्ट स्थितिमात्र निक्षेप होता है । यह उत्कृष्टनिक्षेप जानना ॥५८॥

उक्कस्सट्ठिदि बंधिय मुहुत्तअंतेण सुज्झमाणेण ।
इगिकंडएण घादे तम्हि य चरिमस्स फालिस्स ॥ ५९ ॥
चरिमणिसेउक्कट्ठे जेट्ठमदित्थावणं इदं होदि ।
समयजुदंतोकोडीकोडि विणुक्कस्सकम्मठिदी ॥ ६० ॥

उत्कृष्टस्थितिं बंधयित्वा मुहूर्तान्तः शुद्ध्यता ।
एककांडकेन घाते तस्मिन् च चरमस्य फालेः ॥ ५९ ॥
चरमनिषेकोत्कर्षे ज्येष्ठमतिस्थापनमिदं भवति ।
समययुतान्तःकोटीकोटिं विना उत्कृष्टकर्मस्थितिः ॥ ६० ॥

अर्थ—कोई जीव उत्कृष्टस्थिति बांधकर पीछे क्षयोपशमलब्धिसे विशुद्ध हुआ । तब बन्धी हुई स्थितिमें आबाधारूप बंधावलीके वीतजानेपर एक अंतर्मुहूर्तकालसे स्थितिकांडकका घात किया उस जगह जो अंतकी फालिमें स्थितिके अंतनिषेकके द्रव्यको ग्रहणकर अवशेष रही हुई स्थितिमें दिया । वहां एकसमय अधिक अंतःकोड़ाकोड़ी सागरकर हीन उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण उत्कृष्ट अतिस्थापन होता है ॥ भावार्थ–जैसे अंक संदृष्टिसे हजार समयकी स्थितिमें कांडकघातकर सौ समयकी स्थिति रक्खी । उसजगह हजारवें समयके निषेकके द्रव्यको आदिके सौसमयसंबंधी निषेकोंमें दिया वहांपर आठसौ निन्यानवे समयमात्र उत्कृष्ट अतिस्थापन होता है ॥ ५९ ॥ ६० ॥

सत्तग्गट्ठिदिबंधो आदिट्ठिदुक्कट्टणे जहण्णेण ।
आवलिअसंखभागं तेत्तियमेत्तेव णिक्खिवदि ॥ ६१ ॥

सत्ताग्रस्थितिबन्ध आदिस्थित्युत्कर्षणे जघन्येन ।
आवल्यसंख्यभागं तावन्मात्रमेव निक्षिपति ॥ ६१ ॥

१ [illegible] आबाधामें [illegible] ग्रहण नहीं किया इसी कारण उत्कृष्टस्थि- [illegible]

अर्थ—पूर्व सत्त्वरूप निषेकोंमें अंतनिषेकके द्रव्यको उत्कर्षण करनेके समयमें बंधे हुए समयप्रबद्धमें जो पूर्वोक्त अंतनिषेक जितनेसमय ऊपर जाकर स्थित हो उससमयमें उस निषेकके ऊपरवर्ती आवलिके असंख्यातवें भागमात्र निषेकोंको अतिस्थापनरूप रख उनके ऊपर जितने उतने ही आवलिके असंख्यातवें भागमात्र निषेकोंमें उस सत्ताके अंतनिषेकके द्रव्यको निक्षेपण करते हैं । यह उत्कर्षणमें जघन्य अतिस्थापन और जघन्य-निक्षेप जानना ॥ ६१ ॥

तत्तोदित्थावणगं वड्ढदि जावावली तदुक्कस्सं ।
उवरीदो णिक्खेओ वरं तु बंधिय ठिदिं जेट्ठं ॥ ६२ ॥
वोलिय बंधावलियं ओकट्टिय उदयदो दु णिक्खिविय ।
उवरिमसमये विदियावलिपढमुक्कट्टणे जादे ॥ ६३ ॥
तक्कालवज्जमाणे वरट्ठिदीए अदित्थियाबाहं ।
समयजुदावलियाबाहूणो उक्कस्सठिदिबंधो ॥ ६४ ॥

ततोऽतिस्थापनकं वर्धते यावदावलिस्तदुत्कृष्टम् ।
उपरितो निक्षेपो वरं तु बंधयित्वा स्थितिर्ज्येष्ठम् ॥ ६२ ॥
अपलाप्य बंधावलिकामुत्कर्ष्य उदयतस्तु निक्षिप्य ।
उपरितनसमये द्वितीयावलिप्रथमोत्कर्षणे जाते ॥ ६३ ॥
तत्कालवर्ध्यमाने वरस्थित्या अतिस्थिताबाधां ।
समययुतावलिकाबाधोनः उत्कृष्टस्थितिबन्धः ॥ ६४ ॥

अर्थ—उस पूर्व सत्त्वके अंतनिषेकसे लगते नीचेके निषेकोंका उत्कर्षण होनेपर निक्षेप तो पूर्वोक्त प्रमाण ही रहता है और अतिस्थापन क्रमसे एक एक समय बढता हुआ होता है जब तक आवलिमात्र उत्कृष्ट अतिस्थापन हो तबतक यह क्रम है । अब उत्कृष्ट निक्षेप कहाँ होता है ऐसा कहते हैं । किसी जीवने पहले उत्कृष्ट स्थिति बांध पीछे उसकी आबाधामें एक आवलि छोड़कर उसके बाद उस समयप्रबद्धके अंतके निषेकको अपकर्षण किया । उसजगह उसके द्रव्यको अवशेष वर्तमानसमयमें उदययोग्य निषेकसे लेकर सब निषेकोंमें दिया । इसतरह पहले अपकर्षण किया की, फिर उसके ऊपरवर्ती समयमें पहले अपकर्षण किया करनेसे जो द्रव्य द्वितीयावलिके प्रथमनिषेकमें दिया था उसका उत्कर्षण किया । तब उसके द्रव्यको उस उत्कर्षण करनेके समयमें बंधा जो उत्कृष्टस्थिति लिये हुए समय प्रबद्ध उसके आबाधाकालको छोड़कर जो प्रथमादि निषेक पाये जाते हैं उनमें अंतके समय अधिक आवलिमात्र निषेक छोड़ अन्य सब निषेकोंमें निक्षेपण किया जाता

है । और यहां एक समय अधिक आवलिकर सहित जो आबाधाकाल उससे हीन जो उत्कृष्ट कर्मोंकी स्थिति उस प्रमाण उत्कृष्ट निक्षेप जानना ॥ ६२ । ६३ । ६४ ॥

अहवावलिगदवरठिदिपढमणिसेगे वरस्स बंधस्स ।
विदियणिसेगप्पहुदिसु णिक्खित्ते जेट्ठणिक्खेओ ॥ ६५ ॥

अथवावलिगतवरस्थितिप्रथमनिषेके वरस्य बंधस्य ।
द्वितीयनिषेकप्रभृतिषु निक्षिप्ते ज्येष्ठनिक्षेपः ॥ ६५ ॥

अर्थ—अथवा किसी आचार्यके मतसे निक्षेप ऐसा माना गया है कि बांधी हुई उत्कृष्ट स्थितिकी बन्धावलिको छोड़ उसके बाद उसके प्रथमनिषेकका उत्कर्षण कर उसके द्रव्यको उस उत्कर्षण करनेके समयमें बन्धे उत्कृष्ट स्थिति लिये हुए समयप्रबद्धके द्वितीयनिषेकको आदि लेकर अंतमें अतिस्थापनावलीमात्रनिषेकोंको छोड़ सब निषेकोंमें निक्षेपण किया । वहांपर एक समय सहित एक आवलि और बन्धीस्थितिका आबाधाकाल इन दोनोंकर हीन उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण उत्कृष्ट निक्षेप होता है ॥ ६५ ॥

उक्कस्सट्ठिदिबंधे आबाहागा ससमयमावलियं ।
उदरियणिसेगेसुक्कट्टेसु अवरमावलियं ॥ ६६ ॥

उत्कृष्टस्थितिबंधे आबाधाग्रा ससमयामावलिकाम् ।
उदीर्यमाणनिषेकेषूत्कर्षेषु अवरमावलिकम् ॥ ६६ ॥

अर्थ—उत्कृष्ट स्थिति लिये हुए जो उत्कर्षण करनेके समयमें बन्धा समयप्रबद्ध है उसकी आबाधाकालके अन्तसमयसे लेकर एक समय अधिक आवलि मात्र समय पहले उदय आने योग्य जो सब सत्ताका निषेक उसके उत्कर्षण करनेपर आवलिमात्र जघन्य अतिस्थापन होता है ॥ ६६ ॥

उदरिय तदो विदीयावलिपढमुक्कट्टणे वरं हेट्ठा ।
अइट्ठावणमाबाहा समयजुदावलियपरिहीणा ॥ ६७ ॥

उदीर्य ततो द्वितीयावलिप्रथमोत्कर्षणे वरमधस्तना ।
अतिस्थापना आबाधा समययुतावलिकपरिहीना ॥ ६७ ॥

अर्थ—उसके बाद उससे पहले उदय आने योग्य ऐसा दूसरा कोई सत्तारूप समयप्रबद्ध संबन्धी द्वितीय आवलिका प्रथम निषेक उसके उत्कर्षण होनेपर नीचे एक समय अधिक आवलिकर हीन आबाधाकालके प्रमाण उत्कृष्ट अतिस्थापन होता है ॥ ६७ ॥

अब प्रसंग पाकर गुणश्रेणीका विधान करते हैं;—

उदयाणमावलिम्हि य उभयाणं बाहरम्मि खिवणट्ठं ।
लोयाणमसंखेज्जो कमसो उक्कट्टणो हारो ॥ ६८ ॥

उदीयमानानामावलौ चोभयानां बाह्ये क्षेपणार्थम् ।
लोकानामसंख्येयः क्रमश उत्कर्षणो हारः ॥ ६८ ॥

अर्थ—जिन प्रकृतियोंका उदय पाया जाता है उन्हींके द्रव्यका उदयावलिमें निक्षेपण होता है। उसके लिये असंख्यातलोकका भागहार जानना। और जिनके उदय और अनुदय हैं उन दोनोंके द्रव्यका उदयावलिसे बाह्य गुणश्रेणीमें अथवा ऊपरकी स्थितिमें निक्षेपण होता है उसकेलिये अपकर्षण भागहार जानना ॥ ६८ ॥ क्रमशः इस पदसे पल्यका असंख्यातवें भागका भी भाग प्रगट किया है।

आगे इसी कथनको खुलासा करते हैं:—

उक्कट्ठिदइगिभागे पल्लासंखेण भाजिदे तत्थ ।
बहुभागमिदं दव्वं उवरिल्लठिदीसु णिक्खिवदि ॥ ६९ ॥

उत्कर्षितैकभागे पल्यासंख्येन भाजिते तत्र ।
बहुभागमिदं द्रव्यमुपरितनस्थितिषु निक्षिपति ॥ ६९ ॥

अर्थ—अपकर्षण भागहारका भाग देनेपर एक भागमें पल्यका असंख्यातवें भागका भागदिया उसमेंसे बहुभाग ऊपरकी स्थितिमें निक्षेपण वह जीव करता है ॥ ६९ ॥

सेसगभागे भजिदे असंखलोगेण तत्थ बहुभागं ।
गुणसेढीए सिंचदि सेसेगं चेव उदयम्हि ॥ ७० ॥

शेषकभागे भजितेऽसंख्यलोकेन तत्र बहुभागम् ।
गुणश्रेण्या सिंचति शेषैकं चैव उदये ॥ ७० ॥

अर्थ—अवशेष (बाकी) एक भागको असंख्यातलोकका भाग देना वहां बहुभागको गुणश्रेणी आयाममें देना और बाकीका एक भाग उदयावलिमें देना ॥ ७० ॥

उदयावलिस्स दव्वं आवलिभजिदे दु होदि मज्झधणं ।
रूऊणद्धाणद्धेणूणेण णिसेयहारेण ॥ ७१ ॥
मज्झिमधणमवहरिदे पचयं पचयं णिसेयहारेण ।
गुणिदे आदिणिसेयं विसेसहीणं कमं तत्तो ॥ ७२ ॥

उदयावलेर्द्रव्यमावलिभाजिते तु भवति मध्यधनम् ।
रूपोनाद्धानार्धेनोनेन निषेकहारेण ॥ ७१ ॥
मध्यमधनमवहरिते प्रचयं प्रचयं निषेकहारेण ।
गुणिते आदिनिषेकं विशेषहीनं क्रमं ततः ॥ ७२ ॥

अर्थ—उदयावलिमें दिया जो द्रव्य उसको आवलीके समय प्रमाणका भाग देनेपर मध्यधन होता है। और उस मध्यधनको एक कम आवलि प्रमाण गच्छके आधेकम निषे-

फहारका भागदेनेसे चयका प्रमाण होता है । उस चयको निषेक हारसे (दो गुणहानिसे) गुणा करनेपर आवलीके प्रथम निषेकके द्रव्यका प्रमाण आता है । उससे द्वितीयादिनिषेकोंमें दिये क्रमसे एक एक चयकर घटता प्रमाण लिए जानना । यहां एक कम आवलीमात्र चय घटनेपर अंतनिषेकमें दिये द्रव्यका प्रमाण होता है । ऐसे उदयावलिके निषेकोंमें दिये द्रव्यका विभाग है ॥ ७१ । ७२ ॥

उक्कट्टिदम्हि देदि हु असंखसमयप्पबंधमादिम्हि ।
संखातीदगुणक्कममसंखहीणं विसेसहीणक्कमं ॥ ७३ ॥

अपकर्षिते ददाति हि असंख्यसमयप्रबद्धमादौ ।
संख्यातीतगुणक्रममसंख्यहीनं विशेषहीनक्रमम् ॥ ७३ ॥

अर्थ—गुणश्रेणीकेलिये अपकर्षण किये द्रव्यको प्रथमसमयकी एक शलाका उससे दूसरेकी असंख्यातगुणी इसतरह अंत समयतक असंख्यातगुणा क्रमलिये हुए जो शलाका उनको जोड़ उसका भाग देनेसे जो प्रमाण आवे उसको अपनी २ शलाकाओंसे गुणाकरनेसे गुणश्रेणिआयामके प्रथमनिषेकमें दिया द्रव्य असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण आता है । उससे द्वितीयादिनिषेकोंमें द्रव्य क्रमसे असंख्यातगुणा अंत समयतक जानना । प्रथमनिषेकमें द्रव्य गुणश्रेणीके अंत निषेकमें दिये द्रव्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । प्रथम गुणहानिका द्वितीयादि निषेकोंमें दिया द्रव्य चय घटता क्रमलिये हुए है ॥ ७३ ॥

पडिसमयं उक्कट्टदि असंखगुणियक्कमेण संचदिय ।
इदि गुणसेढीकरणं आउगवज्जाण कम्माणं ॥ ७४ ॥

प्रतिसमयमपकर्षति असंख्यगुणितक्रमेण संचिनोति ।
इति गुणश्रेणीकरणमायुष्कवर्ज्यानां कर्मणाम् ॥ ७४ ॥

अर्थ—गुणश्रेणी करनेके द्वितीयादि अंतपर्यंत समयोंमें समय समयके प्रति असंख्यात गुणा क्रम लिये द्रव्यको अपकर्षण करता है और संचित अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार उदयावलि आदिमें उसे निक्षेपण करता है । ऐसे मिथ्यात्वकी तरह आयुके विना सातकर्मोंका गुणश्रेणीविधान समय २ में होता है सो जानना ॥ ७४ ॥

आगे गुणसंक्रमणका स्वरूप कहते हैं;—

पडिसमयमसंखगुणं दव्वं संकमदि अप्पसत्थाणं ।
बंधुज्झियपयडीणं बंधं संजादिपयडीसु ॥ ७५ ॥

प्रतिसमयमसंख्यगुणं द्रव्यं संक्रामति अप्रशस्तानां ।
बन्धोज्झितप्रकृतीनां बन्धं स्वजातिप्रकृतिषु ॥ ७५ ॥

अर्थ—जिनका बन्ध न पाया जावे ऐसी अप्रशस्त प्रकृतियोंका द्रव्य है वह समय २

के प्रति असंख्यातगुणा क्रमलिये जिनका बन्ध पाया जावे ऐसी स्वजातिप्रकृतियोंमें संक्रमण करता है । अर्थात् अपने स्वरूपको छोड़ उसरूप परिणमता है ॥ ७५ ॥

एवंविह संकमणं पढमकसायाण मिच्छमिस्साणं ।
संजोजणखवणाए इदरेसिं उभयसेढिम्मि ॥ ७६ ॥

एवंविधं संक्रमणं प्रथमकषायाणां मिथ्यमिश्रयोः ।
संयोजनक्षपणयोरितरेषामुभयश्रेणौ ॥ ७६ ॥

अर्थ—ऐसा असंख्यातगुणा क्रमलिये हुए जो संक्रमण उसको गुणसंक्रमण कहते हैं । वह अनन्तानुबंधीकषायोंका गुणसंक्रमण उनके विसंयोजनमें होता है और मिथ्यात्व मिश्रमोहनीयका गुणसंक्रमण उनकी क्षपणामें होता है और अन्य प्रकृतियोंका गुणसंक्रमण उपशमक वा क्षपकश्रेणीमें पाया जाता है ॥ ७६ ॥

आगे स्थितिकांडक घातका स्वरूप कहते हैं;—

पढमं अवरवरट्ठिदिखंडं पल्लस्स संखभागं खु ।
सायरपुधत्तमेत्तं इदि संखसहस्सखंडाणि ॥ ७७ ॥

प्रथमवरवरस्थितिखंडं पल्यस्य संख्येयभागं खलु ।
सागरपृथक्त्वमात्रमिति संख्यसहस्रखंडानि ॥ ७७ ॥

अर्थ—अपूर्वकरणके पहले समयमें किया जो स्थितिकांडक आयाम वह जघन्य तो पल्यका संख्यातवां भागमात्र और उत्कृष्ट पृथक्त्वसागरप्रमाण है । इसतरह स्थितिखंड अपूर्वकरणके कालमें संख्यात हजार होते हैं ॥ ७७ ॥

आउगवज्जाणं ठिदिघादो पढमादु चरिमठिदिसंतो ।
ठिदिबंधो य अपुव्वो होदि हु संखेज्जगुणहीणो ॥ ७८ ॥

आयुर्वर्ज्यानां स्थितिघातः प्रथमावरमस्थितिसत्त्वं ।
स्थितिबंधश्चापूर्वो भवति हि संख्येयगुणहीनः ॥ ७८ ॥

अर्थ—आयुकर्मको छोड़कर शेषकर्मोंके स्थितिखंड स्थितिसत्त्व स्थितिबन्ध हैं वे अपूर्वकरणके पहले समयमें [illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

एवं [illegible] ठिदिबंधोसरणकाले
संखेज्जसहस्साणि य [illegible] ॥ [illegible] ॥

[illegible]

एकैकस्थितिकांडकनिपतनस्थितिबन्धापसरणकाले ।
संख्येयसहस्राणि च निपतन्ति रसस्य खंडानि ॥ ७९ ॥

अर्थ—जिसकर एकवार स्थिति सत्त्व घटाया जावे वह स्थितिकांडकोत्करणकाल है, और जिसकर एकवार स्थितिबन्ध घटाया जावे वह स्थितिबन्धापसरण काल है। ये दोनों समान हैं अन्तर्मुहूर्तमात्र हैं। उन दोनोंमेंसे किसी एकमें जिसकर अनुभागसत्त्व घटाया जाता है ऐसे अनुभागखंडोत्करणकाल संख्यात हजार होते हैं ॥ ७९ ॥

असुहाणं पयडीणं अणंतभागा रसस्स खंडाणि ।
सुहपयडीणं णियमा णत्थित्ति रसस्स खंडाणि ॥ ८० ॥

अशुभानां प्रकृतीनामनन्तभागा रसस्य खण्डानि ।
शुभप्रकृतीनां नियमान्नास्तीति रसस्य खण्डानि ॥ ८० ॥

अर्थ—अशुभरूप असातादि प्रकृतियोंका अनुभागखण्ड (अनुभागकाण्डकायाम) अनन्त बहुभाग मात्र होता है। और साता वेदनीय आदि शुभ प्रकृतियोंका अनुभागकांडक घात नियमसे नहीं है ॥ ८० ॥

रसगदपदेसगुणहाणिट्ठाणगफड्डयाणि थोवाणि ।
अइत्थावणणिक्खेवे रसखंडेणंतगुणियकमा ॥ ८१ ॥

रसगतप्रदेशगुणहानिस्थानकस्पर्धकानि स्तोकानि ।
अतिस्थापननिक्षेपे रसखण्डेऽनन्तगुणितक्रमाणि ॥ ८१ ॥

अर्थ—अनुभागको प्राप्त ऐसे कर्मपरमाणुओंके एकगुणहानिस्थानमें थोड़े स्पर्धक होते हैं उससे अनन्तगुणे अतिस्थापनारूप स्पर्धक हैं उससे अनन्तगुणा अनुभागकांडक आयाम है ॥ ८१ ॥

पढमापुव्वरसादो चरिमे समये पसत्थइदराणं ।
रससत्तमणंतगुणं अणंतगुणहीणयं होदि ॥ ८२ ॥

प्रथमापूर्वरसात् चरमे समये प्रशस्तेतरेषाम् ।
रससत्त्वमनन्तगुणमनन्तगुणहीनकं भवति ॥ ८२ ॥

अर्थ—अपूर्वकरणके पहले समयका प्रशस्त और अप्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभागसत्त्व उससे उसके अन्तसमयमें प्रशस्तोंका अनन्तगुणा बढ़ता हुआ और अप्रशस्तोंका अनन्तगुणा घटता हुआ अनुभागसत्त्व होता है ॥ ८२ ॥

आगे अनिवृत्तिकरणके कार्य कहते हैं;—

बिदियं व तदियकरणं पडिसमयं एक एक परिणामो ।
अण्णं ठिदिरसखंडे अण्णं ठिदिबंधमाणुवई ॥ ८३ ॥

द्वितीयमिव तृतीयकरणं प्रतिसमयमेक एकः परिणामः ।
अन्ये स्थितिरसखंडे अन्यत् स्थितिबंधमाप्नोति ॥ ८३ ॥

अर्थ—दूसरे अपूर्वकरणमें कहे हुए स्थितिखण्डादिकार्य तीसरे अनिवृत्तिकरणमें भी जानना । लेकिन इतना भेद है कि समय समयमें एक एक परिणाम ही होता है और यहां अन्य ही प्रमाणलिये हुए स्थितिखण्ड अनुभागखण्ड तथा स्थितिबन्धका प्रारंभ होता है ॥ ८३ ॥

संखज्जदिमे सेसे दंसणमोहस्स अंतरं कुणई ।
अण्णं ठिदिरसखंडं अण्णं ठिदिबंधणं तत्थ ॥ ८४ ॥

संख्येये शेषे दर्शनमोहस्यांतरं करोति ।
अन्यत् स्थितिरसखंडमन्यत् स्थितिबंधनं तत्र ॥ ८४ ॥

अर्थ—इसतरह स्थितिखण्डादिकर अनिवृत्तिकरणकालका संख्यातवां भाग बाकी रहनेपर दर्शनमोहका अन्तर (अभाव) करता है । वहां उसके कालके प्रथमसमयमें अन्य ही स्थितिखण्ड अनुभागबन्ध स्थितिबन्धका प्रारंभ होता है ॥ ८४ ॥

एयट्ठिदिखंडुक्कीरणकाले अंतरस्स णिप्पत्ती ।
अंतोमुहुत्तमेत्तं अंतरकरणस्स अद्धाणं ॥ ८५ ॥

एकस्थितिखंडोत्करणकाले अंतरस्य निष्पत्तिः ।
अंतर्मुहूर्तमात्रमंतरकरणस्याद्धा ॥ ८५ ॥

अर्थ—एक स्थितिखण्डोत्करणकालमें अन्तरकरणकी उत्पत्ति होती है । वह अन्तरकरणका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है ॥ ८५ ॥

गुणसेढीए सीसं तत्तो संखगुण उवरिमठिदिं च ।
हेट्ठुवरिम्हि य आबाहुज्झिय बंधम्हि संछुहदि ॥ ८६ ॥

गुणश्रेण्याः शीर्षं ततः संख्यगुणं उपरितनस्थितिं च ।
अधस्तनोपरि चाबाधोज्झित्वा बंधे संपातयति ॥ ८६ ॥

अर्थ—गुणश्रेणीशीर्षके सब निषेक और उनसे संख्यातगुणे ऊपरकी स्थितिके निषेक इन दोनोंको मिलाकर अन्तरायाम होता है अर्थात् इतने निषेकोंका अभाव [illegible] है वह अन्तर्मुहूर्त [illegible] । उनके द्रव्यको मिथ्यात्वकर्मकी स्थितिके आबाधा [illegible] अन्तराय [illegible] नीचेके या ऊपरके निषेकोंमें निक्षेपण करता है ॥ ८६ ॥

अंतरकडपढमादो पडिसमयमसंखगुणिदमुवसमदि ।
गुणसंकमेण दंसणमोहणियं जाव पढमठिदी ॥ ८७ ॥

अन्तरकृतप्रथमतः प्रतिसमयमसंख्यगुणितमुपशाम्यति ।
गुणसंक्रमेण दर्शनमोहनीयं यावत् प्रथमस्थितिः ॥ ८७ ॥

अर्थ—अन्तरकृत हुआ प्रथमस्थितिके प्रथमसमयसे लेकर उसीके अन्तसमय तक समय समयके प्रति असंख्यातगुणा क्रमलिये अन्तरायामके ऊपरवर्ती निषेकरूप द्वितीयस्थितिमें रहनेवाला जो दर्शनमोह उसके द्रव्यको गुणसंक्रमण भागहारसे भाजित कर उपशमाता है जब तक पहली स्थिति है ॥ ८७ ॥

पढमट्ठिदियावलिपडिआवलिसेसेसु णत्थि आगाला ।
पडिआगाला मिच्छत्तस्स य गुणसेढिकरणंपि ॥ ८८ ॥
प्रथमस्थितावावलिप्रत्यावलिशेषेषु नास्ति आगालाः ।
प्रत्यागाला मिथ्यात्वस्य च गुणश्रेणिकरणमपि ॥ ८८ ॥

अर्थ—प्रथमस्थितिमें उदयावलि और एकसमय अधिक द्वितीयावलि बाकी रहे वहां आगाल, प्रत्यागाल और मिथ्यात्वकी गुणश्रेणी नहीं होती। अर्थात् दर्शनमोहके बिना अन्यकर्मोंकी गुणश्रेणी होती ही है ॥ ८८ ॥ द्वितीयस्थितिके निषेकोंके द्रव्यको अपकर्षण कर प्रथमस्थितिके निषेकोंमें प्राप्त करनेको आगाल कहते हैं, प्रथमस्थितिके निषेकद्रव्यको उत्कर्षणकर द्वितीय स्थितिके निषेकोंमें प्राप्त करना उसे प्रत्यागाल कहते हैं।

अंतरपढमं पत्ते उवसमणामो हु तत्थ मिच्छत्तं ।
ठिदिरसखंडेण विणा उवट्ठादूण कुणदि तदा ॥ ८९ ॥
अंतरप्रथमं प्राप्ते उपशमनाम हि तत्र मिथ्यात्वम् ।
स्थितिरसखंडेन विना उपस्थापयित्वा करोति तदा ॥ ८९ ॥

अर्थ—इस तरह अनिवृत्तिकरणकालको समाप्त होनेपर उसके बाद अन्तरायामके प्रथमसमयको प्राप्त होने दर्शनमोह और अनन्तानुबन्धी चतुष्क इनका उपशम होनेसे यह जीव तत्त्वार्थश्रद्धानरूप उपशम सम्यग्दृष्टी होता है। वहां द्वितीयस्थितिके प्रथमसमयमें मौजूद मिथ्यात्वद्रव्यको स्थितिकांडक अनुभागकांडकके घातके बिना गुणसंक्रमणका भाग देकर तीनप्रकार परिणमाता है ॥ ८९ ॥

मिच्छत्तमिस्ससम्मसरूवेण य तत्तिधा य दव्वादो ।
सत्तीदो य असंखाणंतेण य होंति भजियकमा ॥ ९० ॥
मिथ्यात्वमिश्रसम्यक्स्वरूपेण च त्रिधा च द्रव्यतः ।
शक्तितश्च असंख्यातानंतेन च भवन्ति भजितक्रमाः ॥ ९० ॥

अर्थ—वह मिथ्यात्वद्रव्य मिथ्यात्व मिश्र सम्यक्त्वमोहनीयरूप तीनप्रकारका होता है।

वह क्रमसे द्रव्य अपेक्षा असंख्यातवां भागमात्र और अनुभाग अपेक्षा अनन्तवां भागमात्र जानना ॥ ९० ॥

पढमादो गुणसंकमचरिमोत्ति य सम्म मिस्ससंमिस्से ।
अहिगदिणाऽसंखगुणो विज्झादो संकमो तत्तो ॥ ९१ ॥

प्रथमात् गुणसंक्रमचरम इति च सम्यक् मिश्रसंमिश्रे ।
अहिगतिनासंख्यगुणो विध्यातः संक्रमः ततः ॥ ९१ ॥

अर्थ—गुणसंक्रमणकालके प्रथमसमयसे लेकर अन्तसमयतक समय २ सर्पकी चालकी तरह असंख्यात गुणा क्रम लिए मिथ्यात्वका द्रव्य है वह सम्यक्त्व मिश्रप्रकृतिरूप परिणमता है। यहां विध्यातका अर्थ मन्द है सो यहांपर विशुद्धता मन्द होनेसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण जो विध्यातसंक्रम उसका भागदेनेसे जो प्रमाण आवे उतने द्रव्यको सम्यक्त्व मोहनीय मिश्रमोहनीयरूप परिणमाता है ॥ ९१ ॥

विदियकरणादिमादो गुणसंकमपूरणस्स कालोत्ति ।
वोच्छं रसखंडुक्कीरणकालादीणमप्प बहु ॥ ९२ ॥

द्वितीयकरणादिमात् गुणसंक्रमपूरणस्य काल इति ।
वक्ष्ये रसखंडोत्करणकालादीनामल्पं बहु ॥ ९२ ॥

अर्थ—दूसरे अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर गुणसंक्रमकालके पूर्णहोनेतक संभवते अनुभागकांडक उत्करणकालादि हैं उनका अल्पबहुत्व आगे कहेंगे ॥ ९२ ॥

अंतिमरसखंडुक्कीरणकालादो दु पढमओ अहिओ ।
तत्तो संखेज्जगुणो चरिमट्ठिदिखंडहदिकालो ॥ ९३ ॥

अंतिमरसखंडोत्करणकालस्तु प्रथमो अधिकः ।
ततः संख्यातगुणः चरमस्थितिखंडहतिकालः ॥ ९३ ॥

अर्थ—अन्तसमयमें संभव ऐसा अनुभागखण्डोत्करणकाल है वह थोड़ा है उससे अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें आरंभ होनेवाला अनुभागकांडकोत्करणकाल है उससे संख्यातगुणा अन्तका स्थितिकांडकोत्करणकाल है [illegible]

तत्तो पढमो अहिओ [illegible] ।
[illegible] ॥ ९४ ॥

[illegible]

अर्थ—उससे अधिक अपूर्वकरणके पहले समयमें प्रारंभ होनेवालेका काल है। उसमें संख्यातगुणा गुणसंक्रम पूरण करनेका काल है उससे संख्यात गुणा गुणश्रेणीशीर्ष है उससे संख्यातगुणा प्रथम स्थितिका आयाम है उससे समयकम दो आवलिमात्र विशेषकर अधिक दर्शनमोहके उपशमानेका काल है ॥ ९४ ॥

अणियट्टियसंखगुणे णियट्टिए सेढियायदं सिद्धं ।
उवसंतद्धा अंतर अवरावरवाह संखगुणिदकमा ॥ ९५ ॥

अनिवृत्तिकसंख्यगुणं निवृत्तिकं श्रेण्यायतं सिद्धम् ।
उपशांताद्धा अंतरमवरवरबाधा संख्यगुणितक्रमा ॥ ९५ ॥

अर्थ—उससे संख्यातगुणा अनिवृत्ति करण काल है उससे संख्यात गुणा अपूर्वकरण काल है उससे अनिवृत्तिकरणकाल और इसका संख्यातवां भागमात्र विशेषकर अधिक गुणश्रेणि आयाम है उससे संख्यातगुणा उपशम सम्यक्त्वकाल है। उससे संख्यातगुणा अन्तरायाम है। उससे संख्यात गुणी जघन्य आबाधा है उससे संख्यातगुणी उत्कृष्ट आबाधा है ॥ ९५ ॥

पढमापुव्वजहण्णं ठिदिखंडमसंखमं गुणं तस्स ।
वरमवरट्ठिदिसत्ता एदे य संखगुणियकमा ॥ ९६ ॥

प्रथमापूर्वजघन्यं स्थितिखंडमसंख्यातं गुणं तस्य ।
वरावरस्थितिसत्त्वे एतानि च संख्यगुणितक्रमाणि ॥ ९६ ॥

अर्थ—उससे संख्यात गुणा पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्यस्थितिकांडक आयाम है उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरणके पहले समयमें संभव उत्कृष्ट स्थितिकांडक आयाम है उससे संख्यातगुणा मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिबन्ध है उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरणके पहले समयमें संभव उत्कृष्ट स्थिति बन्ध है उससे संख्यात गुणा मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्त्व है उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें संभवता उत्कृष्ट स्थिति सत्त्व है। यहां पर जघन्य स्थितिबन्धादि चार पदोंका प्रमाण सामान्यरीतिसे अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर है ॥ ९६ ॥ इसतरह पचीस जगह अल्पबहुत्व कहा गया है।

अंतो कोडाकोडी जाहे संखेज्जसायरसहस्से ।
णूणा कम्माण ठिदी ताहे उवसमगुणं गहइ ॥ ९७ ॥

अंतःकोटीकोटिर्यदा संख्येयसागरसहस्रेण ।
न्यूना कर्मणां स्थितिः तदा उपशमगुणं गृह्णाति ॥ ९७ ॥

अर्थ—जिस अन्तरायामके प्रथमसमयमें संख्यातहजार सागरसे कम अन्तःकोड़ाकोड़ी-सागरमात्र कर्मोंका स्थितिसत्त्व होवे उससमयमें उपशमसम्यक्त्वगुणको ग्रहण करता है ॥९७॥

तट्ठाणे ठिदिसंतो आदिमसम्मेण देससयलजमं ।
पडिवज्जमाणगस्स संखेज्जगुणेण हीणकमो ॥ ९८ ॥

तत्स्थाने स्थितिसत्त्वं आदिमसम्येन देशसकलयमं ।
प्रतिपद्यमानस्य संख्येयगुणेन हीनक्रमः ॥ ९८ ॥

अर्थ—इसी अन्तरायामके प्रथमसमयवर्ती स्थानमें जो देशसंयमसहित प्रथमोपशम-सम्यक्त्वको ग्रहण करे तो उसके स्थितिसत्त्व पूर्वकी अपेक्षा संख्यातगुणा कम होता है । और जो सकलसंयम सहित प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त होवे उसके स्थितिसत्त्व उससे भी संख्यातगुणा कम होता है । क्योंकि अनन्तगुणी विशुद्धताके विशेषसे स्थितिखण्डायाम संख्यातगुणा होता है उनपर घटाई हुई बाकी स्थिति संख्यातवें भाग संभवती है ॥ ९८॥

उवसामगो य सव्वो णिव्वाघादो तहा णिरासाणो ।
उवसंते भजियव्वो णिरासणो चेव खीणम्हि ॥ ९९ ॥

उपशामकश्च सर्वः निर्व्याघातस्तथा निरासानः ।
उपशान्ते भजितव्यो निरासानश्चैव क्षीणे ॥ ९९ ॥

अर्थ—दर्शनमोहका उपशम करनेवाले सभी जीव मरण रहित हैं और सासादनको प्राप्त नहीं होते । और उपशम हुए बाद उपशम सम्यक्त्वी हुए कोई सासादन गुणस्थानको प्राप्त नहीं होते कोई होते हैं । उपशम सम्यक्त्वका काल समाप्त होने बाद सासादन नहीं होता वहां नियमसे दर्शनमोहकी तीन प्रकृतियोंमेंसे एकका उदय होता है ॥ ९९ ॥

उवसमसम्मत्तद्धा आवलिमेत्तो दु समयमेत्तोत्ति ।
अवसिद्धे आसाणो अणअण्णदरुदयदो होदि ॥ १०० ॥

उपशमसम्यक्त्वाद्धा षडावलिमात्रस्तु समयमात्र इति ।
अवसिष्टे आसादनः अनान्यतमोदयतो भवति ॥ १०० ॥

अर्थ—उपशम सम्यक्त्वके कालमें उत्कृष्ट छह आवलि तथा जघन्य एक समय शेष रहनेपर अनन्तानुबन्धी क्रोधादिकोंमेंसे किसी एकका उदय होनेसे सम्यक्त्वको विनाशकर जबतक मिथ्यात्वको प्राप्त न होवे उसके बीचके कालमें सासादन सम्यक्त्व होता है॥१००॥

सायारे पट्ठवगो णिट्ठवगो मज्झिमो य भजणिज्जो ।
जोगे अण्णदरम्हि दु जहण्णए तेउलेस्साए ॥ १०१ ॥

साकारे प्रस्थापकः निष्ठापकः मध्यमश्च भजनीयः ।
योगे अन्यतरस्मिन् तु जघन्ये तेजोलेश्यायाः ॥ १०१ ॥

अर्थ—साकार अर्थात् [illegible] होनेपर ही यह जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको [illegible] करता है और उसको पूर्ण करनेवाला [illegible] अवस्थामें ज्ञानका अनियम है

यानी साकार अनाकार दोनों ही उपयोगवाला होता है । और तीनमेंसे किसी एक योगमें वर्तमान प्रथमसम्यक्त्वको प्रारंभ करसकता है । तेजोलेश्याके जघन्य अंशमें ही वर्तमान जीव प्रथमसम्यक्त्वका प्रारंभक होता है अशुभलेश्यामें नहीं होता ॥ १०१ ॥

अंतोमुहुत्तमद्धं सव्वोवसमेण होदि उवसंतो ।
तेण परं उदओ खलु तिण्णेकदरस्स कम्मस्स ॥ १०२ ॥

अंतर्मुहूर्तमद्धा सर्वोपशमेन भवति उपशांतः ।
तेन परं उदयः खलु त्रिष्वेकतमस्य कर्मणः ॥ १०२ ॥

अर्थ—अन्तर्मुहूर्तकालतक सब दर्शनमोहका उपशमकर उपशमसम्यग्दृष्टी होता है । उसके बाद तीन दर्शनमोहकी प्रकृतियोंमेंसे किसी एकका उदय नियमसे होता है॥१०२॥

उवसमसम्मत्तुवरिं दंसणमोहं तुरंत पूरेदि ।
उदयिल्लस्सुदयादो सेसाणं उदयबाहिरदो ॥ १०३ ॥

उपशमसम्यक्त्वोपरि दर्शनमोहं त्वरितं पूरयति ।
उदीयमानस्योदयतः शेषाणामुदयबाह्यतः ॥ १०३ ॥

अर्थ—उपशम सम्यक्त्वके अन्तसमयके बाद दर्शनमोहकी अन्तरायामके ऊपरकी द्वितीयस्थितिके निषेकद्रव्यका अपकर्षण करके अन्तरको पूरता है । वहां जिस प्रकृतिका उदय पाया जावे उसका तो उदयावलिके प्रथमनिषेकसे लेकर और उदयहीन प्रकृतियोंका उदयावलिसे बाह्य निषेकसे लेकर उस अपकर्षण किये द्रव्यको अन्तरायाममें वा द्वितीयस्थितिमें निक्षेपण करता है ॥ १०३ ॥

उक्कट्टिदइगभागं समयगदीए विसेसहीणकमं ।
सेसासंखाभागे विसेसहीणे खिवदि सव्वत्थ ॥ १०४ ॥

अपकर्षितैकभागं समयगत्या विशेषहीनक्रमम् ।
शेषासंख्यभागे विशेषहीने क्षिपति सर्वत्र ॥ १०४ ॥

अर्थ—उदयवान सम्यक्त्व मोहनीयके द्रव्यको अपकर्षण भागहारका भाग देवे । उनमेंसे एकभागको असंख्यातलोकका भागदेवे उनमेंसे एक भाग तो उदयावलिके निषेकोंमें चय घटते हुए क्रमसे निक्षेपण करना और अपकर्षण किये द्रव्यमें शेष बहुभाग मात्र अपकृष्टावशिष्ट द्रव्य है वह चयकर हीन सब जगह क्षेपण करना ॥ १०४ ॥ यहां चय घटते क्रमसे गोपुच्छाकार रचना है ।

सम्मुदये चलमलिणमगाढं सद्दहदि तच्चयं अत्थं ।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥ १०५ ॥

सुत्तादो तं सम्मं दरसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवदि मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी ॥ १०६ ॥

सम्यक्त्वोदये चलमलिनमगाढं श्रद्धाति तत्त्वमर्थम्।
श्रद्धाति असद्भावमजानन् गुरुनियोगात् ॥ १०५ ॥
सूत्रतस्तं सम्यक् दर्शयंतं यदा न श्रद्धाति।
स चैव भवति मिथ्यादृष्टिर्जीवः ततः प्रभृति ॥ १०६ ॥

अर्थ—उपशम सम्यक्त्वका काल पूर्ण हुए बाद नियमसे तीनोंमें एक दर्शन मोहकी प्रकृतिका उदय होता है। वहां पर सम्यक्त्वमोहनीके उदय होनेपर यह जीव वेदक (क्षयोपशमिक) सम्यग्दृष्टी होता है। वह चल मलिन अगाढरूप तत्त्वार्थकी श्रद्धा करता है अर्थात् सम्यक्त्व मोहनीयके उदयसे श्रद्धानमें चलपना वा मैलापना वा शिथिलपना होता है। और वह जीव आप तो विशेष नहीं जानता हुआ अज्ञात गुरुके निमित्तसे असत्य श्रद्धान भी कर लेता है परंतु वह सर्वज्ञकी आज्ञा इसीतरह है ऐसा समझता है। इसीलिये सम्यग्दृष्टि है। तथा जो कभी कोई जानकार गुरू जिनसूत्रसे सम्यक् स्वरूप दिखलावे उसपर भी हठ वगैरःसे श्रद्धान न करे तो उसी कालसे लेकर वह मिथ्यादृष्टि होजाता है ॥ १०५। १०६ ॥

मिस्सुदये संमिस्सं दहिगुडमिस्सं व तत्तमियरेण।
सद्दहदि एकसमये मरणे मिच्छो व अयदो वा ॥ १०७ ॥

मिश्रोदये संमिश्रं दधिगुडमिश्रं व तत्त्वमितरेण।
श्रद्धातिएकसमये मरणे मिथ्यो वा असंयतो वा ॥ १०७ ॥

अर्थ—मिश्र यानी सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति उसके उदय होनेसे जीव मिश्रगुणस्थानी होता है। वह एकसमयमें तत्त्व और अतत्त्वके मेलरूप श्रद्धान करता है। जैसे दही गुड़ मिलानेसे अन्य ही स्वादरूप होजाता है उसीतरह यहां सत्य असत्य श्रद्धान मिला हुआ जानना। यहांपर मरण होनेसे पहले ही नियमसे मिथ्यादृष्टि या असंयत होजाता है क्योंकि मिश्रमें मरण नहीं है ॥ १०७ ॥

मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीयदंसणं होदि।
ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं खु रसं जहा जुरिदो ॥ १०८ ॥

मिथ्यात्वं वेदयन् जीवो विपरीतदर्शनो भवति।
न च धर्मं रोचते हि मधुरं खलु रसं यथा ज्वरितः ॥ १०८ ॥

अर्थ—मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयको अनुभवता हुआ जीव मिथ्यादृष्टि होता है वह विपरीत श्रद्

यानी अनेकान्त वस्तुका स्वभाव या रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग वह नहीं रुचता ऐसा जानना ॥ १०८ ॥

मिच्छाइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥ १०९ ॥

मिथ्यादृष्टिर्जीव उपदिष्टं प्रवचनं न श्रद्दधाति ।
श्रद्दधात्यसद्भावमुपदिष्टं वा अनुपदिष्टम् ॥ १०९ ॥

अर्थ—मिथ्यादृष्टि जीव जिनेश्वर भगवानकर उपदेशे हुए प्रवचनको श्रद्धान नहीं करता और अन्यकर उपदेशा हो वा विना उपदेशा हो ऐसे अतत्त्वको श्रद्धान कर लेता है ॥ १०९ ॥ इस तरह प्रथमोपशमसम्यक्त्व का कथन किया ।

अब क्षायिकसम्यक्त्वका वर्णन करते हैं;—

दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजो मणुसो ।
तित्थयरपायमूले केवलिसुदकेवलीमूले ॥ ११० ॥

दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापकः कर्मभूमिजो मनुष्यः ।
तीर्थकरपादमूले केवलिश्रुतकेवलिमूले ॥ ११० ॥

अर्थ—जो मनुष्य कर्मभूमिमें उत्पन्न हुआ हो, तीर्थंकर या अन्यकेवली वा श्रुतकेवलीके चरणकमलोंमें रहता हो वही दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारंभक होता है क्योंकि दूसरी जगह ऐसी परिणामोंमें विशुद्धता नहीं होती ॥ अर्थात् अधःकरणके प्रथम समयसे लेकर जबतक मिथ्यात्वमिश्रमोहनीयका द्रव्य सम्यक्त्वप्रकृतिरूप होके संक्रमण करे तबतक अन्तर्मुहूर्तकाल तक दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारंभक कहा जाता है ॥ ११० ॥

णिट्ठवगो तट्ठाणे विमाणभोगावणीसु धम्मे य ।
किदकरणिज्जो चदुसुवि गदीसु उप्पज्जदे जम्हा ॥ १११ ॥

निष्ठापकः तत्स्थाने विमानभोगावनिषु धर्मे च ।
कृतकृत्यः चतुर्ष्वपि गतिषु उत्पद्यते यस्मात् ॥ १११ ॥

अर्थ—उस प्रारंभकालके आगेके समयसे लेकर क्षायिक सम्यक्त्वके ग्रहणसमयसे पहले निष्ठापक होता है सो जिसजगह प्रारंभ किया था वहां ही तथा सौधर्मादि स्वर्ग अथवा भोगभूमिया मनुष्य तिर्यंचमें अथवा धर्मा नामकी नरकपृथ्वीमें भी निष्ठापक होता है क्योंकि बद्धायु कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि मरकर चारों गतियोंमें उत्पन्न होता है वहां निष्ठापन करता है ॥ १११ ॥

पुव्वं तियरणविहिणा अणं खु अणियट्टिकरणचरिमम्हि ।
उदयावलिबाहिरगं ठिदिं विसंजोजदे णियमा ॥ ११२ ॥

पूर्वं त्रिकरणविधिना अनंतं खलु अनिवृत्तिकरणचरमे ।
उदयावलिबाह्यं स्थितिं विसंयोजयति नियमात् ॥ ११२ ॥

अर्थ—दर्शनमोहकी क्षपणाके पहले तीनकरण विधानसे अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभके उदयावलिसे बाह्य सब स्थिति निषेकोंको अनिवृत्ति करणके अन्तसमयमें नियमसे विसंयोजन करता है अर्थात् बारह कषाय नव नोकषायरूप परिणमाता है॥११२॥

अणियट्टीअद्धाए अणस्स चत्तारि होंति पव्वाणि ।
सायरलक्खपुधत्तं पल्लं दूरावकिट्टि उच्छिट्ठं ॥ ११३ ॥

अनिवृत्त्यद्धायां अनंतस्य चत्वारि भवंति पर्वाणि ।
सागरलक्षपृथक्त्वं पल्यं दूरापकृष्टिरुच्छिष्टम् ॥ ११३ ॥

अर्थ—अनिवृत्तिकरणके कालमें अनन्तानुबन्धीके स्थितिसत्त्वके चार पर्व (विभाग) होते हैं अर्थात् स्थिति घटनेकी मर्यादाकर चार भाग होते हैं । उनमेंसे पहले समय पृथक्त्वलक्ष सागर प्रमाण स्थितिसत्त्व रहता है दूसरा संख्यात हजार स्थितिखण्ड होनेपर पल्यमात्र स्थितिसत्त्व रहता है तीसरा दूरापकृष्टि अर्थात् पल्यका असंख्यातवां भागमात्र स्थितिसत्त्व रहता है और उच्छिष्टावलि अर्थात् आवलिमात्र स्थिति सत्त्व बाकी रहता है वह चौथापर्व है ॥ ११३ ॥

पल्लस्स संखभागो संखा भागा असंखगा भागा ।
ठिदिखंडा होंति कमे अणस्स पवादु पवोत्ति ॥ ११४ ॥

पल्यस्य संख्यभागः संख्या भागा असंख्यका भागाः ।
स्थितिखंडा भवंति क्रमेण अनंतस्य पर्वात् पर्वान्तं ॥ ११४ ॥

अर्थ—अनन्तानुबन्धीके स्थितिसत्त्वके एक पर्वसे दूसरे पर्वतक क्रमसे स्थिति कांडक (खण्ड) होते हैं । उनका आयाम (काल) क्रमसे पल्यका संख्यातवां भाग, पल्यके संख्यात बहुभाग और पल्यके असंख्यात बहुभागमात्र हैं ॥ ११४ ॥

अणियट्टीसंखेज्जाभागेसु गदेसु अणगठिदिसंतो ।
उदधिसहस्सं तत्तो वियले य समं तु पल्लादी ॥ ११५ ॥

अनिवृत्तिसंख्यातभागेषु गतेषु अनंतगस्थितिसत्त्वं ।
उदधिसहस्रं ततो विकले च समं तु पल्यादि ॥ ११५ ॥

अर्थ—अनिवृत्तिकरणके कालको संख्यातका भाग देनेसे प्राप्त बहुभागद्रव्य वितीत होनेपर एक भाग बाकी रहने अनन्तानुबन्धीका स्थितिसत्त्व कहीं हजारसागरमात्र पीछे त्रिकेन्द्रीके बन्धसमान पल्य और [illegible] देने दूरापकृष्टि और आवलिमात्र होता है । ११५

उवहिसहस्सं तु सयं पण्णं पणवीसमेकयं चेव ।
वियलचउके एगे मिच्छुकस्सट्टिदी होदि ॥ ११६ ॥

उदधिसहस्रं तु शतं पंचाशत् पंचविंशतिरेकं चैव ।
विकलचतुष्के एकस्मिन् मिथ्योत्कृष्टस्थितिर्भवति ॥ ११६ ॥

अर्थ—विकलचार यानी असंज्ञी पञ्चेन्द्री चौइन्द्री ते इन्द्री दो इन्द्री और एक अर्थात् एकेंद्री इनके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध क्रमसे हजार सागर, सौ सागर, पचास सागर, पचीस सागर और एकसागर काल प्रमाण होता है। इन्हींके समान स्थितिसत्त्व अनन्तानुबन्धीका कहीं होता है ॥ ११६ ॥

अंतोमुहुत्तकालं विस्समिय पुणोवि तिकरणं किरिय ।
अणियट्टीए मिच्छं मिस्सं सम्मं कमेण णासेइ ॥ ११७ ॥

अंतर्मुहूर्तकालं विश्राम्य पुनरपि त्रिकरणं कृत्वा ।
अनिवृत्तौ मिथ्यं मिश्रं सम्यक्त्वं क्रमेण नाशयति ॥ ११७ ॥

अर्थ—अनन्तानुबन्धीकषायका विसंयोजन करनेके बाद अन्तर्मुहूर्त कालतक विश्राम लेकर उसके बाद फिर तीनकरणोंको करता हुआ अनिवृत्तिकरणकालमें मिथ्यात्व मिश्र और सम्यक्त्व मोहनीयको क्रमसे नाश करता है ॥ ११७ ॥

अणियट्टिकरणपढमे दंसणमोहस्स सेसगाण ठिदी ।
सायरलक्खपुधत्तं कोडीलक्खगपुधत्तं च ॥ ११८ ॥

अनिवृत्तिकरणप्रथमे दर्शनमोहस्य शेषकानां स्थितिः ।
सागरलक्षपृथक्त्वं कोटिलक्षकपृथक्त्वं च ॥ ११८ ॥

अर्थ—अनिवृत्ति करणके पहले समयमें दर्शनमोहका स्थितिसत्त्व पृथक्त्व लक्षसागर प्रमाण है और शेषकर्मोंका स्थितिसत्त्व पृथक्त्व लक्षकोटि सागर प्रमाण है। यहां पृथक्त्व नाम बहुतका है इसलिये कोड़ाकोड़ीके नीचे अन्तःकोड़ाकोड़ि जानना ॥ ११८ ॥

अमणं ठिदिसत्तादो पुधत्तमेत्ते पुधत्तमेत्ते य ।
ठिदिखंडये हवंति हु चउ ति वि एयक्ख पलठिदी ॥ ११९ ॥

अमनःस्थितिसत्त्वतः पृथक्त्वमात्रे पृथक्त्वमात्रे च ।
स्थितिकांडके भवंति हि चतुस्त्रि द्वि एकाक्षे पल्यस्थितिः ॥ ११९ ॥

अर्थ—दर्शनमोहनीकी पृथक्त्वलक्षसागर प्रमाण स्थिति प्रथमसमयमें संभव है उससे परे संख्यात हजार स्थितिकांडक होनेपर असंज्ञीके बन्धसमान हजार सागर स्थितिसत्त्व रहता है उसके बाद बहुत बहुत स्थिति कांडक (खण्ड) होनेपर क्रमसे चौ इन्द्री ते इन्द्री दो इन्द्री एकेंद्रीके स्थितिबन्धके समान सौ सागर आदि स्थितिसत्त्व होता है। उसके

बाद बहुत स्थितिखण्ड होनेपर पल्यके प्रमाण स्थितिसत्त्व होता है ॥ ११९ ॥ इस प्रकार यह दूसरा पर्व हुआ ।

पलट्ठिदिदो उवरिं संखेज्जसहस्समेत्तठिदिखंडे ।
दूरावकिट्टिसण्णिद ठिदिसंते होदि णियमेण ॥ १२० ॥

पल्यस्थितित उपरि संख्येयसहस्रमात्रस्थितिखंडे ।
दूरापकृष्टिसंज्ञितं स्थितिसत्त्वं भवति नियमेन ॥ १२० ॥

अर्थ—उस पल्य स्थितिसत्त्वके बाद पल्यको संख्यातका भाग देनेसे बहुभागमात्र आयामवाले ऐसे संख्यातहजार स्थितिखण्ड होजानेपर दूरापकृष्टि नामा स्थितिसत्त्व नियमसे होता है ॥ १२० ॥ यह तीसरा पर्व हुआ ।

पल्लस्स संखभागं तस्स पमाणं तदो असंखेज्ज ।
भागपमाणे खंडे संखेज्जसहस्सगेसु तीदेसु ॥ १२१ ॥
सम्मस्स असंखाणं समयपबद्धाणुदीरणा होदि ।
तत्तो उवरिं तु पुणो बहुखंडे मिच्छउच्छिट्ठं ॥ १२२ ॥

पल्यस्य संख्यभागं तस्य प्रमाणं तत असंख्येयं ।
भागप्रमाणे खंडे संख्येयसहस्रकेषु अतीतेषु ॥ १२१ ॥
सम्यक्त्वस्यासंख्यानां समयप्रबद्धानामुदीरणा भवति ।
तत उपरि तु पुनः बहुखंडे मिथ्योच्छिष्टम् ॥ १२२ ॥

अर्थ—उस दूरापकृष्टि नामा स्थितिसत्त्वका प्रमाण पल्यके संख्यातवें भागमात्र जानना । उसके बाद पल्यको असंख्यातका भाग देनेपर बहुभागमात्र आयाम (काल) लिये ऐसे संख्यात हजार स्थिति खण्ड होनेपर सम्यक्त्वमोहनीयका द्रव्य अपकर्षण किया उसमें असंख्यात समयप्रबद्धमात्र उदीरणा द्रव्यको उदयावलिमें देते हैं अर्थात् उदीरणारूप उदय होता है । उसके बाद फिर पल्यको असंख्यातका भाग देकर बहुभाग मात्र कालको लिये ऐसे बहुत स्थितिखण्ड होनेपर मिथ्यात्वके उच्छिष्टावलिमात्र निषेक बाकी रहते हैं अन्य सब मिथ्यात्वप्रकृतिका द्रव्य मिश्रमोहनीय व सम्यक्त्व मोहनीरूप परिणमता है ॥ १२१ । १२२ ॥

जत्थ असंखेज्जाणं समयपबद्धाणुदीरणा तत्तो ।
पल्लासंखेज्जदिमो हारेणासंखलोगमिदो ॥ १२३ ॥

यत्रासंख्येयानां समयप्रबद्धानामुदीरणा ततः ।
पल्यासंख्येयः हारेणासंख्यलोकमितः ॥ १२३ ॥

अर्थ—जिस कालमें असंख्यात समयप्रबद्धकी उदीरणा होवे अर्थात् ऊपरके निषेकोंका

द्रव्य उदयावलिमें प्राप्त होवे उस समयसे लेकर आगेके समयोंमें उदयावलिमें द्रव्य देनेके लिये भागहार पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही जानना। वह पूर्ववत् असंख्यातलोकमात्र जानना ॥ १२३ ॥

मिच्छुच्छिट्ठादुवरिं पल्लासंखेज्जभागगे खंडे ।
संखेज्जे समतीदे मिस्सुच्छिट्ठं हवे णियमा ॥ १२४ ॥

मिथ्योच्छिष्टादुपरि पल्यासंख्येयभागगे खंडे ।
संख्येये समतीते मिश्रोच्छिष्टं भवेत् नियमात् ॥ १२४ ॥

अर्थ—मिथ्यात्वकी उच्छिष्टावलिमात्र स्थिति बाकी रहनेके समयसे लेकर मिश्रमोहनीकी स्थितिमें पल्यके असंख्यातका भाग देनेपर बहुभागमात्र आयामलिये ऐसे संख्यात हजार स्थितिखण्ड बीत जानेपर अन्तमें मिश्रमोहनीयके निषेक (उदय होके निर्जरा होनेवाले परमाणु) उच्छिष्टावलिमात्र नियमसे बाकी रहते हैं ॥ १२४ ॥

मिस्सुच्छिट्ठे समये पल्लासंखेज्जभागगे खंडे ।
चरिमे पडिदे चेट्ठदि सम्मस्सडवस्सठिदिसंतो ॥ १२५ ॥

मिश्रोच्छिष्टे समये पल्यासंख्येयभागगे खंडे ।
चरमे पतिते चेष्टते सम्यक्त्वस्याष्टवर्षस्थितिसत्त्वम् ॥ १२५ ॥

अर्थ—जिस समय मिश्रमोहनीकी उच्छिष्टावलिमात्र स्थिति बाकी रहती है उसी समयमें सम्यक्त्वमोहनीकी स्थितिमें पल्यके असंख्यातवेंका भाग देनेपर बहुभागमात्र आयामलिये ऐसे संख्यात हजार स्थितिखण्ड बीत जानेपर उस सम्यक्त्वमोहनीका आठवर्ष प्रमाण स्थितिसत्त्व बाकी रहता है । भावार्थ—मिश्रमोहनीकी उच्छिष्टावलिमात्र स्थिति रहनेका और सम्यक्त्वमोहनीकी आठ वर्ष स्थिति रहनेका यह एक ही काल है ॥१२५॥

मिच्छस्स चरमफालिं मिस्से मिस्सस्स चरिमफालिं तु ।
संछुहदि हु सम्मत्ते ताहे तेसिं च वरदव्वं ॥ १२६ ॥

मिथ्यस्य चरमफालिं मिश्रे मिश्रस्य चरमफालिं तु ।
संक्रामति हि सम्यक्त्वे तस्मिन् तेषां च वरद्रव्यम् ॥ १२६ ॥

अर्थ—मिथ्यात्व प्रकृतिके अन्तकांडककी अन्तफालि जिस समय मिश्रमोहनीमें संक्रमण होती है उससमय मिश्रमोहनीका द्रव्य उत्कृष्ट होता है और मिश्रमोहनीके अन्तकांडककी अन्तफालिका द्रव्य जिससमय सम्यक्त्व मोहनीमें संक्रमण करता है उससमय सम्यक्त्व मोहनीका द्रव्य उत्कृष्ट होता है ॥ १२६ ॥

जदि होदि गुणिदकम्मो दव्वमणुक्कस्समण्णहा तेसिं ।
अवरं ठिदिमिच्छुच्छिट्ठे उच्छिट्ठे समयदुगमेसे ॥ १२७ ॥

यदि भवति गुणितकर्मा द्रव्यमनुत्कृष्टमन्यथा तेषाम्।
अवरं स्थितिमिश्रद्विके उच्छिष्टे समयद्विकशेषे ॥ १२७ ॥

अर्थ—दर्शनमोहका क्षय करनेवाला जीव जो उत्कृष्टकर्मसंचय सहित हो तो उसके उन दो प्रकृतियोंका द्रव्य उससमयमें उत्कृष्ट होता है और जो वह उत्कृष्टकर्मका संचय सहित न हो तो उसके उनका द्रव्य अनुत्कृष्ट होता है और मिथ्यात्व तथा मिश्रमोहनीकी स्थिति उच्छिष्टावलिमात्र रहनेपर क्रमसे एक एक समयमें एक एक निषेक झड़कर दो समय बाकी रहनेपर जघन्यस्थिति होती है। भावार्थ—वहां उदयावलीका अन्तनिषेकमात्र स्थितिसत्त्व होता है ॥ १२७।

मिस्सदुगचरिमफाली किंचूणदिवड्ढसमयपवद्धपमा।
गुणसेढिं करिय तदो असंखभागेण पुव्वं व ॥ १२८ ॥

मिश्रद्विकचरमफालिः किंचिदूनद्व्यर्धसमयप्रबद्धप्रमा।
गुणश्रेणिं कृत्वा तत असंख्यभागेन पूर्वं वा ॥ १२८ ॥

अर्थ—मिश्रमोहनी और सम्यक्त्वमोहनीकी अन्तकी दो फालिका द्रव्य कुछ कम डेढ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण है। उसके बाद पहलेकी तरह उन दोनों फालियोंके द्रव्यमें पल्यका असंख्यातवें भागका भाग देनेसे एक भाग गुणश्रेणीमें दिया ॥ १२८ ॥

सेसं विसेसहीणं अडवस्सुवरिमठिदीए संखुद्धे।
चरमावलिं व सरिसी रयणा संजायदे एत्तो ॥ १२९ ॥

शेषं विशेषहीनमष्टवर्षस्योपरिस्थित्यां संक्षुब्धे।
चरमावलिरिव सदृशी रचना संजायतेऽतः ॥ १२९ ॥

अर्थ—अवशेष बहुभागोंके द्रव्यको गुणश्रेणी आयाममात्र अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्ष प्रमाण ऊपरकी स्थिति उसके निषेकोंमें चय घटते हुए क्रमसे क्षेपण करे। ऐसा देनेपर गुणश्रेणीके अन्तनिषेकके द्रव्यसे ऊपरकी स्थितिके प्रथमनिषेकका द्रव्य असंख्यातगुणा होता है। क्योंकि यहां बहुभाग मिलाया है और स्थितिका प्रमाण थोड़ा है ॥ १२९ ॥

अडवस्सादो उवरिं उदयादिअवट्ठिदं च गुणसेढी।
अंतोमुहुत्तियं ठिदिखंडं च य होदि सम्मस्स ॥ १३० ॥

अष्टवर्षादुपरि उदयादवस्थितं च गुणश्रेणी।
अंतर्मुहूर्तिकं स्थितिखंडं च च भवति सम्यक्त्व ॥ १३० ॥

अर्थ—सम्यक्त्वमोहनीयकी अष्टवर्षस्थिति करनेके समयसे लेकर ऊपर सब समयोंमें उदयादि अवस्थिति गुणश्रेणी आयाम है। और सम्यक्त्वमोहनीयकी स्थितिमें स्थितिकाण्ड

अन्तर्मुहूर्तमात्र आयाम धारण करते हैं। यहांसे अब एक एक स्थितीकांडककर अंतर्मुहूर्त-मात्र स्थिति घटाते हैं ॥ १३० ॥

बिदियावलिस्स पढमे पढमस्संते च आदिमणिसेये ।
तिट्ठाणेणंतगुणेणूणकमोवट्टणं चरमे ॥ १३१ ॥

द्वितीयावलेः प्रथमे प्रथमस्यांते चादिमनिषेके ।
त्रिस्थानेनंतगुणेनोनक्रमापवर्तनं चरमे ॥ १३१ ॥

अर्थ—द्वितीयावलिके पहले समयमें प्रथमावलिके अन्तसमयमें और आदिके निषेकमें इसतरह तीन स्थानोंमें समय समय प्रति अनन्तगुणा घटता क्रमसे उच्छिष्टावलिके अन्त-समय पर्यंत अनुभागका अपवर्तन (नाश) जानना चाहिये ॥ १३१ ॥

अडवस्से उवरिंमि वि दुचरिमखंडस्स चरिमफालित्ति ।
संखातीदगुणकम विसेसहीणकमं देदि ॥ १३२ ॥

अष्टवर्षात् उपरि अपि द्विचरमखंडस्य चरमफालीति ।
संख्यातीतगुणक्रमं विशेषहीनक्रमं ददाति ॥ १३२ ॥

अर्थ—आठवर्षस्थितिसे ऊपर स्थितिमें प्रथमफालिके पतनरूप प्रथमसमयसे लेकर द्विचरमकांडककी अन्तफालिके पतनसमयतक गुणश्रेणी आदिके लिये अपकर्षण किये द्रव्यका और स्थिति घटानेकेलिये ग्रहण किये गये स्थितिकांडककी फालिके द्रव्यका उद-यादि अवस्थितिगुणश्रेणी आयाममें तो असंख्यातगुणा कम लिये हुए तथा अन्तर्मुहूर्तकम आठवर्षप्रमाण ऊपरकी स्थितिमें चय घटता क्रम लिये हुए निक्षेपण होता है ॥ १३२ ॥

आगे यहां स्पष्ट अर्थ जानकेलिये आठवर्ष करनेके समयसे पहले समयमें अथवा आठ वर्ष करनेके समयमें वा आगामी समयोंमें संभव विधान कहते हैं;—

अडवस्से संपहियं पुव्विल्लादो असंखसंगुणियं ।
उवरिं पुण संपहियं असंखसंखं च भागं तु ॥ १३३ ॥

अष्टवर्षे संप्रहितं पूर्वस्मात् असंख्यसंगुणितं ।
उपरि पुनः संप्रहितं असंख्यसंख्यं च भागं तु ॥ १३३ ॥

अर्थ—आठ वर्ष स्थिति अवशेष करनेके समयमें जो मिश्रसम्यक्त्वमोहनीकी अन्तकी दो फालियोंका द्रव्य है वह इससे पूर्वसमयके द्विचरमफालिके अन्ततक तो गुणसंक्रमद्र-व्यसहित सम्यक्त्वमोहनीका सत्त्वद्रव्य उससे असंख्यात गुणा है। और प्रथमकांडककी द्विचरमफालितक असंख्यातवें भागमात्र तो दीयमान द्रव्य है और अन्तफालिका द्रव्य संख्यातवें भागमात्र है ॥ १३३ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥ १३४ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ १३४ ॥

अर्थ—[illegible] । [illegible] है। क्योंकि [illegible] है ॥ १३४ ॥

अट्ठवस्से संपहियं गुणसेढीसीसयं असंखगुणं ।
पुव्विल्लादो णियमा उवरि विसेसाहियं दिस्सं ॥ १३५ ॥
अष्टवर्षे सांप्रतिकं गुणश्रेणीशीर्षं असंख्यगुणम् ।
पूर्वस्मात् नियमात् उपरि विशेषाधिकं दृश्यम् ॥ १३५ ॥

अर्थ—आठवर्ष करनेके समयमें गुणश्रेणीका शीर्ष (अग्रभाग) उसके पूर्व गलदवशे-षकी और निक्षेप किये द्रव्यको मिलानेसे दृश्यमान द्रव्यका जो प्रमाण है वह इसके बाद पूर्वसमयके गुणश्रेणी शीर्षके दृश्यमान द्रव्यसे असंख्यात गुणा है। और इसके ऊपर आठवर्ष करनेके द्वितीयादि समयमें गुणश्रेणी शीर्षका द्रव्य क्रमसे पूर्व पूर्व गुणश्रेणीशीर्षके द्रव्यसे विशेषकर अधिक है। असंख्यात गुणा नहीं है ॥ १३५ ॥

अडवस्से य ठिदीदो चरिमेदरफालिपडिददव्वं खु ।
संखासंखगुणूणं तेणुवरिमदिस्समाणमहियं सीसे ॥ १३६ ॥
अष्टवर्षे च स्थितितः चरमेतरफालिपतितद्रव्यं खलु ।
संख्यातासंख्यगुणोनं तेनोपरिमदृश्यमानमधिकं शीर्षे ॥ १३६ ॥

अर्थ—आठ वर्ष करनेके पहले समयमें मिश्रसम्यक्त्वमोहनीकी अन्त दो फालियोंका दिया हुआ द्रव्य संख्यात व असंख्यातगुणा कम है और सर्वसंक्रमरूप द्रव्य और निक्षेपन किये द्रव्यको मिलानेसे जो दृश्यमानद्रव्य वह पूर्व पूर्व समयके गुणश्रेणीशीर्षके द्रव्यसे उत्तर उत्तर समयके गुणश्रेणी शीर्षका द्रव्य कुछ विशेषकर अधिक है। गुणकाररूप नहीं है ॥ १३६ ॥

जदि गोउच्छविसेसं रिणं हवे तोवि धणपमाणादो ।
जस्सि असंखगुणूणं ण गणिज्जदि तं तदो एत्थ ॥ १३७ ॥

यदि गोपुच्छविशेषं ऋणं भवेत् तथापि धनप्रमाणात् ।
यस्मात् असंख्यगुणोनं न गण्यते तत्तनोत्र ॥ १३७ ॥

अर्थ—यद्यपि नीचले गुणश्रेणी निषेकके सत्त्वद्रव्यसे ऊपरके गुणश्रेणीशीर्षके सत्त्वद्रव्यमें गोपुच्छविशेष ऋण है तो भी मिलाये हुए अपकृष्ट द्रव्यसे यह चयप्रमाण घटता हुआ द्रव्य असंख्यातगुणा कमती है सो यहांपर घटाने योग्य ऋणको मिलाने योग्य धनसे असंख्यातवें भाग जानकर थोड़ेपनेसे नहीं गिना । पूर्व गुणश्रेणीशीर्षके दृश्य द्रव्यसे उपर गुणश्रेणीशीर्षका द्रव्य विशेष अधिक ही कहा है ॥ १३७ ॥

तक्काले दिस्सं वज्जिय गुणसेढिसीसयं एक्कं ।
उवरिमठिदीसु वट्टदि विसेसहीणकमेणेव ॥ १३८ ॥

तत्काले दृश्यं वर्जयित्वा गुणश्रेणिशीर्षकमेकम् ।
उपरिमस्थितिषु वर्तते विशेषहीनक्रमेणैव ॥ १३८ ॥

अर्थ—उस उस समयमें गुणश्रेणीशीर्षरूप हुए एक एक निषेकको छोड़कर उसके ऊपर जो ऊपरकी स्थितिके सब निषेक उनमें तत्काल संभवता दृश्यमान द्रव्य विशेष घटते अनुक्रमलिये ही जानना ॥ १३८ ॥

अब अन्तरकांडकका विधान कहते हैं;—

गुणसेढिसंखभागा तत्तो संखगुण उवरिमठिदीओ ।
सम्मत्तचरिमखंडो दुचरिमखंडादु संखगुणो ॥ १३९ ॥

गुणश्रेणिसंख्यभागाः ततः संख्यगुणं उपरितनस्थितयः ।
सम्यक्त्वचरमखंडो द्विचरमखंडात् संख्यगुणः ॥ १३९ ॥

अर्थ—गलितावशेष गुणश्रेणी आयामके संख्यातवें भागको लेकर संख्यातगुणा ऊपरकी स्थितिके निषेक बाकी रहे उनके अन्तर्गत सम्यक्त्वके अन्तकांडकायामका प्रमाण है वह द्विचरमकांडकायामके प्रमाणसे संख्यातगुणा है । तो भी यथायोग्य अन्तर्मुहूर्तमात्र ही है ॥ १३९ ॥

सम्मत्तचरिमखंडे दुचरिमफालित्ति तिण्णि पव्वाओ ।
संपहियपुव्वगुणसेढीसीसे सीसे य चरिमम्हि ॥ १४० ॥

सम्यक्त्वचरमखंडे द्विचरमफालीति त्रयः पर्वाः ।
संप्रति पूर्वगुणश्रेणीशीर्षे शीर्षे च चरमे ॥ १४० ॥

अर्थ—सम्यक्त्वमोहनीयके अन्तकांडककी प्रथम फालिके पतन समयसे लेकर द्विचरम-फालिके पतनसमयतक द्रव्यनिक्षेपण करनेमें तीन पर्व जानना । अर्थात् विभागकर तीन जगह द्रव्य देना । उस उत्कीरण प्रथम समयसे लेकर अवशेष स्थितिके अन्तनिषेकतक

जिसका प्रारंभ हुआ ऐसे गुणश्रेणी आयामके शीर्षतक तो एक पर्व जानना। उससे ऊपर पूर्व जो अवस्थितगुणश्रेणी आयाम था उसके शीर्षतक दूसरा पर्व जानना और उसने ऊपर ऊपरकी स्थितिके प्रथमसमयसे लेकर अंतसमयतक तीसरा पर्व जानना ॥ १४० ॥

तत्थ असंखेज्जगुणं असंखगुणहीणयं विसेसूणं।
संखातीदगुणूणं विसेसहीणं च दत्तिकमो ॥ १४१ ॥
उक्कट्टिदबहुभागे पढमे सेसेक्कभागबहुभागे।
बिदिए पव्वेवि सेसिगभागं तदिये जहो देदि ॥ १४२ ॥

तत्रासंख्येयगुणं असंख्यगुणहीनकं विशेषोनम्।
संख्यातीतगुणोनं विशेषहीनं च दत्तिक्रमः ॥ १४१ ॥
अपकर्षितबहुभागे प्रथमे शेषैकभागबहुभागे।
द्वितीये पर्वेपि शेषैकभागं तृतीये यथा ददाति ॥ १४२ ॥

अर्थ—वहां पहले पर्वमें द्रव्य असंख्यातगुणा देना। उससे दूसरे पर्वमें निक्षेपण किया द्रव्य असंख्यात गुणा कम है और उससे तृतीय पर्वके प्रथमनिषेकमें निक्षेपण किया गया द्रव्य असंख्यातगुणा कम है वह चय घटते हुए क्रमसे जानना। उसजगह अपकर्षण किये द्रव्य-मेंसे पहले पर्वमें बहुभाग द्रव्य देना बाकीके एक भागमें भाग देनेपर बहुभाग तो दूसरे पर्वमें देना और बाकीके एकभागको तीसरे पर्वमें देना ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

उदयादिगलिदसेसा चरिमे खंडे हवेज्ज गुणसेढी।
फाडेदि चरिमफालिं अणियट्टीकरणचरिमम्हि ॥ १४३ ॥
उदयादिगलितशेषा चरमे खंडे भवेत् गुणश्रेणी।
पाटयति चरमफालिमनिवृत्तिकरणचरमे ॥ १४३ ॥

अर्थ—सम्यक्त्वमोहनीके अन्तकांडककी प्रथमफालिके पतनसमयसे लेकर द्विचरमफा-लिके पतनसमयतक उदयादिगलितावशेष गुणश्रेणी आयाम है। और शेष रहे अनिवृत्ति-करणके अन्तसमयमें अन्तकांडककी अन्तफालिका पतन होता है ॥ १४३ ॥

चरिमं फालिं देदि दु पढमे पव्वे असंखगुणियकमा।
अंतिमसमयम्हि पुणो पल्लासंखेज्जमूलाणि ॥ १४४ ॥
चरमं फालिं ददाति तु प्रथमे पर्वे असंख्यगुणितक्रमाणि।
अंतिमसमये पुनः पल्यासंख्येयमूलानि ॥ १४४ ॥

अर्थ—गुणितक्रमरूप [illegible] अन्तकांडककी अन्तफालिका द्रव्य उसको असंख्यात-गुणा [illegible] प्रथमसमय [illegible] असंख्य-

तगुणा क्रमकर देना । और शेष बहुभागमात्र द्रव्य गुणश्रेणीके अन्तनिषेकमें निक्षेपण करना ॥ १४४ ॥

चरिमे फालिं दिण्णे कदकरणिज्जेत्ति वेदगो होदि ।
सो वा मरणं पावइ चउगइगमणं च तट्ठाणे ॥ १४५ ॥
देवेसु देवमणुए सुरणरतिरिए चउग्गईसुंपि ।
कदकरणिज्जोपत्ती कमेण अंतोमुहुत्तेण ॥ १४६ ॥

चरमे फालिं दत्ते कृतकरणीयेति वेदको भवति ।
स वा मरणं प्राप्नोति चतुर्गतिगमनं च तत्स्थाने ॥ १४५ ॥
देवेषु देवमनुष्ये सुरनरतिरश्चि चतुर्गतिष्वपि ।
कृतकरणीयोत्पत्तिः क्रमेण अन्तर्मुहूर्तेन ॥ १४६ ॥

अर्थ—इसप्रकार अनिवृत्तिकरणके अन्तसमयमें सम्यक्त्वमोहनीके अन्तकालिके द्रव्यको नीचले निषेकोंमें क्षेपण करनेसे अन्तर्मुहूर्त कालतक कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टी होता है। वह जीव भुज्यमान आयुके नाशसे मरण पावे तो सम्यक्त्वग्रहणके पहले जो आयु बांधा था उससे चारों गतियोंमें उत्पन्न होता है । वहांपर कृत्यकृत्यवेदकके कालके चार भाग एक एक अन्तर्मुहूर्तमात्र करने चाहिये । उनमेंसे पहले भागमें मरे तो देवगतिमें दूसरे भागमें मरे तो देव अथवा मनुष्यमें तीसरे भागमें मरे तो देव वा मनुष्य वा तिर्यंचमें और चौथे भागमें मरण करे तो चारों गतियोंमेंसे कोई गतिमें उत्पन्न होता है । इस तरह कृतकृत्यवेदककी उत्पत्ति जानना चाहिये ॥ १४५ ॥ १४६ ॥

करणपढमादु जावय किदुकिच्चुवरिं मुहुत्तअंतोत्ति ।
ण सुहाण परावत्ती सा धि कओदावरं तु वरिं ॥ १४७ ॥

करणप्रथमात् यावत् कृत्यकृत्योपरि मुहूर्तांत इति ।
न शुभानां परावृत्तिः सा हि कपोतावरं तु उपरि ॥ १४७ ॥

अर्थ—अधःकरणके प्रथमसमयसे लेकर जबतक कृतकृत्यवेदक है तबतक उस अन्तर्मुहूर्तकालमेंसे प्रथमभागमें मरण करे तो पीत पद्म शुक्लरूप शुभ लेश्याओंका बदलना नहीं होता क्योंकि यहांसे मरके देवगतिमें उत्पन्न होता है । और जो अन्यभागोंमें मरे तो शुभलेश्याकी क्रमसे हानि होकर मरणसमय कपोतलेश्याका जघन्य अंश होता है ॥ १४७ ॥

अणुसमओ वट्टणयं कदकिज्जंतोत्ति पुव्वकिरियादो ।
वट्टदि उदीरणं वा असंखसमयप्पवद्धाणं ॥ १४८ ॥

अनुसमयोपवर्तनं कृतकरणीय इति पूर्वक्रियातः ।
वर्तते उदीरणा वा असंख्यसमयप्रबद्धानाम् ॥ १४८ ॥

अर्थ—समय समय अनन्तगुणा घटता क्रमलिये अनुभागका अपवर्तन कहा था वही इस कृतकृत्यवेदककालके अन्तसमयतक पाया जाता है उसीकालमें असंख्यात समय प्रबद्धोंकी उदीरणा पायी जाती है ॥ १४८ ॥

अब उसकी विधि कहते हैं;—

उदयबहिं उक्कट्टिय असंखगुणमुदयआवलिम्हि खिवे ।
उवरिं विसेसहीणं कदकिज्जो जाव अइत्थवणं ॥ १४९ ॥

उदयबहिरपकर्षितं असंख्यगुणं उदयावलौ क्षिपेत् ।
उपरि विशेषहीनं कृतकृत्यो यावदतिस्थापनम् ॥ १४९ ॥

अर्थ—कृतकृत्यवेदककालके एकभाग प्रमाण द्रव्यको उदयावलिसे बाह्य ऊपरके निषेकोंसे ग्रहणकर उसको पल्यके असंख्यातवें भागका भाग देके उनमेंसे एक भाग तो उदयावलिमें असंख्यातगुणा क्रमलिये दिया जाता है और शेष बहुभागमात्र द्रव्य उस उदयावलिसे ऊपरकी स्थितिके अन्तमें समय अधिक अतिस्थापनावलिको छोड़ सब निषेकोंमें विशेषहीन क्रमलिये निक्षेपण करे । इसप्रकार ऊपरकी स्थितिका द्रव्य उदयावलिमें दिया जाता है उसका नाम उदीरणा है ॥ १४९ ॥

जदि संकिलेसजुत्तो विसुद्धिसहिदो वत्तोपि पडिसमयं ।
दव्वमसंखेज्जगुणं उक्कट्टदि णत्थि गुणसेडी ॥ १५० ॥

यदि संक्लेशयुक्तो विशुद्धिसहितो अतोपि प्रतिसमयम् ।
द्रव्यमसंख्येयगुणमपकर्षति नास्ति गुणश्रेणी ॥ १५० ॥

अर्थ—यद्यपि कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि लेश्याके बदलनेसे संक्लेश सहित होता है विशुद्धता युक्त होता है तो भी पहले उत्पन्न हुए करणरूप परिणामोंकी विशुद्धताके संस्कारसे समय २ प्रति असंख्यातगुणे द्रव्यको अपकर्षण कर उदीरणा करता है । गुणश्रेणी आयामके बिना कुछ द्रव्यको उदयावलिमें देता है बाकीको ऊपरकी स्थितिमें देदिया इसलिये यहां गुणश्रेणी नहीं है ॥ १५० ॥

जदि वि असंखेज्जाणं समयपबद्धाणुदीरणा तोवि ।
उदयगुणसेढिठिदिए असंखभागो हु पडिसमयं ॥ १५१ ॥

यद्यपि असंख्येयानां समयप्रबद्धानामुदीरणा तथापि ।
उदयगुणश्रेणिस्थितेरसंख्यभागो हि प्रतिसमयं ॥ १५१ ॥

अर्थ—यद्यपि [illegible] प्रबद्धोंका उदीरणा [illegible] समयके उदीरणा द्रव्यसे [illegible] क्रम लिये है तो भी उस [illegible] उदयमें आये निषेकके द्रव्यसे [illegible] द्रव्य प्रतिसमय [illegible] ही है ॥ १५१ ॥ समय समय प्रति

अर्थ—उससे असंख्यातगुणा दर्शनमोहत्रिककी दूरापकृष्टि नामा स्थितिमें प्राप्त हुआ ऐसा पल्यका असंख्यातवां बहुभागमात्र स्थितिकांडक आयाम है २१ । उससे संख्यातगुणा दूरापकृष्टिस्थितिका कारण ऐसा पल्यका असंख्यात बहुभागमात्र स्थितिकांडक आयाम है ॥ १५८ ॥

पलिदोवमसंतादो विदियो पल्लस्स हेदुगो जो दु ।
अवरो अपुव्वपढमे ठिदिखंडो संखगुणिदकमा ॥ १५९ ॥

पलितोपमसत्त्वतो द्वितीयं पल्यस्य हेतुकं यत्तु ।
अवरमपूर्वप्रथमे स्थितिखंडं संख्यगुणितक्रमं ॥ १५९ ॥

अर्थ—उससे संख्यातगुणा पल्यमात्र शेषस्थिति होनेपर पाया जावे ऐसा द्वितीयस्थितिकांडकका आयाम है २३ । उससे संख्यातगुणा पल्यमात्र स्थितिको कारण ऐसा पल्यका संख्यातवां भागमात्र स्थितिकांडक आयाम है २४ । उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें जिसका प्रारंभ हुआ ऐसा जघन्य स्थितिकांडकका आयाम है ॥ १५९ ॥

पलिदोवमसंतादो पढमो ठिदिखंडओ दु संखगुणो ।
पलिदोवमठिदिसंतं होदि विसेसाहियं तत्तो ॥ १६० ॥

पल्योपमसत्त्वतः प्रथमं स्थितिखंडकं तु संख्यगुणं ।
पल्योपमस्थितिसत्त्वं भवति विशेषाधिकं ततः ॥ १६० ॥

अर्थ—उससे संख्यातगुणा पल्यमात्र अवशेष स्थितिमें प्राप्त ऐसा पल्यका संख्यात बहुभागमात्र प्रथमकांडकका आयाम है २६ । उससे पल्यका संख्यातवां भागमात्र विशेषकर अधिक पल्यमात्र स्थितिसत्त्व है ॥ १६० ॥

विदियकरणस्स पढमे ठिदिखंडविसेसयं तु तदियस्स ।
करणस्स पढमसमये दंसणमोहस्स ठिदिसंतं ॥ १६१ ॥
दंसणमोहूणाणं बंधो संतो य अवर वरगो य ।
संखेये गुणयकमा तेत्तीसा एत्थ पदसंखा ॥ १६२ ॥

द्वितीयकरणस्य प्रथमे स्थितिखंडविशेषकं तु तृतीयस्य ।
करणस्य प्रथमसमये दर्शनमोहस्य स्थितिसत्त्वम् ॥ १६१ ॥
दर्शनमोहोनानां बंधः सत्त्वं च अवरं वरकं च ।
संख्येयगुणितक्रमं त्रयस्त्रिंशदत्र पदसंख्या ॥ १६२ ॥

अर्थ—उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें जघन्य और उत्कृष्टकांडकोंमें बीचके विशेषका प्रमाण पल्यका संख्यातवें भागकर हीन पृथक्त्व सागर प्रमाण है २८ । उससे संख्यातगुणा अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें संभवता दर्शनमोहका स्थितिसत्त्व है

२९। उससे संख्यातगुणा पुरुषवेदके प्रथमसमयमें संभवता दर्शनमोहके विना अन्य कर्मोंका जघन्य स्थितिसत्त्व है ३०। उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें संभवता उन्हीं कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबंध है ३१। उससे संख्यातगुणा अनिवृत्तिकरणके प्रथमसमयमें संभवता उन्हीं कर्मोंका जघन्य स्थितिसत्त्व है ३२। उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें संभवता उन्हीं कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व है। ३३। इस प्रकार दर्शनमोहकी क्षपणाके अवसरमें संभवते अल्प बहुत्वके तेतीस स्थान हैं॥ १६१॥ १६२॥

सत्तण्हं पयडीणं खयादु खइयं तु होदि सम्मत्तं ।
मेरुं व णिप्पकंपं सुणिम्मलं अक्खयमणंतं ॥ १६३ ॥

सप्तानां प्रकृतीनां क्षयात् क्षायिकं तु भवति सम्यक्त्वम् ।
मेरुरिव निष्प्रकंपं सुनिर्मलमक्षयमनंतम् ॥ १६३ ॥

अर्थ—अनन्तानुबन्धी चार दर्शनमोहकी तीन–इन सातों प्रकृतियोंके क्षयसे क्षायक सम्यक्त्व होता है वह सुमेरुके समान निश्चल है शंका आदि मलोंसे रहित है शिथिलताके अभावसे गाढ है और अन्तरहित है ॥ १६३ ॥

दंसणमोहे खविदे सिज्झदि तत्थेव तदियतुरियभवे ।
णादिक्कदि तुरियभवं ण विणस्सदि सेससम्मं व ॥ १६४ ॥

दर्शनमोहे क्षपिते सिद्ध्यति तत्रैव तृतीयतुरीयभवे ।
नातिक्रामति तुरीयभवं न विनश्यति शेषसम्यगिव ॥ १६४ ॥

अर्थ—दर्शनमोहका क्षय होनेपर उसी भवमें अथवा तीसरे भवमें या मनुष्यतिर्यंचका पहले आयु बन्धा हो तो भोगभूमि अपेक्षा चौथे भवमें सिद्धपदको पाता है। चौथे भवको नहीं उलंघन करता। और यह सम्यक्त्व दोपके उपशमिक क्षायोपशमिक सम्यक्त्वकी तरह नाशको नहीं प्राप्त होता ॥ १६४ ॥

सत्तण्हं पयडीणं खयादु अवरं तु खइयलद्धी दु ।
उक्कस्सखइयलद्धी घाइचउक्कक्खएण हवे ॥ १६५ ॥

सप्तानां प्रकृतीनां क्षयादवरा तु क्षायिकलब्धिस्तु ।
उत्कृष्टक्षायिकलब्धिर्घातिचतुष्कक्षयेण भवेत् ॥ १६५ ॥

अर्थ—सात प्रकृतियोंके क्षयसे असंयतसम्यग्दृष्टीके क्षायिकसम्यक्त्वरूप जघन्य क्षायकलब्धि होती है और चार घातिया कर्मोंके क्षयसे परमात्माके केवलज्ञानादिरूप उत्कृष्ट क्षायक लब्धि होती है ॥ १६५ ॥

इसप्रकार श्रीनेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती विरचित क्षपणासार गर्भित लब्धिसारमें दर्शनलब्धिका व्याख्यान करनेवाला पहला अधिकार समाप्त हुआ ॥ १ ॥

चारित्रलब्धिका अधिकार ॥ २ ॥

आगे चारित्रलब्धिका स्वरूप कहते हैं;—

दुविहा चरित्तलद्धी देसे सयले य देसचारित्तं ।
मिच्छो अयदो सयलं तेवि य देसो य लब्भेई ॥ १६६ ॥

द्विविधा चारित्रलब्धिः देशे सकले च देशचारित्रम् ।
मिथ्यो अयतः सकलं तावपि च देशश्च लभते ॥ १६६ ॥

अर्थ—चारित्रकी लब्धि अर्थात् प्राप्ति वह चारित्रलब्धि है वह देश सकलके भेदसे दो प्रकारकी है । उनमेंसे देश चारित्रको मिथ्यादृष्टि या असंयत सम्यग्दृष्टी प्राप्त होता है और सकल चारित्रको ये दोनों तथा देशसंयत प्राप्त होता है ॥ १६६ ॥

अंतोमुहुत्तकाले देसवदी होहिदित्ति मिच्छो हु ।
गोसरणो सुज्झंतो करणेहिं करेदि सगजोग्गं ॥ १६७ ॥

अन्तर्मुहूर्तकाले देशव्रती भविष्यतीति मिथ्यो हि ।
गतसरणः शुध्यन् करणानि करोति स्वकयोग्यम् ॥ १६७ ॥

अर्थ—अन्तर्मुहूर्तकालके बाद जो देशव्रती होगा वह मिथ्यादृष्टि जीव समय समय अनन्तगुणी विशुद्धतासे बढ़ते तो आयुके विना सातकर्मोंका बन्ध वा सत्त्व अन्तःकोड़ाकोड़ीमात्र शेष करनेसे स्थितिबन्धापसरणको करता हुआ अशुभकर्मोंका अनुभाग अनन्तवें भागमात्र करनेसे अनुभागबन्धापसरणको करता हुआ अपने योग्य करण परिणामोंको करता है ॥ १६७ ॥

मिच्छो देसचरित्तं उवसमसम्मेण गिण्हमाणो हु ।
सम्मत्तुप्पत्तिं वा तिकरणचरिमम्हि गेण्हदि हु ॥ १६८ ॥

मिथ्यो देशचारित्रं उपशमसम्यक्त्वेन गृह्णन् हि ।
सम्यक्त्वोत्पत्तिमिव त्रिकरणचरमे गृह्णाति हि ॥ १६८ ॥

अर्थ—अनादि वा सादि मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सम्यक्त्वसहित देशचारित्रको ग्रहण करता है वह सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके कथनकी तरह तीनकरणोंके अन्तसमयमें देशचारित्रको ग्रहण करता है । अर्थात् प्रकृतिबन्धापसरण स्थितिबंधापसरण आदि जो कार्यविशेष वहां कहे हैं वे सब होते हैं कुछ विशेषता नहीं है ॥ १६८ ॥

मिच्छो देसचरित्तं वेदगसम्मेण गेण्हमाणो हु ।
दुकरणचरिमे गेण्हदि गुणसेढी णत्थि तक्करणे ॥ १६९ ॥

सम्मत्तुप्पत्तिं वा थोवबहुत्तं च होदि करणाणं ।
ठिदिखंडसहस्सगदे अपुव्वकरणं समप्पदि हु ॥ १७० ॥

मिथ्यो देशचारित्रं वेदकसम्येन गृह्णन् हि ।
द्विकरणचरमे गृह्णाति गुणश्रेणी नास्ति तत्करणे ॥ १६९ ॥
सम्यक्त्वोत्पत्तिमिव स्तोकबहुत्वं च भवति करणानाम् ।
स्थितिखंडसहस्रगते अपूर्वकरणं समाप्यते हि ॥ १७० ॥

—सादि मिथ्यादृष्टि जीव वेदक सम्यक्त्वसहित देशचारित्रको ग्रहण करे तो
ःकरण अपूर्वकरण ये दोही करण होते हैं उनमें गुणश्रेणीनिर्जरा नहीं होती
तिखंडादि सब कार्य होते हैं । वह अपूर्वकरणके अन्तसमयमें एक ही वक्त वेदक
और देशचारित्रको ग्रहण करता है क्योंकि अनिवृत्ति करणके बिना ही इनकी
वहां पर प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिकी तरह करणोंका अल्पबहुत्व है इस-
अधःकरणकालसे अपूर्वकरणका काल संख्यातवें भाग है और अपूर्वकरणकालमें
हजार स्थितिखंड बीतनेपर अपूर्वकरणका काल समाप्त होता है ॥ १६९। १७०॥

से काले देसवदी असंखसमयप्पबद्धमाहरिय ।
उदयावलिस्स बाहिं गुणसेढिमवट्ठिदं कुणदि ॥ १७१ ॥

तस्मिन् काले देशव्रती असंख्यसमयप्रबद्धमाहृत्य ।
उदयावलेर्बाह्यं गुणश्रेणीमवस्थितां करोति ॥ १७१ ॥

—अपूर्वकरणके अन्तसमयके बादमें जीव देशव्रती होकर असंख्यातसमय प्रबद्ध
व्यको ग्रहणकर उदयावलीसे बाह्य अवस्थित गुणश्रेणी आयाम करता है ॥१७१॥

दव्वं असंखगुणियक्कमेण एयंतवुड्ढिकालोत्ति ।
बहुठिदिखंडे तीते अधापवत्तो हवे देसो ॥ १७२ ॥

द्रव्यमसंख्यगुणितक्रमेण एकांतवृद्धिकाल इति ।
बहुस्थितिखंडेतीते अधाप्रवृत्तो भवेद्देशः ॥ १७२ ॥

—देशसंयतके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्ततक समय समय अनन्तगुणी विशु-
द्धता है उसे एकांतवृद्धि कहते हैं । उस एकांतवृद्धिकालमें समय समय असं-
के क्रमसे द्रव्यको अपकर्षणकर अवस्थित गुणश्रेणी आयाममें निक्षेपण करता है
[illegible]काण्डकादि कार्य होते हैं और बहुत स्थितिखंड होनेपर एकान्तवृद्धिका काल
होनेपर वह विशुद्धता [illegible] [illegible] [illegible] उत्पन्न होता है । इसीको
[illegible] कहते हैं [illegible] [illegible] जघन्य अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट देशोन कोड़
प्रमाण है ॥ १७२

ठिदिरसघादो णत्थि हु अधापवत्ताभिधाणदेसस्स ।
पडिउट्ठदे मुहुत्तं संतेण हि तस्स करणदुगा ॥ १७३ ॥

स्थितिरसघातो नास्ति हि अधाप्रवृत्ताभिधानदेशस्य ।
प्रतिपतिते मुहूर्तं संयतेन हि तस्य करणद्विकम् ॥ १७३ ॥

अर्थ—अधाप्रवृत्त देससंयतके कालमें स्थितिखण्डन या अनुभागखण्डन नहीं होता और जो बाह्य कारणोंसे सम्यक्त्व या देशसंयतसे भ्रष्ट होकर मिथ्यादृष्टि होता है वह बड़ा अन्तर्मुहूर्त वा संख्यात असंख्यातवर्षतक रहकर फिर वेदक सम्यक्त्वसहित देशसंयमको ग्रहण करे उसके अधःप्रवृत्त अपूर्वकरण दो करण होते हैं । इसलिये स्थिति अनुभागकांडकका घात भी होता है ॥ १७३ ॥

देसो समये समये सुज्झंतो संकिलिस्समाणो य ।
चउवड्ढिहाणिदव्वादवट्ठिदं कुणदि गुणसेढिं ॥ १७४ ॥

देशः समये समये शुध्यन् संक्लिश्यन् च ।
चतुर्वृद्धिहानिद्रव्यादवस्थितां करोति गुणश्रेणिम् ॥ १७४ ॥

अर्थ—अधाप्रवृत्त देशसंयत जीव संक्लेशी हुआ विशुद्धताकी वृद्धि समय समयमें करता उसके अनुसार कभी असंख्यातवें भाग बढता कभी संख्यातवें भाग बढता कभी संख्यातगुणा कभी असंख्यातगुणा द्रव्यको अपकर्षणकर गुणश्रेणीमें निक्षेपण करता है और विशुद्धताकी हानिके अनुसार कभी असंख्यातवें भाग घटता कभी संख्यातवें भाग घटता कभी संख्यातगुणा घटता कभी असंख्यातगुणा घटता द्रव्यका अपकर्षणकर गुणश्रेणीमें निक्षेपण करता है । इसप्रकार अधाप्रवृत्त देशसंयतके सबकालमें समय समय यथासंभव चतुस्थान पतित वृद्धि हानि लिये गुणश्रेणी विधान पायाजाता है ॥ १७४ ॥

विदियकरणादु जावय देसस्सेयंतवड्ढिचरिमेति ।
अप्पाबहुगं वोच्छं रससंडद्धाण पहुदीणं ॥ १७५ ॥

द्वितीयकरणात् यावत् देशस्यैकांतवृद्धिचरमे इति ।
अल्पबहुत्वं वक्ष्ये रसखंडाद्धानां प्रभृतीनाम् ॥ १७५ ॥

अर्थ—दूसरे अपूर्वकरणसे लेकर एकांत वृद्धि देशसंयतके अन्ततक संभव जो जघन्य अनुभाग खण्डोत्करणकालादिरूप अठारह स्थान उनके अल्प बहुत्वको मैं कहूंगा ॥ १७५ ॥

अंतिमरसखंडुक्कीरणकालादो दु पढमओ अहिओ ।
चरिमट्ठिदिखंडुक्कीरणकालो संखगुणिदो दु ॥ १७६ ॥

अन्तिमरसखंडोत्करणकालतस्तु प्रथमो अधिकः ।
चरमस्थितिखंडोत्करणकालः संख्यगुणितो हि ॥ १७६ ॥

अर्थ—सबसे थोड़ा देशसंयतके एकांतवृद्धिकालके अन्तमें संभव जघन्य अनुभागखंडोत्करणकाल है १। उससे कुछ विशेषकर अधिक अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें सम्भव उत्कृष्ट अनुभागखण्डोत्करण काल है २। उससे संख्यातगुणा देशसंयतके एकांतवृद्धिकालके अन्तसमयमें संभवता जघन्यस्थिति कांडकोत्करणकाल ३ है॥ १७६॥

पढमट्ठिदिखंडुक्कीरणकालो साहियो हवे तत्तो।
एयंतवड्ढिकालो अपुव्वकालो य संखगुणियकमा॥ १७७॥

प्रथमस्थितिखंडोत्करणकालः साधिको भवेत् ततः।
एकांतवृद्धिकालः अपूर्वकालश्च संख्यगुणितक्रमः॥ १७७॥

अर्थ—उससे कुछ विशेषकर अधिक अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें संभवता उत्कृष्टस्थितिखण्डोत्करणकाल है ४। उससे संख्यातगुणा एकांतवृद्धिका काल है ५। उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरणका काल ६ है॥ १७७॥

अवरा मिच्छतियद्धा अविरद तह देससंयमद्धा य।
छप्पि समा संखगुणा तत्तो देसस्स गुणसेढी॥ १७८॥

अवरा मिथ्यत्रिकाद्धा अविरता तथा देशसंयमाद्धा च।
षडपि समाः संख्यगुणा ततो देशस्य गुणश्रेणी॥ १७८॥

अर्थ—उससे संख्यातगुणा मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वमोहनी इन तीनोंका उदयकाल और असंयम देशसंयम सकलसंयम—इन छहोंका जघन्यकाल आपसमें समान है ७। उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें जिसका आरंभ हुआ ऐसा देशसंयतका गुणश्रेणी आयाम ८ है॥ १७८॥

चरिमाबाहा तत्तो पढमाबाहा य संखगुणियकमा।
तत्तो असंखगुणियो चरिमट्ठिदिखंडओ णियमा॥ १७९॥

चरमाबाधा ततः प्रथमाबाधा च संख्यगुणितक्रमा।
तत असंख्यगुणितः चरमस्थितिखंडो नियमात्॥ १७९॥

अर्थ—उससे संख्यातगुणा एकांतवृद्धिके अन्तसमयमें संभव स्थितिबन्धका जघन्य आबाधा काल है ९। उससे संख्यातगुणा अपूर्वकरणके प्रथम समयमें संभवते स्थितिबन्धका उत्कृष्ट आबाधाकाल है १०। यहांतक ये कहे हुए सबकाल प्रत्येक अन्तर्मुहूर्तमात्र ही जानना। उससे असंख्यातगुणा एकांतवृद्धिके अन्तसमयमें सम्भवता जघन्यस्थितिकांडक आयाम ११ है॥ १७९॥

पल्लस्स संखभागं चरिमट्ठिदिखंडयं हवे जम्हा।
तम्हा असंखगुणियं चरिमं ठिदिखंडयं होई॥ १८०॥

होते हैं, और अनुभयस्थानोंमें मनुष्यके जघन्यसे लेकर तिर्यंचके अनुत्कृष्टतक स्थान मिथ्यादृष्टिसे देशसंयत हुएके होते हैं और तिर्यंचके उत्कृष्टसे लेकर मनुष्यके उत्कृष्ट स्थान असंयतसे देशसंयत हुएके होते हैं ॥ १८६ ॥ इति देशचारित्रविधानं ।

अब सकल चारित्रका वर्णन करते हैं;—

सयलचरित्तं तिविहं खयउवसमि उवसमं च खयियं च ।
सम्मत्तुप्पत्तिं वा उवसमसम्मेण गिण्हदो पढमं ॥ १८७ ॥

सकलचारित्रं त्रिविधं क्षायोपशमिकं औपशमिकं च क्षायिकं च ।
सम्यक्त्वोत्पत्तिमिव उपशमसम्येन गृह्णन् प्रथमम् ॥ १८७ ॥

अर्थ—सकल चारित्र तीन तरहका है, क्षायोपशमिक १ औपशमिक २ क्षायिक ३। उनमेंसे पहला क्षायोपशमिक चारित्र सातवें या छठे गुणस्थानमें है उसको जो जीव उपशमसम्यक्त्वसहित ग्रहण करता है वह मिथ्यात्वसे ग्रहण करता है उसका सब विधान प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें कहे गयेकी तरह जानना ॥ १८७ ॥ क्षयोपशमचारित्रको ग्रहण करता हुआ जीव पहले अप्रमत्तगुणस्थानको प्राप्त होता है ।

वेदगजोगो मिच्छो अविरददेसो य दोण्णिकरणेण ।
देसवदं वा गिण्हदि गुणसेढी णत्थि तक्करणे ॥ १८८ ॥

वेदकयोग्यो मिथ्यो अविरतदेशश्च द्विकरणेन ।
देशव्रतमिव गृह्णाति गुणश्रेणी नास्ति तत्करणे ॥ १८८ ॥

अर्थ—वेदक सम्यक्त्व सहित क्षयोपशमचारित्रको मिथ्यादृष्टि वा अविरत वा देशसंयत जीव है वह देशव्रतके ग्रहणकरनेकी तरह अधःप्रवृत्त करण अपूर्व करण इन दोनों करणोंमें ग्रहण करता है । यहां करणोंमें गुणश्रेणी नहीं है । सकल संयमके ग्रहण समयसे लेकर गुणश्रेणी होती है ॥ १८८ ॥

एत्तो उवरिं विरदे देसो वा होदि अप्पबहुगोत्ति ।
देसोत्ति य तट्ठाणे विरदो त्ति य होदि वत्तव्वं ॥ १८९ ॥

अत उपरि विरते देश इव भवति अल्पबहुकत्वमिति ।
देश इति च तत्स्थाने विरत इति च भवति वक्तव्यम् ॥ १८९ ॥

अर्थ—यहांसे ऊपर सकलविरतमें अल्पबहुत्व देशविरतकी तरह जानना । लेकिन [illegible] सकलविरत कहना चाहिये ॥ १८९ ॥

[illegible] होति [illegible] [illegible] तदो ।
[illegible] ठाणा ॥ १९० ॥

अवरं विरतस्थाने भवंत्यनंतानि स्पर्धकानि ततः।
षट्स्थानगतानि सर्वाणि लोकानामसंख्यं षट्स्थानानि ॥ १९० ॥

अर्थ—सकलसंयमके जघन्यस्थानमें अनन्तानन्त अविभाग प्रतिच्छेद हैं वे जीवराशिसे अनन्तगुणे जानने। ये स्थान षट्स्थानपतित वृद्धिलिये असंख्यात लोकमात्र हैं उनमें असंख्यातलोकमात्र वार षट्स्थानपतित वृद्धिका सम्भव है ॥ १९० ॥

तत्थ य पडिवादगया पडिवज्जगयात्ति अणुभयगयात्ति।
उवरुवरि लद्धिठाणा लोयाणमसंखछट्ठाणा ॥ १९१ ॥

तत्र च प्रतिपातगता प्रतिपद्यगता इति अनुभयगता इति।
उपर्युपरि लब्धिस्थानानि लोकानामसंख्यषट्स्थानानि ॥ १९१ ॥

अर्थ—उस सकलसंयममें भी तीनप्रकार स्थान हैं–प्रतिपातगत १ प्रतिपद्यमान २ अनुभयगत ३। ये लब्धिस्थान ऊपर ऊपर रचनावाले जानना। वे हर एक असंख्यातलोकमात्र हैं वहांपर असंख्यातलोकमात्र वार षट्स्थानरूप वृद्धिका सम्भव है ॥ १९१ ॥

पडिवादगया मिच्छे अयदे देसे य होंति उवरुवरिं।
पत्तेयमसंखमिदा लोयाणमसंखछट्ठाणा ॥ १९२ ॥

प्रतिपातगतानि मिथ्ये अयते देशे च भवंति उपर्युपरि।
प्रत्येकमसंख्यमितानि लोकानामसंख्यषट्स्थानानि ॥ १९२ ॥

अर्थ—उन स्थानोंमेंसे प्रतिपातगत स्थान सकल संयमसे भ्रष्ट होनेके अन्तसमयमें पाये जाते हैं। वहांपर जघन्यसे लेकर असंख्यातलोकमात्र स्थान तो मिथ्यात्वके सन्मुख होनेवाले जीवोंके होते हैं उनके ऊपर असंख्यातलोकमात्र असंयतके सन्मुख होनेवालेके होते हैं। उसके वाद असंख्यातलोकमात्र स्थान देशसंयतके सन्मुख हुए जीवके होते हैं। इसप्रकार प्रतिपातस्थान तीन तरहके हैं। उन तीनों जगह जघन्य स्थान यथायोग्य तीव्रसंक्लेशवालेके और उत्कृष्टस्थान मंदसंक्लेशवालेके होते हैं। तथा हरएकमें असंख्यातलोकमात्र छहस्थान सम्भवते हैं ॥ १९२ ॥

तत्तो पडिवज्जगया अज्जमिलेच्छे मिलेच्छअज्जे य।
कमसो अवरं अवरं वरं वरं होदि संखं वा ॥ १९३ ॥

ततः प्रतिपद्यगता आर्यम्लेच्छे म्लेच्छार्ये च।
क्रमशो अवरमवरं वरं वरं भवति संख्यं वा ॥ १९३ ॥

अर्थ—उनके वाद प्रतिपद्यमानस्थानोंमेंसे प्रथम आर्यखण्डका मनुष्य मिथ्यादृष्टिसे संयमी हुआ उसके जघन्य स्थान है। उसके वाद असंख्यात लोकमात्र षट् स्थानके ऊपर

म्लेच्छखण्डका मनुष्य मिथ्यादृष्टिमें सकल संयमी हुआ उसका जघन्य स्थान है। उसके ऊपर म्लेच्छखण्डका मनुष्य देशसंयतसे सकलसंयमी हुआ उसका उत्कृष्ट स्थान है। उसके बाद आर्यखण्डका मनुष्य देशसंयतसे सकलसंयमी हुआ उसका उत्कृष्ट स्थान होता है ॥१९३॥

तत्तोणुभयट्ठाणे सामाइयछेदजुगलपरिहारे ।
पडिबद्धा परिणामा असंखलोगप्पमा होंति ॥ १९४ ॥

ततोनुभयस्थाने सामायिकछेदयुगलपरिहारे ।
प्रतिबद्धाः परिणामा असंख्यलोकप्रमा भवंति ॥ १९४ ॥

अर्थ—उसके बाद अन्तरस्थानोंके जानेपर उसके ऊपर अनुभयस्थान हैं। वहां प्रथम मिथ्यादृष्टिसे सकलसंयमी होनेके दूसरे समयमें सामायिक छेदोपस्थापनाके जघन्य स्थान होते हैं। उसके ऊपर परिहार विशुद्धिका जघन्यस्थान होता है। यह स्थान परिहारविशुद्धिसे छूटकर सामायिक छेदोपस्थापनाके सन्मुख होनेवालेके अन्तसमयमें होता है। उसके ऊपर परिहारविशुद्धिका उत्कृष्टस्थान होता है। उसके ऊपर सामायिक छेदोपस्थापनाका उत्कृष्टस्थान है। ये सबस्थान आपसमें असंख्यातलोकगुणे हैं परंतु सब मिलकर असंख्यातलोक प्रमाण सकलसंयमके स्थान होते है, क्योंकि असंख्यातके भेद बहुत हैं ॥ १९४ ॥

तत्तो य सुहुमसंजम पडिवज्जय संखसमयमेत्ता हु ।
तत्तो दु जहाखादं एयविहं संजमं होदि ॥ १९५ ॥

ततश्च सूक्ष्मसंयमं प्रतिवर्ग्य संख्यसमयमात्रा हि ।
ततस्तु यथाख्यातमेकविधं संयमं भवति ॥ १९५ ॥

अर्थ—उस सामायक छेदोपस्थापनाके उत्कृष्ट स्थानसे ऊपर असंख्यात लोकमात्र स्थानोंका अन्तरालकर उपशमश्रेणीसे उतरते अनिवृत्तिकरणके सन्मुख जीवके अपने अन्तसमयमें संभवता सूक्ष्मसांपरायका जघन्यस्थान होता है। उसके ऊपर असंख्यातसमयमात्र स्थान जानेपर क्षपक सूक्ष्मसांपरायके अन्तसमयमें सम्भव सूक्ष्मसांपरायका उत्कृष्ट स्थान है। उसके ऊपर असंख्यातलोकमात्र स्थानोंका अन्तरालकर यथाख्यात चारित्रका एक स्थान होता है। यह स्थान सबसे अनन्तगुणी विशुद्धतालिये उपशांतकषाय क्षीणकषाय सयोगी अयोगीके होता है। इसमें सबकषायोंका सर्वथा उपशम वा क्षय है इसलिये जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद नहीं हैं ॥ १९५ ॥

---

१ म्लेच्छखण्डके उपजे मनुष्यके सकलसंयम इस तरह है कि जो म्लेच्छ मनुष्य चक्रवर्तीके साथ आर्यखण्डमें आवे तब उनको दीक्षा सम्भव है। क्योंकि चक्रवर्तीके विवाहादिकका सम्बन्ध पाया जाता है। अथवा म्लेच्छकी कन्या चक्रवर्ती विवाहता है उसके जो पुत्र हुआ वह मातापक्षके सम्बन्धसे म्लेच्छ है उसके दीक्षा सम्भव होसकती है।

पडनरिमे गहणादीसमये पडिवाददुगमणुभयं तु ।
तम्मज्झे उवरिमगुणगहणाहिमुहे य देसं वा ॥ १९६ ॥

पतनचरमे ग्रहणादिसमये प्रतिपातद्विकमनुभयं तु ।
तन्मध्ये उपरितनगुणग्रहणाभिमुखे च देशमिव ॥ १९६ ॥

अर्थ—संयमसे पड़नेके अन्तसमयमें और संयमके ग्रहणके प्रथम समयमें क्रमसे प्रतिपात और प्रतिपद्यमान ये दो स्थान हैं और इनके बीचमें अथवा ऊपरके गुणस्थानके सन्मुख होनेपर अनुभयस्थान होते हैं ये देशसंयमकी तरह यहां भी जानने ॥ १९६ ॥

पडिवादादीतिदयं उवरुवरिमसंखलोगगुणिदकमा ।
अंतरछक्कपमाणं असंखलोगा हु देसं वा ॥ १९७ ॥

प्रतिपातादित्रितयं उपर्युपरितनमसंख्यलोकगुणितक्रमं ।
अंतरषट्कप्रमाणमसंख्यलोको हि देशमिव ॥ १९७ ॥

अर्थ—प्रतिपातआदि तीन स्थान अपने २ जघन्यसे उत्कृष्टतक ऊपर ऊपर असंख्यातलोकगुणा क्रमलिये हुए हैं । उन छहोंमें प्रत्येकमें असंख्यातलोकमात्रवार षट्स्थान वृद्धि देशसंयमकी तरह जाननी ॥ १९७ ॥

मिच्छयददेसभिण्णे पडिवादट्ठाणगे वरं अवरं ।
तप्पाउग्गकिलिट्ठे तिव्वकिलिट्ठे कमे चरिमे ॥ १९८ ॥

मिथ्यायतदेशभिन्ने प्रतिपातस्थानके वरमवरम् ।
तत्प्रायोग्यक्लिष्टे तीव्रक्लिष्टे क्रमेण चरमे ॥ १९८ ॥

अर्थ—प्रतिपातस्थान मिथ्यात्व असंयत देशसंयतको सन्मुख होनेकी अपेक्षा तीन भेद लिये है । वहां जघन्यस्थान तो तीव्र संक्लेशवालेके संयमके अन्तसमयमें होता है और उत्कृष्टस्थान यथायोग्य मन्दसंक्लेशवालेके होते हैं ॥ १९८ ॥

पडिवज्जजहण्णदुगं मिच्छे उक्कस्सजुगलमवि देसे ।
उवरिं सामइयदुगं तम्मज्झे होंति परिहारा ॥ १९९ ॥

प्रतिपद्यजघन्यद्विकं मिथ्ये उत्कृष्टयुगलमपि देशे ।
उपरि सामायिकद्विकं तन्मध्ये भवंति परिहाराणि ॥ १९९ ॥

अर्थ—प्रतिपद्यमानस्थान आर्यम्लेच्छकी अपेक्षा दो प्रकारसे हैं उनका जघन्य तो मिथ्यादृष्टिसे संयमी हुए जीवके होता है वा उत्कृष्ट देशसंयतसे संयमी हुएके होता है ।

उनके ऊपर अनुभयस्थान हैं वे सामायिक छेदोपस्थापनाके हैं उनके जघन्य उत्कृष्टके बीचमें परिहारविशुद्धिके स्थान हैं ॥ १९९ ॥

परिहारस्स जहण्णं सामयियदुगे पडंत चरिमम्हि ।
तज्जेट्ठं सट्ठाणे सव्वविसुद्धस्स तस्सेव ॥ २०० ॥

परिहारस्य जघन्यं सामायिकद्विके पततः चरमे ।
तज्ज्येष्ठं स्वस्थाने सर्वविशुद्धस्य तस्यैव ॥ २०० ॥

अर्थ—परिहार विशुद्धिका जघन्यस्थान सामायिक छेदोपस्थापनामें पड़ते हुए जीवके अन्तसमयमें ही होता है और उसका उत्कृष्टस्थान सबसे विशुद्ध अप्रमत्तगुणस्थानवर्तीके ही एकांतवृद्धिके अन्तसमयमें होता है ॥ २०० ॥

सामयियदुगजहण्णं ओघं अणियट्टिखवगचरिमम्हि ।
चरिमणियट्टिस्सुवरिं पडंत सुहुमस्स सुहुमवरं ॥ २०१ ॥

सामायिकद्विकजघन्यमोघं अनिवृत्तिक्षपकचरमे ।
चरमानिवृत्तेरुपरि पततः सूक्ष्मस्य सूक्ष्मवरम् ॥ २०१ ॥

अर्थ—सामायिक छेदोपस्थापनाका जघन्यस्थान मिथ्यात्वके सन्मुख जीवके संयमके अन्तसमयमें होता है। उसका उत्कृष्टस्थान अनिवृत्तिकरण क्षपकश्रेणीवालेके अन्तसमयमें होता है। और उपशमश्रेणीमें पड़ते हुए सूक्ष्मसांपरायके अन्तसमयमें अनिवृत्तिकरणके सन्मुख होनेपर सूक्ष्मसांपरायका जघन्यस्थान होता है ॥ २०१ ॥

खवगसुहुमस्स चरिमे वरं जहाखादमोघजेट्ठं तं ।
पडिवाददुगा सव्वे सामाइयछेदपडिबद्धा ॥ २०२ ॥

क्षपकसूक्ष्मस्य चरमे वरं यथाख्यातमोघज्येष्ठं तत् ।
प्रतिपातद्विके सर्वाणि सामायिकछेदप्रतिबद्धानि ॥ २०२ ॥

अर्थ—क्षीणकषायके सन्मुख हुए क्षपक सूक्ष्मसांपरायके अन्तसमयमें सूक्ष्मसांपरायका उत्कृष्टस्थान होता है और यथाख्यात चारित्रका उत्कृष्टस्थान सामान्य (अभेदरूप) है। तथा प्रतिपात प्रतिपद्यमानके सब स्थान सामायिक छेदोपस्थापनाके ही जानना। क्योंकि सकलसंयमसे भ्रष्ट होनेपर अन्तसमयमें और सकल संयमको ग्रहण करनेके प्रथम समयमें सामायिक छेदोपस्थापना संयम ही होता है, अन्य परिहार विशुद्धि आदि नहीं होते ॥२०२॥ इसतरह प्रसङ्ग पाकर सामायिक आदि पांचप्रकार सकलचारित्रके स्थान कहे। गुणस्थानोंमें प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानमें सम्भव क्षायोपशमिक सकल चारित्रका कथन किया वह समाप्त हुआ।

आगे जिन्होंने सब दोष उपशांत किये हैं ऐसे उपशांतकषाय वीतरागको प्रणामकर उपशमचारित्रका विधान कहते हैं;—

उवसमचरियाहिमुहो वेदगसम्मो अणं विजोयित्ता ।
अंतोमुहुत्तकालं अधापवत्तो पमत्तो य ॥ २०३ ॥

उपशमचरित्राभिमुखो वेदकसम्यक् अनं वियोज्य ।
अंतर्मुहूर्तकालं अधाप्रवृत्तः प्रमत्तश्च ॥ २०३ ॥

अर्थ—उपशम चारित्रके सन्मुख हुआ ऐसा वेदक सम्यग्दृष्टी जीव वह पहले कहे हुए विधानसे अनन्तानुबन्धीका विसंयोजनकर अन्तर्मुहूर्तकालतक अधाप्रवृत्त अप्रमत्त है अर्थात् स्वस्थान अप्रमत्त होता है वहां प्रमत्त अप्रमत्त दोनोंमें हजारोंवार जाना आना कर वादमें अप्रमत्तमें विश्राम करता है ॥ २०३ ॥ कोई जीव तीन दर्शनका क्षयकर क्षायिक सम्यग्दृष्टि हुआ चारित्रमोहके उपशमनका आरंभ करता है उसके तो पूर्व कहा हुआ क्षायिकसम्यक्त्व होनेका विधान जानलेना ।

आगे कोई जीव द्वितीयोपशमसम्यक्त्व सहित उपशमश्रेणी चढे उसके दर्शनमोहके उपशमनका विधान कहते हैं;—

तत्तो तियरणविहिणा दंसणमोहं समं खु उवसमदि ।
सम्मत्तुप्पत्तिं वा अण्णं च गुणसेढिकरणविही ॥ २०४ ॥

ततः त्रिकरणविधिना दर्शनमोहं समं खलु उपशमयति ।
सम्यक्त्वोत्पत्तिमिव अन्यं च गुणश्रेणिकरणविधिः ॥ २०४ ॥

अर्थ—स्वस्थान अप्रमत्तमें अन्तर्मुहूर्त विश्रामकर उसके वाद तीनकरणविधिसे एक समयमें दर्शनमोहका उपशम करता है । वहांपर अपूर्वकरणके प्रथमसमयसे लेकर प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी तरह गुणसंक्रमणके विना अन्यस्थिति अनुभागकांडकका घात वा गुणश्रेणीनिर्जरा आदि सब विधान जानना । और इसके जो अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन होता है उसमें भी स्थितिखण्डनादि सब पूर्वकथितवत् जानने ॥ २०४ ॥

दंसणमोहुवसमणं तक्खवणं वा हु होदि णवरिं तु ।
गुणसंकमो ण विज्जदि विज्झद वाधापवत्तं च ॥ २०५ ॥

दर्शनमोहोपशमनं तत्क्षपणं वा हि भवति नवरि तु ।
गुणसंक्रमो न विद्यते विध्यातं वा अधःप्रवृत्तं च ॥ २०५ ॥

अर्थ—चारित्रमोहको उपशमानेके सन्मुख हुए जीवके दर्शनमोहका उपशम होता है अथवा क्षय होता है । यहां विशेष इतना है कि उपशमविधानमें केवलगुणसंक्रमण नहीं होता, विध्यातसंक्रमण अथवा अधःप्रवृत्त संक्रमण है । उसका विशेष आगे कहेंगे ॥२०५॥

उनके ऊपर अनुभयस्थान हैं वे सामायिक छेदोपस्थापनाके हैं उनके जघन्य उत्कृष्टके बीचमें परिहारविशुद्धिके स्थान हैं ॥ १९९ ॥

परिहारस्स जहण्णं सामयियदुगे पडंत चरिमम्हि ।
तज्जेट्ठं सट्ठाणे सव्वविसुद्धस्स तस्सेव ॥ २०० ॥
परिहारस्य जघन्यं सामायिकद्विके पततः चरमे ।
तज्ज्येष्ठं स्वस्थाने सर्वविशुद्धस्य तस्यैव ॥ २०० ॥

अर्थ—परिहार विशुद्धिका जघन्यस्थान सामायिक छेदोपस्थापनामें पड़ते हुए जीवके अन्तसमयमें ही होता है और उसका उत्कृष्टस्थान सबसे विशुद्ध अप्रमत्तगुणस्थानवर्तिके ही एकांतशुद्धिके अन्तसमयमें होता है ॥ २०० ॥

सामयियदुगजहण्णं ओघं अणियट्टिखवगचरिमम्हि ।
चरिमणियट्टिस्सुवरिं पडंत सुहुमस्स सुहुमवरं ॥ २०१ ॥
सामायिकद्विकजघन्यमोघं अनिवृत्तिक्षपकचरमे ।
चरमानिवृत्तेरुपरि पततः सूक्ष्मस्य सूक्ष्मवरम् ॥ २०१ ॥

अर्थ—सामायिक छेदोपस्थापनाका जघन्यस्थान मिथ्यात्वके सन्मुख जीवके संयमके अन्तसमयमें होता है । उसका उत्कृष्टस्थान अनिवृत्तिकरण क्षपकश्रेणीवालेके अन्तसमयमें होता है । और उपशमश्रेणीसे पड़ते हुए सूक्ष्मसांपरायके अन्तसमयमें अनिवृत्तिकरणके सन्मुख होनेपर सूक्ष्मसांपरायका जघन्यस्थान होता है ॥ २०१ ॥

खवगसुहुमस्स चरिमे वरं जहाखादमोघजेट्ठं तं ।
पडिवाददुगा सव्वे सामाइयछेदपडिबद्धा ॥ २०२ ॥
क्षपकसूक्ष्मस्य चरमे वरं यथाख्यातमोघज्येष्ठं तत् ।
प्रतिपातद्विके सर्वाणि सामायिकछेदप्रतिबद्धानि ॥ २०२ ॥

अर्थ—क्षीणकषायके सन्मुख हुए क्षपक सूक्ष्मसांपरायके अन्तसमयमें सूक्ष्मसांपरायका उत्कृष्टस्थान होता है और यथाख्यात चारित्रका उत्कृष्टस्थान सामान्य (अभेदरूप) है । तथा प्रतिपात प्रतिपद्यमानके सब स्थान सामायिक छेदोपस्थापनाके ही जानना । क्योंकि सकलसंयमसे भ्रष्ट होनेपर अन्तसमयमें और सकल संयमको ग्रहण करनेके प्रथम समयमें सामायिक छेदोपस्थापना संयम ही होता है, अन्य परिहार विशुद्धि आदि नहीं होते ॥२०२॥ इसतरह प्रसङ्ग पाकर सामायिक आदि पांचप्रकार सकलचारित्रके स्थान कहे । मुख्यपनेसे प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानमें सम्भव क्षायोपशमिक सकल चारित्रका कथन किया वह समाप्त हुआ ।

आगे जिन्होंने सब दोष उपशांत किये हैं ऐसे उपशांतकषाय वीतरागको प्रणामकर उपशमचारित्रका विधान कहते हैं;—

उवसमचरियाहिमुहो वेदगसम्मो अणं विजोयित्ता ।
अंतोमुहुत्तकालं अधापवत्तो पमत्तो य ॥ २०३ ॥

उपशमचरित्राभिमुखो वेदकसम्यक् अनं वियोज्य ।
अंतर्मुहूर्तकालं अधाप्रवृत्तः प्रमत्तश्च ॥ २०३ ॥

अर्थ—उपशम चारित्रके सन्मुख हुआ ऐसा वेदक सम्यग्दृष्टी जीव वह पहले कहे हुए विधानसे अनन्तानुबन्धीका विसंयोजनकर अन्तर्मुहूर्तकालतक अधाप्रवृत्त अप्रमत्त है अर्थात् स्वस्थान अप्रमत्त होता है वहां प्रमत्त अप्रमत्त दोनोंमें हजारोंवार जाना आना कर बादमें अप्रमत्तमें विश्राम करता है ॥ २०३ ॥ कोई जीव तीन दर्शनका क्षपकर क्षायिक सम्यग्दृष्टि हुआ चारित्रमोहके उपशमनका आरंभ करता है उसके तो पूर्व कहा हुआ क्षायिकसम्यक्त्व होनेका विधान जानलेना ।

आगे कोई जीव द्वितीयोपशमसम्यक्त्व सहित उपशमश्रेणी चढे उसके दर्शनमोहके उपशमनका विधान कहते हैं;—

तत्तो तियरणविहिणा दंसणमोहं समं खु उवसमदि ।
सम्मत्तुप्पत्तिं वा अण्णं च गुणसेढिकरणविही ॥ २०४ ॥

ततः त्रिकरणविधिना दर्शनमोहं समं खलु उपशमयति ।
सम्यक्त्वोत्पत्तिमिव अन्यं च गुणश्रेणिकरणविधिः ॥ २०४ ॥

अर्थ—स्वस्थान अप्रमत्तमें अन्तर्मुहूर्त विश्रामकर उसके बाद तीनकरणविधिसे एक समयमें दर्शनमोहका उपशम करता है । वहांपर अपूर्वकरणके प्रथमसमयसे लेकर प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी तरह गुणसंक्रमणके विना अन्यस्थिति अनुभागकांडकका घात वा गुणश्रेणीनिर्जरा आदि सब विधान जानना । और इसके जो अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन होता है उसमें भी स्थितिखण्डनादि सब पूर्वकथितवत् जानने ॥ २०४ ॥

दंसणमोहुवसमणं तक्खवणं वा हु होदि णवरिं तु ।
गुणसंकमो ण विज्जदि विज्झद वाधापवत्तं च ॥ २०५ ॥

दर्शनमोहोपशमनं तत्क्षपणं वा हि भवति नवरि तु ।
गुणसंक्रमो न विद्यते विध्यातं वा अधःप्रवृत्तं च ॥ २०५ ॥

अर्थ—चारित्रमोहके उपशमानेके सन्मुख हुए जीवके दर्शनमोहका उपशम होना है अथवा क्षय होना है । वहां विशेष इतना है कि उपशमविधानमें केवलगुणसंक्रमण नहीं होता, विध्यातसंक्रमण अथवा अधःप्रवृत्त संक्रमण है । इनका विशेष आगे कहेंगे ॥२०५॥

ठिदिसत्तमपुव्वदुगे संखगुणूणं तु पढमदो चरिमं ।
उवसामण अणियट्टीसंखाभागासु तीदासु ॥ २०६ ॥
स्थितिसत्त्वमपूर्वद्विके संख्यगुणोनं तु प्रथमतः चरमम् ।
उपशामनमनिवृत्तिसंख्यभागेष्वतीतेषु ॥ २०६ ॥

अर्थ—अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयके स्थितिसत्त्वसे अन्तसमयमें स्थिति-सत्त्व है वह कांडक घात करनेसे संख्यातगुणा कम होता है । और अनिवृत्तिकरणकालके संख्यातबहुभाग बीत जानेपर एक भाग रहनेके समय उपशमकार्य होता है ॥ २०६ ॥

अब उसीको दिखलाते हैं:—

सम्मस्स असंखेज्जा समयपबद्धाणुदीरणा होदि ।
तत्तो मुहुत्तअंते दंसणमोहंतरं कुणई ॥ २०७ ॥
सम्यस्य असंख्येयानां समयप्रबद्धानामुदीरणा भवति ।
ततो मुहूर्तांतः दर्शनमोहांतरं करोति ॥ २०७ ॥

अर्थ—अनिवृत्तिकरणकालका संख्यातवां भाग शेष रहनेपर सम्यक्त्व मोहनीके असं-ख्यातसमयप्रबद्धोंकी उदीरणा होती है । उसके बाद अन्तर्मुहूर्तकाल बीत जानेपर दर्शन-मोहका अन्तर करता है ॥ २०७ ॥

अंतोमुहुत्तमेत्तं आवलिमेत्तं च सम्मतियठाणं ।
मोत्तूण य पढमट्ठिदिं दंसणमोहंतरं कुणइ ॥ २०८ ॥
अंतर्मुहूर्तमात्रं आवलिमात्रं च सम्यक्त्वत्रयस्थानम् ।
मुक्त्वा च प्रथमस्थितिं दर्शनमोहांतरं करोति ॥ २०८ ॥

अर्थ—सम्यक्त्व मोहनीयकी अंतर्मुहूर्तमात्र और उदयरहित मिश्र व मिथ्यात्वकी आवलिमात्र प्रथमस्थिति प्रमाण नीचले निषेकोंको छोड़कर उसके ऊपरके जो अन्तर्मुहूर्त-कालप्रमाण दर्शनमोहके निषेक हैं उनका अन्तर (अभाव) करता है ॥ २०८ ॥

सम्मत्तपयडिपढमट्ठिदिम्मि संछुहदि दंसणतियाणं ।
उक्कीरयं तु दव्वं बंधाभावादु मिच्छस्स ॥ २०९ ॥
सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितौ संपातयति दर्शनत्रयाणाम् ।
उत्कीर्णं तु द्रव्यं बंधाभावात् मिथ्यस्य ॥ २०९ ॥

अर्थ—उन तीनों दर्शनमोहकी प्रकृतियोंके निषेकद्रव्यको उदयरूप सम्यक्त्वमोहनीकी प्रथमस्थितिमें निक्षेपण करता है । क्योंकि जहां नवीनबन्ध होता है वहां उत्कर्षणकर द्विती-

यस्थितिमें भी निक्षेपण होता है । यहांपर सातवें गुणस्थानमें दर्शनमोहका बन्ध है ही नहीं इसलिये द्वितीयस्थितिमें निक्षेपण नहीं करता ॥ २०९ ॥

विदियट्ठिदिस्स दवं उक्कट्टिय देदि सम्मपढमम्मि ।
विदियट्ठिदिम्हि तस्स अणुक्कीरिज्जंतमाणम्हि ॥ २१० ॥

द्वितीयस्थितेर्द्रव्यमपकर्ष्य ददाति सम्यक्त्वप्रथमे ।
द्वितीयस्थितौ तस्यानुत्कीर्यमाणे ॥ २१० ॥

अर्थ—द्वितीयस्थितिका अपकर्षण किया द्रव्य सम्यक्त्वमोहनीके प्रथमस्थितिरूपगुणश्रेणी आयाममें निक्षेपण करता है । और उसके अपकर्षण किये द्रव्यको द्वितीयस्थितिमें निक्षेपण करता है ॥ २१० ॥

सम्मत्तपयडिपढमट्ठिदीसु सरिसाण मिच्छमिस्साणं ।
ठिदिदवं सम्मस्स य सरिसणिसेयम्हि संकमदि ॥ २११ ॥

सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितिषु सदृशानां मिथ्यमिश्राणाम् ।
स्थितिद्रव्यं सम्यस्य च सदृशनिषेके संक्रामति ॥ २११ ॥

अर्थ—मिथ्यात्व और मिश्रमोहनीकी प्रथमस्थितिके ऊपर जो अन्तरायामके निषेक सम्यक्त्वमोहनीकी प्रथमस्थितिके समानपर्यंत पाये जाते हैं उनके द्रव्यको अपने २ समानवर्ती सम्यक्त्वमोहनीयके निषेकोंमें निक्षेपण करता है । वहां द्रव्य देनेका विधान नहीं है ॥२११॥

जावं तरस्स दुचरिमफालिं पावे इमो कमो ताव ।
चरिमतिदंसणदवं छुहेदि सम्मस्स पढमम्हि ॥ २१२ ॥

यावदंतरस्य द्विचरमफालिं प्राप्ते अयं क्रमस्तावत् ।
चरमत्रिदर्शनद्रव्यं क्षेपयति सम्यस्य प्रथमे ॥ २१२ ॥

अर्थ—जबतक अन्तरकरणकालके द्विचरमसमयवर्ती अन्तकी द्विचरमफालि प्राप्त हो वहांतक फालिद्रव्य और अपकृष्टद्रव्यके निक्षेपण करनेका यह पूर्वोक्त क्रम जानना । और अन्तरकरणकालके अन्तसमयके दर्शनमोहत्रिककी अन्तफालिका द्रव्य और अपकृष्ट सब सम्यक्त्वमोहनीकी प्रथमस्थितिमें ही निक्षेपण किया जाता है ॥ २१२ ॥

विदियट्ठिदिस्स दवं पढमट्ठिदिमेदि जाव आवलिया ।
पडिआवलिया चिट्ठदि सम्मत्तादिमट्ठिदी ताव ॥ २१३ ॥

द्वितीयस्थितेर्द्रव्यं प्रथमस्थितिमेति यावदावलिका ।
प्रत्यावलिका तिष्ठति सम्यक्त्वादिमस्थितिः तावत् ॥ २१३ ॥

अर्थ—सम्यक्त्वमोहनीकी प्रथमस्थितिमें उदयावलि प्रत्यावलि ऐसे दो आवली शेष रहें तब तक द्वितीयस्थितिके द्रव्यको अपकर्षणके वशसे प्रथमस्थितिमें निक्षेपण करते हैं। वहां तक ही दर्शनमोहकी गुणश्रेणी है ॥ २१३ ॥

सम्मादिठिदिज्झीणे मिच्छद्दवादु सम्मसंमिस्से ।
गुणसंकमो ण णियमा विज्झादो संकमो होदि ॥ २१४ ॥

सम्यगादिस्थितिक्षीणे मिथ्यद्रव्यात् सम्यसंमिश्रे ।
गुणसंक्रमो न नियमात् विध्यातः संक्रमो भवति ॥ २१४ ॥

अर्थ—सम्यक्त्वमोहनीकी प्रथमस्थितिके क्षय होनेपर उसके बाद अन्तरायामके प्रथमसमयमें द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि होता है वहां नियमसे गुणसंक्रमण नहीं होता विध्यात संक्रमण होता है। इसलिये विध्यातसंक्रमण भागहार मिथ्यात्वके द्रव्यको मिश्रसम्यक्त्व मोहनीयमें निक्षेपण करते है ॥ २१४ ॥

सम्मत्तुप्पत्तीए गुणसंकमपूरणस्स कालादो ।
संखेज्जगुणं कालं विसोहिवड्डीहिं वड्ढदि हु ॥ २१५ ॥

सम्यक्त्वोत्पत्तौ गुणसंक्रमपूरणस्य कालात् ।
संख्येयगुणं कालं विशुद्धिवृद्धिभिः वर्धते हि ॥ २१५ ॥

अर्थ—प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें पूर्वकथित गुणसंक्रम पूरणके अन्तर्मुहूर्तमात्र कालमे संख्यातगुणे कालतक यह द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि प्रथमसमयसे लेकर समय समय प्रति अनन्तगुणी विशुद्धिकर बढता है। ऐसे यहां एकांतविशुद्धताकी वृद्धिका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र जानना ॥ २१५ ॥

तेण परं हायदि वा वड्ढदि तवड्ढिदो विसुद्धीहिं ।
उवसंतदंसणतियो होदि पमत्तापमत्तेसु ॥ २१६ ॥

तेन परं हीयते वा वर्धते तद्वृद्धितो विशुद्धिभिः ।
उपशांतदर्शनत्रिकः भवति प्रमत्ताप्रमत्तयोः ॥ २१६ ॥

अर्थ—इस एकांतवृद्धिकालके बाद विशुद्धतासे घटे अथवा बढे अथवा जैसाका तैसा रहे। कुछ नियम नहीं है। इसतरह जिसने तीन दर्शनमोह उपशम किये हैं ऐसा जीव बहुतवार प्रमत्त अप्रमत्तमें चक्कर करता है ॥ २१६ ॥

एवं पमत्तमियरं परावत्तिसहस्सयं तु कादूण ।
इगवीसमोहणीयं उवसमदि ण अण्णपयडीसु ॥ २१७ ॥

एवं प्रमत्तमितरं परावर्तिसहस्रकं तु कृत्वा ।
एकविंशमोहनीयं उपशमयति न अन्यप्रकृतिषु ॥ २१७ ॥

अर्थ—इसतरह अप्रमत्तसे प्रमत्तमें प्रमत्तसे अप्रमत्तमें हजारों वार पलटनेकर अनन्तानुबन्धीचारके विना शेष इक्कीस चारित्रमोहकी प्रकृतियोंके उपशमानेका उद्यम करता है। अन्यप्रकृतियोंका उपशम नहीं होता ॥ २१७ ॥

तिकरणबंधोसरणं कमकरणं देसघादिकरणं च।
अंतरकरणं उवसमकरणं उवसामणे होंति ॥ २१८ ॥

त्रिकरणं बंधापसरणं क्रमकरणं देशघातिकरणं च।
अंतरकरणमुपशमकरणं उपशामने भवंति ॥ २१८ ॥

अर्थ—अधःकरण अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण—ये तीनकरण, स्थिति बन्धापसरण, क्रमकरण, देशघातिकरण, अन्तरकरण, उपशमकरण—इसतरह आठ अधिकार चारित्रमोहके उपशमविधानमें पाये जाते हैं। उनमेंसे अधःकरणको सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानवाला मुनि करता है ॥ २१८ ॥

विदियकरणादिसमये उवसंततिदंसणे जहण्णेण।
पल्लस्स संखभागं उकस्सं सायरपुधत्तं ॥ २१९ ॥

द्वितीयकरणादिसमये उपशांतत्रिदर्शने जघन्येन।
पल्यस्य संख्यभागं उत्कृष्टं सागरपृथक्त्वम् ॥ २१९ ॥

अर्थ—दूसरे अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिके जघन्यस्थितिकांडक आयाम पल्यका असंख्यातवां भागमात्र है और उत्कृष्ट पृथक्त्वसागर प्रमाण है ॥ २१९ ॥

ठिदिखंडयं तु खइये वरावरं पल्लसंखभागो दु।
ठिदिबंधोसरणं पुण वरावरं तत्तियं होदि ॥ २२० ॥

स्थितिकांडकं तु क्षायिके वरावरं पल्यसंख्यभागस्तु।
स्थितिबन्धापसरणं पुनः वरावरं तावत्कं भवति ॥ २२० ॥

अर्थ—अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें क्षायिकसम्यग्दृष्टीके जघन्य वा उत्कृष्ट स्थितिकांडक आयाम पल्यके असंख्यातवें भागमात्र है, क्योंकि दर्शनमोहकी क्षपणाके समयमें बहुत स्थिति घटाई जाती है स्थितिके अनुसारही कांडक होता है तौभी जघन्यसे उत्कृष्ट संख्यातगुणा है। और उपशम वा क्षायिकसम्यग्दृष्टीके स्थितिबन्धापसरण पल्यके संख्यातवें भागमात्र ही है तौ भी जघन्यसे उत्कृष्ट संख्यातगुणा है ॥ २२० ॥

असुहाणं रसखंडमणंतभागाण खंडमियराणं।
अंतोकोडाकोडी संतं बंधं च तट्ठाणे ॥ २२१ ॥

अशुभानां रसखंडमनंतभागानां खंडमितरेषाम् ।
अन्तःकोटीकोटिः सत्त्वं बन्धश्च तत्स्थाने ॥ २२१ ॥

अर्थ—अशुभप्रकृतियोंका अनुभागखण्डन अनन्तबहुभागमात्र होता है एकभागमात्र शेष रहता है । विशुद्धपनेसे शुभप्रकृतियोंका अनुभागखण्डन नहीं होता । और उसी अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्व अन्तःकोड़ाकोड़ीसागर प्रमाण है, उसमें इतना विशेष है कि स्थितिबन्धसे स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है ॥ २२१ ॥

उदयावलिस्स बाहिं गलिदवसेसा अपुव्वअणियट्टी ।
सुहुमद्धादो अहिया गुणसेढी होदि तट्ठाणे ॥ २२२ ॥

उदयावलेर्बाह्यं गलितावशेषा अपूर्वानिवृत्तेः ।
सूक्ष्माद्धातो अधिका गुणश्रेणी भवति तत्स्थाने ॥ २२२ ॥

अर्थ—अपूर्वकरणके पहले समयमें उदयावलिके बाह्य गलितावशेष गुणश्रेणीका प्रारंभ हुआ, उस गुणश्रेणी आयामका प्रमाण अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसांपराय-इनके मिलानेके कालसे उपशांतकषायके कालका संख्यातवां भागमात्र अधिक जानना । उस अपूर्वकरणमें गुणश्रेणी होती है ॥ २२२ ॥

पढमे छट्ठे चरिमे बंधे दुग तीस चदुर वोच्छिण्णा ।
छण्णोकसायउदया अपुव्वचरिमम्हि वोच्छिण्णा ॥ २२३ ॥

प्रथमे षष्ठे चरमे बंधे द्विकं त्रिंशत् चतस्रो व्युच्छिन्नाः ।
षण्णोकषायोदया अपूर्वचरमे व्युच्छिन्नाः ॥ २२३ ॥

अर्थ—अपूर्वकरणकालके सातभागोंमेंसे पहले भागमें निद्रा प्रचला ये दोनों, छठे भागमें तीर्थंकर आदि तीस और अंतके सातवें भागमें हास्यादि चार–ऐसे छत्तीसप्रकृतियां बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं । और अपूर्वकरणके अन्तसमयमें छह हास्यादि नोकषाय उदयसे व्युच्छिन्न होतीं है ॥ २२३ ॥

अणियट्टिस्स य पढमे अण्णट्ठिदिखंडपहुदिमारवई ।
उवसामणा णिधत्ती णिकाचणा तत्थ वोच्छिण्णा ॥ २२४ ॥

अनिवृत्तेः च प्रथमे अन्यस्थितिखंडप्रभृतिमारभते ।
उपशमनं निधत्तिः निकाचना तत्र व्युच्छिन्ना ॥ २२४ ॥

अर्थ—अनिवृत्तिकरणके प्रथमसमयमें पहलेसे अन्यप्रमाण ही लिये स्थितिकांडक स्थितिबन्धापसरण अनुभागखण्ड प्रारंभ किये जाते हैं और वहां ही सब कर्मोंकी उपशम

निधत्ती निकाचना इन तीन अवस्थाओंकी व्युच्छित्ति होती है ॥ इन तीनोंका स्वरूप कर्मकांडमें है ॥ २२४ ॥

अंतोकोडाकोडी अंतोकोडी य संत बंधं च ।
सत्तण्हं पयडीणं अणियट्टीकरणपढमम्हि ॥ २२५ ॥
अंतःकोटीकोटिः अंतःकोटिश्च सत्त्वं बंधश्च ।
सप्तानां प्रकृतीनां अनिवृत्तिकरणप्रथमे ॥ २२५ ॥

अर्थ—अनिवृत्तिकरणके प्रथमसमयमें आयुके विना सातकर्मोंका स्थितिसत्त्व यथायोग्य अन्तःकोड़ाकोड़िसागरमात्र है और स्थितिबन्ध अन्तःकोटीसागरमात्र है। अपूर्वकरणमें घटानेसे इतना कम रह जाता है ॥ २२५ ॥

ठिदिबंधसहस्सगदे संखेज्जा बादरे गदा भागा।
तत्थ असण्णिस्स ठिदीसरिस ट्ठिदिबंधणं होदि ॥ २२६ ॥
स्थितिबंधसहस्रगते संख्येया बादरे गता भागाः ।
तत्र असंज्ञिनः स्थितिसदृशं स्थितिबंधनं भवति ॥ २२६ ॥

अर्थ—स्थितिबन्धापसरणके क्रमसे हजारों स्थितिबन्ध होजानेपर अनिवृत्तिकरणकालके संख्यातभागोंमेंसे बहुभाग बीत जानेपर एकभाग शेष रहते असंज्ञीके स्थितिबन्धके समान स्थितिबन्ध होता है ॥ २२६ ॥

ठिदिबंधपुधत्तगदे पत्तेयं चदुर तिय वि एएदि ।
ठिदिबंधसमं होदि हु ठिदिबंधमणुक्कमेणेव ॥ २२७ ॥
स्थितिबंधपृथक्त्वगते प्रत्येकं चतुस्त्रिद्वि एकेति ।
स्थितिबंधसमो भवति हि स्थितिबंधोऽनुक्रमेणैव ॥ २२७ ॥

अर्थ—उसके बाद हरएकके संख्यातहजार स्थितिबन्ध बीत जानेपर क्रमसे चौइन्द्री तेइन्द्री दो इन्द्री एकेंद्रीके स्थितिबन्धके समान स्थितिबन्ध होता है ॥ २२७ ॥

एइंदियट्ठिदीदो संखसहस्से गदे दु ठिदिबंधो ।
पल्लेकदिवड्ढदुगे ठिदिबंधो वीसियतियाणं ॥ २२८ ॥
एकेंद्रियस्थितितः संख्यसहस्रे गते तु स्थितिबंधः ।
पल्यैकद्व्यर्धद्विके स्थितिबंधो विंशतित्रिकाणाम् ॥ २२८ ॥

अर्थ—उस एकेंद्रीसमान स्थितिबन्धसे पर संख्यात हजार स्थितिबन्ध बीत जानेप[illegible] बेइन्द्रियका एक पल्य तेइन्द्रियका डेढ़ पल्य चौइन्द्रियका दो पल्यप्रमाण स्थितिबन्ध हो[illegible] है ॥ २२८ । यहांपर असंज्ञीके अन्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिधारक दर्शनमोह[illegible]

हजार बन्ध होता है तो बीस कोड़ाकोड़ी स्थितिधारक नामगोत्रोंका कितना होवे—इस तरह त्रैराशिक करनेपर हजार सागरका सातवेंका दो भाग आता है । ऐसे अन्यमें भी त्रैराशिक विधान जानना ।

पल्लस्स संखभागं संखगुणूणं असंखगुणहीणं ।
बंधोसरणे पल्लं पल्लासंखंति संखवस्संति ॥ २२९ ॥

पल्यस्य संख्यभागं संख्यगुणोनमसंख्यगुणहीनम् ।
बंधापसरणे पल्यं पल्यासंख्यमिति संख्यवर्षमिति ॥ २२९ ॥

अर्थ—अन्तःकोड़ाकोड़ी स्थितिबन्धसे जबतक पल्यमात्र स्थितिबन्ध हो तबतक स्थितिबन्धापसरणका प्रमाण पल्यके संख्यातवें भाग है, उसके बाद पल्यके असंख्यातवें भागरूप दूरापकृष्टि स्थितितक क्रमसे संख्यातगुणा कम पल्यका संख्यातवां भागमात्र स्थितिबन्धापसरण होता है । और दूरापकृष्टिस्थितिसे लेकर जबतक संख्यातहजार वर्षमात्र स्थितिबन्ध हो वहां पल्यके असंख्यात बहुभागमात्र स्थितिबन्धापसरण है और असंख्यातगुणा कम पल्यके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिबन्ध होता है ऐसा जानना ॥ २२९ ॥

एवं पल्ले जादा वीसीया तीसिया य मोहो य ।
पल्लासंखं च कमे बंधेण य वीसियतियाओ ॥ २३० ॥

एवं पल्ये जाते वींसिया तीसिया च मोहश्च ।
पल्यासंख्यं च क्रमे बंधेन च वीसियत्रिकाः ॥ २३० ॥

अर्थ—उस पल्यस्थितिमें वे बीसीय तीसीय मोहनीका स्थितिबन्ध है वह क्रमकरणकालके अंतमें पल्यका असंख्यातवां भागमात्र है । इसतरह संख्यातहजार स्थितिबन्धापसरण जानेपर बीसीय तीसियोंका पल्यके संख्यातवें भागमात्र मोहका पल्यमात्र स्थितिबन्ध होता है ॥ २३० ॥

मोहगपल्लासंखट्ठिदिबंधसहस्सगेसु तीदेसु ।
मोहो तीसिय हेट्ठा असंखगुणहीणयं होदि ॥ २३१ ॥

मोहगपल्यासंख्यस्थितिबन्धसहस्रकेष्वतीतेषु ।
मोहः तीसियं अधस्तना असंख्यगुणहीनकं भवति ॥ २३१ ॥

अर्थ—मोहकपल्यके असंख्यात बहुभागमात्र आयाम लिये ऐसे संख्यातहजार स्थितिबंध बीत जानेपर पूर्वस्थितिबन्धसे असंख्यातगुणा कम तीसिय मोह और वीसिय-इन दोनोंका स्थितिबन्ध होता है ॥ २३१ ॥

तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वीसियाण हेट्ठादि ।
एक्कसराहो मोहो असंखगुणहीणयं होदि ॥ २३२ ॥

तावन्मात्रे बंधे समतीते वींसियानां अधस्तनापि ।

एकसदृशः मोहो असंख्यगुणहीनको भवति ॥ २३२ ॥

अर्थ—उतना संख्यातहजार स्थितिबन्ध बीत जानेपर तीनोंका पल्यका असंख्यातवां भागमात्र स्थितिबन्ध होता है वहांपर थोड़ा मोहका उससे असंख्यातगुणा वीसियाओंका उससे असंख्यातगुणा तीसियाओंका स्थितिबन्ध होता है । यहांपर विशुद्धताके होनेसे वीसियाओंसे भी मोहका घटता स्थितिबन्धरूप क्रम हुआ ॥ २३२ ॥

तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वेयणीयहेट्ठादु ।
तीसियघादितियाओ असंखगुणहीणया होंति ॥ २३३ ॥

तावन्मात्रे बंधे समतीते वेदनीयाधस्तनात् ।

तीसियघातित्रिका असंख्यगुणहीनका भवंति ॥ २३३ ॥

अर्थ—उतने ही स्थितिबन्धापसरण बीत जानेपर उतना ही स्थितिबन्ध होता है । उसमेंसे सबसे थोड़ा मोहका उससे असंख्यातगुणा वीसियाओंका उससे असंख्यातगुणा तीसियाओंमें तीन घातियोंका उससे असंख्यातगुणा वेदनीयका स्थितिबन्ध होता है । यहांपर विशेष विशुद्धताके कारण सातावेदनीयसे तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध कम होजाता है ॥ २३३ ॥

तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वीसियाण हेट्ठादु ।
तीसियघादितियाओ असंखगुणहीणया होंति ॥ २३४ ॥

तावन्मात्रे बंधे समतीते वीसियानामधस्तनात् ।

तीसियघातित्रिका असंख्यगुणहीनका भवंति ॥ २३४ ॥

अर्थ—उतने ही बंधके बीतनेपर उतना ही स्थितिबन्ध होता है । वहांपर सबसे थोड़ा मोहका उससे असंख्यातगुणा तीसियाओंका उससे असंख्यातगुणा वीसियाओंका उससे ड्योढ़ा वेदनीयका स्थितिबन्ध होता है ॥ २३४ ॥

तक्काले वेयणियं णामागोदादु साहियं होदि ।
इदि मोहतीसवीसियवेयणियाणं कमो जादो ॥ २३५ ॥

तत्काले वेदनीयं नामगोत्रतः साधिकं भवति ।

इति मोहत्रिंशद्विंशतिवेदनीयानां क्रमो जातः ॥ २३५ ॥

अर्थ— [illegible] होता है, इसतरह

ताहे पयसहस्स पल्लासंखेज्जव तु ठिदिबंधो ।
तत्थ असंखेज्जाण उदीरणा समयपबद्धाण ॥ २३६

जिनका केवल बंध ही पाया जाता है ऐसी प्रकृतियोंके द्रव्यको उत्कर्षणकर तत्काल अपनी बन्धी हुई प्रकृतिकी आबाधाको छोड़कर उसीकी द्वितीय स्थितिके प्रथमनिषेकमें लेकर यथायोग्य अन्ततक निक्षेपण करता है। और अपकर्षणकर उदयरूप अन्यकषायकी प्रथमस्थितिमें निक्षेपण करता है ॥ २४३ ॥

उदयिल्लाणंतरजं सगपढमे देदि बंधविदिये च ।
उभयाणंतरदव्वं पढमे विदिये च संछुहदि ॥ २४४ ॥

औदयिकानामंतरजं स्वकप्रथमे ददाति बंधद्वितीये च ।
उभयानामंतरद्रव्यं प्रथमे द्वितीये च संक्षिपति ॥ २४४ ॥

अर्थ—जिनका केवल उदय ही पाया जावे ऐसे स्त्रीवेद या नपुंसकवेदके अन्तरके द्रव्यको अपकर्षणकर अपनी अपनी प्रथम स्थितिमें निक्षेपण करता है और उत्कर्षणकर उस जगह बन्धे हुए अन्यकषायोंकी द्वितीयस्थितिमें निक्षेपण करता है। और जिनके बन्ध उदय दोनों ही पाये जाते हैं ऐसे पुरुषवेद या कोई एक कषाय उनके अन्तरके द्रव्यको अपकर्षणकर उदयरूप प्रकृतिकी प्रथमस्थितिमें निक्षेपण करता है और उत्कर्षण कर वहां बंधवाली प्रकृतियोंकी द्वितीयस्थितिमें निक्षेपण करता है ॥ २४४ ॥

अणुभयगाणंतरजं बंधं ताणं च विदियगे देदि ।
एवं अंतरकरणं सिज्झदि अंतोमुहुत्तेण ॥ २४५ ॥

अनुभयकानामंतरजं बंधं तेषां च द्वितीयके ददाति ।
एवमंतरकरणं सिद्ध्यति अंतर्मुहूर्तेन ॥ २४५ ॥

अर्थ—बंध उदय रहित जो अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यानकषाय और हास्यादि छह नोकषाय इनके अन्तरके द्रव्यको उत्कर्षणकर उस कालमें बंधी अन्यप्रकृतियोंकी द्वितीयस्थितिमें निक्षेपण करता है और अपकर्षणकर उदयरूप अन्यप्रकृतियोंकी प्रथमस्थितिमें देता है ॥ २४५ ॥

सत्तकरणाणि यंतरकदपढमे होंति मोहणीयस्स ।
इगिठाणिय बंधुदओ ठिदिबंधो संखवस्सं च ॥ २४६ ॥
अणुपुव्वीसंकमणं लोहस्स असंकमं च संढस्स ।
पढमोवसामकरणं छावलितीदेसुदीरणदा ॥ २४७ ॥

सप्तकरणानि अंतरकृतप्रथमे भवंति मोहनीयस्य ।
एकस्थानको बंधोदयः स्थितिबंधः संख्यवर्षं च ॥ २४६ ॥
आनुपूर्वीसंक्रमणं लोभस्यासंक्रमं च षंढस्य ।
प्रथमोपशमकरणं षडावल्यतीतेषूदीरणता ॥ २४७ ॥

अर्थ—अन्तर करनेके बाद प्रथमसमयमें सातकरणोंका एककालमें आरंभ होता है। वहां पहले अन्तरकरनेसे पहले मोहका दारुलतासमान द्विस्थानगत बंध और उदय था वह अब लतासमान एकस्थानगत बन्ध उदय होनेलगा। ऐसे दो करण हुए। पहले मोहका स्थितिबन्ध असंख्यातवर्षका होता था अब संख्यातवर्षका ही होने लगा, पहले चारित्रमोहका परस्पर प्रकृतियोंका जिस तिस जगह संक्रमण होता था अब आनुपूर्वी संक्रमण होने लगा, पहले संज्वलन लोभका संज्वलन क्रोधादिकमें संक्रमण होता था अब इसका कहीं भी संक्रमण नहीं होता, अब नपुंसकवेदकी उपशमक्रियाका प्रारंभ हुआ, पहले बन्ध होनेके बाद एक आवलिकाल बीतजानेपर उदीरणा करनेकी सामर्थ्य थी अब जिसका बंध होता है उसकी बंधसमयसे छह आवलि बीत जानेपर उदीरणा करनेकी सामर्थ्य होती है ॥ २४६ । २४७ ॥

अंतरपढमादु कमे एक्केक्कं सत्त चदुसु तिय पयडिं ।
समुवसामदि णवकं समऊणावलिदुगं वज्जं ॥ २४८ ॥

अंतरप्रथमात् क्रमेण एकैकं सप्त चतुर्षु त्रयं प्रकृतीः ।
समुपशमयति नवकं समयोनावलिद्विकं वर्ज्यम् ॥ २४८ ॥

अर्थ—अन्तरकरनेके बाद प्रथमसमयसे लेकर क्रमसे एक एक अन्तर्मुहूर्तकालकर तो एक एक सात प्रकृतियोंको और चार अन्तर्मुहूर्तमें क्रमसे तीन तीन तीन तीन प्रकृतियोंको उपशमाता है। वहां समयकम दो आवलिमात्र नवक समयप्रबद्धको नहीं उपशमाता ॥ २४८ ॥

एय णउंसयवेदं इत्थीवेदं तहेव एयं च ।
सत्तेव णोकसाया कोहादितियं तु पयडीओ ॥ २४९ ॥

एकं नपुंसकवेदं स्त्रीवेदं तथैव एकं च ।
सप्तैव नोकषायाः क्रोधादित्रयं तु प्रकृतयः ॥ २४९ ॥

अर्थ—एक नपुंसकवेद एक स्त्रीवेद इसीतरह सात नोकषाय और तीन क्रोध तीन मान तीन माया तीन लोभ ऐसे क्रमसे उपशम होनेपर इक्कीस प्रकृतियां हैं ॥ २४९ ॥

अंतरकदपढमादो पडिसमयमसंखगुणविहाणकमे ।
णुवसामदि हु संढं उवसंतं जाण णय अण्णं ॥ २५० ॥

अंतरकृतप्रथमात् प्रतिसमयमसंख्यगुणविधानक्रमेण ।
उपशामयति हि षंढं उपशांतं जानीहि न चान्यत् ॥ २५० ॥

अर्थ—अन्तरकरनेके बाद प्रथमसमयसे लेकर समय समय प्रति नपुंसकवेदका उप

होता है वह असंख्यातगुणा क्रमलिये द्रव्य उपशमाता है जो समय समय प्रति द्रव्य उपशमाया उसीका नाम उपशमन फालिका द्रव्य जानना ॥ २५० ॥

संढादिमउवसमगे इट्ठस्स उदीरणा य उदओ य ।
संढादो संकमिदं उवसमियमसंखगुणियकमा ॥ २५१ ॥

पंढादिमोपशामके इष्टस्योदीरणा च उदयश्च ।
पंढात् संक्रमितमुपशमितमसंख्यगुणितक्रमः ॥ २५१ ॥

अर्थ—नपुंसकवेदके उपशमकालके प्रथमसमयमें विवक्षित उपशमरूप पुरुषवेद उसका उदय उदीरणा वह नपुंसकवेदसे संक्रमण करता हुआ असंख्यातगुणा क्रम लिये है ॥२५१॥

जत्तोपाये होदि हु ठिदिबंधो संखवस्समेत्तं तु ।
तत्तो संखगुणूणं बंधोसरणं तु पयडीणं ॥ २५२ ॥

यत उपायेन भवति हि स्थितिबंधः संख्यवर्षमात्रं तु ।
ततः संख्यगुणोनं बंधापसरणं तु प्रकृतीनाम् ॥ २५२ ॥

अर्थ—जिस कारण यहां मोहका स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्षमात्र होता है इसलिये पूर्वस्थितिबन्धापसरणसे यहां स्थितिबन्धापसरण सब प्रकृतियोंका संख्यातगुणा कम होता है ॥ २५२ ॥

वस्साणं बत्तीसादुवरिं अंतोमुहुत्तपरिमाणं ।
ठिदिबंधाणोसरणं अवरट्ठिदिबंधणं जाव ॥ २५३ ॥

वर्षाणां द्वात्रिंशदुपरि अन्तर्मुहूर्तपरिमाणम् ।
स्थितिबंधानापसरणमवरस्थितिबंधनं यावत् ॥ २५३ ॥

अर्थ—बत्तीस वर्षोंका स्थितिबन्ध होता है वहांसे लेकर जहां जघन्य स्थितिबन्ध होता है वहांतक इस बन्धापसरणका प्रमाण अन्तर्मुहूर्तमात्र जानना ॥ २५३ ॥

ठिदिबंधाणोसरणं एयं समयप्पबद्धमहिकिच्चा ।
उत्तं णाणादो पुण ण च उत्तं अणुवलद्धीदो ॥ २५४ ॥

स्थितिबंधानामपसरणमेकं समयप्रबद्धमधिकृत्य ।
उक्तं नानातः पुनः न च उक्तमनुपलब्धितः ॥ २५४ ॥

अर्थ—स्थितिबन्धापसरण विवक्षित स्थितिबन्धके प्रथम समयमें संभव एक समयप्रबद्धको अधिकारकरके कहा गया है और हरसमय स्थितिबन्ध कम होनेकी अप्राप्तिसे नाना समयप्रबद्धकी अपेक्षा नहीं कहा ॥ २५४ ॥

---

१ इसके आगेका एक गाथा भाषा टीकामें नहीं मिला वह यह है—"अंतरकरणादुवरिं ठिदिरसखंडा ण मोहणीयस्स । ठिदिबंधोसरणं पुण संखेज्जगुणेण हीणकमा" ॥

एवं संखेज्जेसु ठिदिबंधसहस्सगेसु तीदेसु।
संढुवसमदे तत्तो इत्थिं च तहेव उवसमदि ॥ २५५ ॥

एवं संख्येयेषु स्थितिबंधसहस्रकेषु अतीतेषु।
षंढोपशांते ततः स्त्रीं च तथैव उपशमयति ॥ २५५ ॥

अर्थ—इसप्रकार संख्यातहजार स्थितिबन्ध बीतनेपर अन्तर्मुहूर्तकालकर नपुंसकवेदका पशम होता है उसके बाद उसीतरह अन्तर्मुहूर्तकालसे स्त्रीवेदको उपशमाता है ॥२५५॥

थीयद्धा संखेज्जदिभागेपगदे तियादठिदिबंधो।
संखतुवं रसबंधो केवलणाणेगठाणं तु ॥ २५६ ॥

स्त्री अद्धा संख्येयभागेपगते त्रिघातिस्थितिबंधः।
संख्यातं रसबंधः केवलज्ञानैकस्थानं तु ॥ २५६ ॥

अर्थ—स्त्रीवेद उपशमानेके कालका संख्यातवां भाग बीतजानेपर मोहका स्थितिबन्ध औरोंसे कम संख्यातहजार वर्षमात्र होता है उससे संख्यातगुणा तीनघातियोंका उससे असंख्यातगुणा पल्यका असंख्यातवां भागमात्र नामगोत्रका उससे कुछ अधिक सातावेदनीयका स्थितिबन्ध होता है। और इसीकालमें केवलज्ञानावरण केवलदर्शनावरणके विना अन्यघातियाओंका लतातमान एकस्थानगत ही अनुभागबन्ध है ॥ २५६ ॥

थीउवसमिदाणंतरसमयादो सत्त णोकसायाणं।
उवसमगो तस्सद्धा संखज्जदिमे गदे तत्तो ॥ २५७ ॥

स्त्री उपशमितानंतरसमयात् सप्तनोकषायाणाम्।
उपशामकः तस्याद्धा संख्याते गते ततः ॥ २५७ ॥

अर्थ—स्त्रीवेद उपशमानेके बादके समयसे लेकर पुरुषवेद और छह हास्यादि ऐसे इन सातप्रकृतियोंको उपशमाता है। उनके उपशमानेका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है। उसके संख्यातवें भाग बीतजानेपर। जो होता है वह आगे कहते हैं ॥ २५७ ॥

णामदुगे वेयणियट्ठिदिबंधो संखवस्सयं होदि।
एवं सत्तकसाया उवसंता सेसभागंते ॥ २५८ ॥

नामद्विके वेदनीयस्थितिबन्धः संख्यवर्षको भवति।
एवं सप्तकषाया उपशांताः शेषभागांते ॥ २५८ ॥

अर्थ—नामगोत्रका स्थितिबन्ध संख्यातहजार वर्षप्रमाण होता है उससे कुछ अधिक वेदनीयका जानना। इसतरह सात नोकषाय उपशमनकालके शेष बहुभागके अन्तसमयमें उपशम होते हैं ॥ २५८ ॥

णवरि य पुंवेदस्स य णवकं समयोणदोण्णिआवलियं ।
मुच्चा सेसं सव्वं उवसंते होदि तच्चरिमे ॥ २५९ ॥
नवरि च पुंवेदस्य च नवकं समयोनद्व्यावलिकाम् ।
मुक्त्वा शेषं सर्वमुपशांते भवति तच्चरमे ॥ २५९ ॥

अर्थ—इतना विशेष है कि उस अन्तसमयमें पुरुषवेदका एकसमयकम दो आवलिमात्र नवीनसमयप्रबद्धको छोड़ अवशेष सबको उपशमाता है ॥ २५९ ॥

तच्चरिमे पुंबंधो सोलसवस्साणि संजलणगाणं ।
तदुगाणं सेसाणं संखेज्जसहस्सवस्साणि ॥ २६० ॥
तच्चरमे पुंबंधः षोडशवर्षाणि संज्वलनकानाम् ।
तद्द्विकानां शेषाणां संख्येयसहस्रवर्षाणि ॥ २६० ॥

अर्थ—सवेद अनिवृत्तिकरणके अन्तसमयमें पुरुषवेदका स्थितिबन्ध सोलहवर्षमात्र, संज्वलनचतुष्कका बत्तीसवर्षमात्र और शेषका संख्यातहजार वर्षमात्र स्थितिबन्ध होता है। उन शेषोंमेंसे भी थोड़ा तीनघातियोंका उससे संख्यातगुणा नामगोत्रका उससे साधिक वेदनीयका स्थितिबन्ध होता है ॥ २६० ॥

पुरिसस्स य पढमठिदी आवलिदोसुवरिदासु आगाला ।
पडिआगाला छिण्णा पडियावलियादुदीरणदा ॥ २६१ ॥
पुरुषस्य च प्रथमस्थितिः आवलिद्वयोरुपरतयोरागालाः ।
प्रत्यागालाः छिन्नाः प्रत्यावलिकातः उदीरणता ॥ २६१ ॥

अर्थ—पुरुषवेदकी अन्तरायामके नीचे कही प्रथमस्थितिमें दो आवलि शेष रहनेपर आगाल प्रत्यागालका व्युच्छेद होता है और शेष दो आवलिके प्रथमसमयसे लेकर पुरुषवेदकी गुणश्रेणी निर्जराका व्युच्छेद हुआ वहां उदयावलीसे बाह्य ऊपरके निषेकोंमें तिष्ठते द्रव्यको उदयावलीमें देते हैं ऐसी उदीरणा ही पाई जाती है ॥ २६१ ॥

अंतरकदादु छण्णोकसायदव्वं ण पुरिसगे देदि ।
एदि हु संजलणस्स य कोधे अणुपुव्विसंकमदो ॥ २६२ ॥
अंतरकृतात् षण्णोकषायद्रव्यं न पुरुषके ददाति ।
एति हि संज्वलनस्य च क्रोधे आनुपूर्विसंक्रमतः ॥ २६२ ॥

अर्थ—अन्तर करनेके बाद हास्यादि छह नोकषायोंका द्रव्य पुरुष वेदमें संक्रमण नहीं करता संज्वलनक्रोधमें ही संक्रमण करता है क्योंकि यहां आनुपूर्वी संक्रमण पाया जाता ॥ २६२ ॥

पुरिसस्स उत्तणवकं असंखगुणियक्कमेण उवसमदि ।
संकमदि हु हीणकमेणधापवत्तेण हारेण ॥ २६३ ॥
पुरुषस्य उक्तनवकं असंख्यगुणितक्रमेण उपशमयति ।
संक्रामति हि हीनक्रमेणाधःप्रवृत्तेन हारेण ॥ २६३ ॥

अर्थ—पुरुषवेदका पूर्व कहा हुआ नवीनसमय प्रबद्ध है उसे असंख्यातगुणा क्रमलिये उपशमाता है और उसीका कोई एक नवीनसमयप्रबद्ध है उसको अधःप्रवृत्त भागहारसे विशेष हीनक्रमसे अन्यप्रकृतिमें संक्रमण करता है ॥ २६३ ॥

पढमावेदे संजलणाणं अंतोमुहुत्तपरिहीणं ।
वस्साणं वत्तीसं संखसहस्सियरगाणठिदिबंधो ॥ २६४ ॥
प्रथमावेदे संज्वलनानां अंतर्मुहूर्तपरिहीनम् ।
वर्षाणां द्वात्रिंशत् संख्यसहस्रमितरेषां स्थितिबन्धः ॥ २६४ ॥

अर्थ—अपगतवेदके प्रथमसमयमें संज्वलनचौकड़ीका तो अन्तर्मुहूर्तकम बत्तीस वर्षमात्र स्थितिबन्ध है और अन्यकर्मोंका पूर्वस्थितिबन्धसे संख्यातगुणा कम हुआ हीनाधिक क्रमलिये संख्यातहजार वर्षमात्र स्थितिबन्ध होता है ॥ २६४ ॥

पढमावेदो तिविहं कोहं उवसमदि पुवपढमठिदी ।
समयाहियआवलियं जाव य तक्कालठिदिबंधो ॥ २६५ ॥
प्रथमावेदस्त्रिविधं क्रोधं उपशमयति पूर्वप्रथमस्थितिः ।
समयाधिकावलिकां यावत् तत्कालस्थितिबन्धः ॥ २६५ ॥

अर्थ—प्रथम समयवाला अपगतवेदी संयमी पुरुषवेदके नवक समयप्रबद्धसहित प्रत्याख्यानादि तीनों क्रोधोंका उपशम करता है । उससे पहले स्थापनकी हुई प्रथमस्थितिके बीतनेपर शेषकाल एक समय अधिक आवलिमात्र जबतक रहे तबतक ही क्रोधादिका स्थितिबन्ध रहता है ॥ २६५ ॥

संजलणचउक्काणं मासचउक्कं तु सेसपयडीणं ।
वस्साणं संखेज्जसहस्साणि हवंति णियमेण ॥ २६६ ॥
संज्वलनचतुष्काणां मासचतुष्कं तु शेषप्रकृतीनाम् ।
वर्षाणां संख्येयसहस्राणि भवंति नियमेन ॥ २६६ ॥

अर्थ—अपगतवेदीके प्रथमसमयसे लेकर अन्तर्मुहूर्तमात्रकाल लिये ऐसे संख्यातहजार स्थितिबन्ध होनेपर क्रोधत्रिकके उपशमकालके अन्तसमयमें संज्वलनचौकड़ीका स्थितिबन्ध चारमासमात्र होता है और उसी अन्तसमयमें अन्यकर्मोंका स्थितिबन्धसे संख्यातगुणा कम ऐसा संख्यातहजार वर्षमात्र पूर्वोक्तप्रकार हीनाधिकपना लिये हुए होता है ॥ २६६ ॥

कोहदुगं संजलणगकोहे संछुहदि जाव पढमठिदी ।
आवलितियं तु उवरिं संछुहदि हु माणसंजलणे ॥ २६७ ॥
क्रोधद्विकं संज्वलनकक्रोधे संक्रामति यावत् प्रथमस्थितिः ।
आवलित्रिकं तु उपरि संक्रामति हि मानसंज्वलने ॥ २६७ ॥

अर्थ—अवेदके प्रथमसमयसे लेकर संज्वलनक्रोधकी प्रथमस्थितिमें तीन आवली शेष रहनेतक अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यानरूप दो क्रोधके द्रव्यको संज्वलनक्रोधमें संक्रमण करता है। और संक्रमावली उपशमनावलि उच्छिष्टावलि इन तीनोंमेंसे संक्रमावलिके अन्तसमयतक उन दोनोंका द्रव्य संज्वलनमानमें संक्रमण होता है ॥ २६७ ॥

कोहस्स पढमठिदी आवलिसेसे तिकोहमुवसंतं ।
ण य णवकं तत्थंतिमबंधुदया होंति कोहस्स ॥ २६८ ॥
क्रोधस्य प्रथमस्थितिः आवलिशेषे त्रिक्रोधमुपशांतं ।
न च नवकं तत्रांतिमबंधोदयौ भवतः क्रोधस्य ॥ २६८ ॥

अर्थ—संज्वलनक्रोधकी प्रथमस्थितिमें उच्छिष्टावलि शेष रहनेपर अन्तमें नवीनसमयप्रबद्धके विना समस्त संज्वलन क्रोधका द्रव्य अपनेरूप रहता हुआ उपशम हुआ। वहां ही संज्वलन क्रोधके बन्ध उदयका व्युच्छेद होता है ॥ २६८ ॥

से काले माणस्स य पढमट्ठिदिकारवेदगो होदि ।
पढमट्ठिदिम्मि दव्वं असंखगुणियकमे देदि ॥ २६९ ॥
तस्मिन् काले मानस्य च प्रथमस्थितिकारवेदको भवति ।
प्रथमस्थितौ द्रव्यं असंख्यगुणितक्रमेण ददाति ॥ २६९ ॥

अर्थ—तीन क्रोधोंके उपशम होनेके बादमें यह संयमी संज्वलनमानकी प्रथमस्थितिके ऊपरवर्ती जो द्वितीयस्थितिका द्रव्य उसे प्रथमस्थितिके निषेकोंमें असंख्यातगुणा क्रम लिये निक्षेपण करता है और उसी प्रथमस्थितिका कर्ता भोक्ता होता है ॥ २६९ ॥

पढमट्ठिदिसीसादो विदियादिम्हि य असंखगुणहीणं ।
तत्तो विसेसहीणं जाव अइच्छावणमपत्तं ॥ २७० ॥
प्रथमस्थितिशीर्षतः द्वितीयादौ च असंख्यगुणहीनम् ।
ततो विशेषहीनं यावत् अतिस्थापनमप्राप्तम् ॥ २७० ॥

अर्थ—प्रथमस्थितिके अन्तसमयमें निक्षेपण किये द्रव्यसे द्वितीयस्थितिके प्रथमनिषेकमें निक्षेपण किया द्रव्य असंख्यातगुणा कम है और उससे ऊपर विशेष घटता क्रमलिये जबतक अतिस्थापनावली प्राप्त न हो तबतक द्रव्यका निक्षेपण होता है ॥ २७० ॥

माणस्स पढमठिदी सेसे समयाहिया तु आवलियं।
तियसंजलणगबंधो दुमास सेसाण कोह आलावो ॥ २७१ ॥

मानस्य प्रथमस्थितिः शेषे समयाधिकां तु आवलिकाम्।
त्रिकसंज्वलनकबंधो द्विमासं शेषाणां क्रोध आलापः ॥ २७१ ॥

अर्थ—संज्वलनमानकी प्रथमस्थितिमें समय अधिक आवलि शेष रहनेपर उपशमका-के अन्तमें संज्वलन मान माया लोभका स्थितिबन्ध दोमहीनेका होता है। अन्यकर्मोंका स्थितिबन्ध क्रोधके समान संख्यातहजार वर्षमात्र होता है ॥ २७१ ॥

माणदुगं संजलणगमाणे संछुहदि जाव पढमठिदी।
आवलितियं तु उवरिं मायासंजलणगे य संछुहदि ॥ २७२ ॥

मानद्विकं संज्वलनकमाने संक्रामति यावत् प्रथमस्थितिः।
आवलित्रयं तु उपरि मायासंज्वलनके च संक्रामति ॥ २७२ ॥

अर्थ—संज्वलनमानकी प्रथमस्थितिमें तीन आवलि शेष रहनेपर अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यानमानद्विकको संज्वलनमानमें संक्रमण करता है। उसके बाद संक्रमणावलिके अन्तसमयतक उन दो मानोंको संज्वलनमायामें संक्रमण करता है ॥ २७२ ॥

माणस्स य पढमठिदी आवलिसेसे तिमाणमुवसंतं।
ण य णवकं तत्थंतिमबंधुदया होंति माणस्स ॥ २७३ ॥

मानस्य च प्रथमस्थितौ आवलिशेषे त्रिमानमुपशांतं।
न च नवकं तत्रांतिमबंधोदयौ भवतः मानस्य ॥ २७३ ॥

अर्थ—संज्वलनमानकी प्रथमस्थितिमें आवलिकाल शेष रहनेपर नवीनसमयप्रबद्धके बिना अन्य सब तीनमानका द्रव्य उपशम हुआ उसीसमय संज्वलनके बन्धकी और उदयकी व्युच्छित्ति होती है ॥ २७३ ॥

से काले मायाए पढमट्ठिदिकारवेदगो होदि।
माणस्स य आलाओ दव्वस्स विभंजणं तत्थ ॥ २७४ ॥

तस्मिन् काले मायायाः प्रथमस्थितिकारवेदको भवति।
मानस्य च आलापो द्रव्यस्य विभंजनं तत्र ॥ ७४ ॥

अर्थ—तीन मानके उपशमके बाद संज्वलनमायाकी प्रथमस्थितिका कर्ता व वेदक (भोक्ता) होता है यहां संज्वलनमायाद्रव्यका अपकर्षण निक्षेपण विभाग मानद्रव्यवत् जानना। और संज्वलनमानके समयकम दो आवलिमात्र नवीन समयप्रबद्ध हैं वे उतनी समयकम दो आवलिमात्र कालकर उपशमते हैं ॥ २७४ ॥

मायाए पढमठिदी सेसे समयाहियं तु आवलियं ।
मायालोहगबंधो मासं सेसाण कोह आलाओ ॥ २७५ ॥

मायायाः प्रथमस्थितौ शेषे समयाधिकं तु आवलिकं ।
मायालोभगबन्धः मासं शेषाणां क्रोध आलापः ॥ २७५ ॥

अर्थ—मायाकी प्रथमस्थितिमें समय अधिक आवलि शेष रहनेपर संज्वलन माया और लोभका तो मासमात्र स्थितिबन्ध होता है अन्यकर्मोंका क्रोधवत् आलाप करना । पूर्वकथित रीतिसे हीनाधिकपना लिये संख्यातहजारवर्षमात्र स्थितिबन्ध है ॥ २७५ ॥

मायदुगं संजलणगमायाए छुहदि जाव पढमठिदी ।
आवलितियं तु उवरिं संछुहदि हु लोहसंजलणे ॥ २७६ ॥

मायाद्विकं संज्वलनगमायायां संक्रामति यावत् प्रथमस्थितिः ।
आवलित्रिकं तु उपरि संक्रामति हि लोभसंज्वलने ॥ २७६ ॥

अर्थ—संज्वलनमायाकी प्रथमस्थितिमें जबतक तीन आवलि शेष रहें तबतक अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानमाया द्विकका द्रव्य संज्वलनमायामें ही संक्रमण करता है । उससे परे संक्रमणावलीमें उनका द्रव्य संज्वलनलोभमें संक्रमण करता है ॥ २७६ ॥

मायाए पढमठिदी आवलिसेसेति मायमुवसंतं ।
ण य णवकं तत्थंतिम बंधुदया होंति मायाए ॥ २७७ ॥

मायायाः प्रथमस्थितौ आवलिशेषे इति मायमुपशांतं ।
न च नवकं तत्रांतिमे बंधोदयौ भवतः मायायाः ॥ २७७ ॥

अर्थ—मायाकी प्रथमस्थितिमें आवलि शेष रहनेपर नवक समय प्रबद्धके विना अन्य-सब मायाका द्रव्य उपशम होजाता है । और उसीसमयमें संज्वलनमायाके बन्ध या उदयकी व्युच्छित्ति होती है ॥ २७७ ॥

से काले लोहस्स य पढमट्ठिदिकारवेदगो होदि ।
तं पुण बादरलोहो माणं वा होदि णिक्खेओ ॥ २७८ ॥

स्वे काले लोभस्य च प्रथमस्थितिकारवेदको भवति ।
तत् पुनः बादरलोभः मानो वा भवति निक्षेपः ॥ २७८ ॥

अर्थ—मायाके उपशमके बाद संज्वलनलोभको प्रथमस्थितिका कर्ता और भोगता होता है । वह अनिवृत्तिकरण जीव स्थूल लोभको अनुभवता हुआ बादरसांपराय कहा जाता है । उस संज्वलनलोभका द्रव्य अपकर्षणकर प्रथमस्थितिमें निक्षेपण किया जाता है उसकी विधि मानकी तरह जानना ॥ २७८ ॥

पढमट्ठिदिसद्धंते लोहस्स य होदि दिणपुधत्तं तु ।
वस्ससहस्सपुधत्तं सेसाणं होदि ठिदिबंधो ॥ २७९ ॥

प्रथमस्थित्यर्धान्ते लोभस्य च भवति दिनपृथक्त्वं तु ।
वर्षसहस्रपृथक्त्वं शेषाणां भवति स्थितिबंधः ॥ २७९ ॥

अर्थ—माया उपशमनके बाद लोभवेदककालके प्रथमार्धके अन्तसमयतक बादर लोभका वेदनकालके प्रथम अन्तसमयमें स्थितिबन्ध संज्वलन लोभका तो पृथक्त्व दिन प्रमाण और अन्यका पूर्वस्थितिबन्धसे पृथक्त्व हजार वर्षप्रमाण है ॥ २७९ ॥

बिदियद्धे लोभावरफड्डयहेट्ठा करेदि रसकिट्टिं ।
इगिफड्डयवग्गणगद संखाणमणंतभागमिदं ॥ २८० ॥

द्वितीयार्धे लोभावरस्पर्धकाधस्तनां करोति रसकृष्टिम् ।
एकस्पर्धकवर्गणागतसंख्यानामनंतभागमिदम् ॥ २८० ॥

अर्थ—संज्वलनलोभकी प्रथमस्थितिके प्रथम आधेको बिताकर द्वितीय अर्धके प्रथमसमयमें संज्वलन लोभके अनुभागसत्त्वमें जघन्यस्पर्धकोंकी नीचेसे अनुभाग कृष्टि करता है अर्थात् फलदेनेकी शक्तिको क्षीण करता है । उन सूक्ष्मकृष्टिरूप अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाण एक स्पर्धकमें वर्गणाप्रमाणके अनन्तवें भागमात्र जानना ॥ २८० ॥

उक्कट्टिदइगिभागं पल्लासंखेज्जखंडिदिगिभागं ।
देदि सुहुमासु किट्टिसु फड्डयगे सेसबहुभागं ॥ २८१ ॥

अपकर्षितैकभागं पल्यासंख्येयखंडितैकभागम् ।
ददाति सूक्ष्मासु कृष्टिषु स्पर्धके शेषबहुभागम् ॥ २८१ ॥

अर्थ—संज्वलनलोभके सब सत्त्वरूपद्रव्यके अपकर्षित एक भागमात्र द्रव्यको ग्रहणकर उसमें पल्यके असंख्यातवें भागसे भाजित एक भागको सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणमाता है और शेष बहुभागको स्पर्धकमें निक्षेपण करता है ॥ २८१ ॥

पडिसमयमसंखगुणा दव्वादु असंखगुणविहीणकमे ।
पुव्वगहेट्ठा हेट्ठा करेदि किट्टिं स चरिमोत्ति ॥ २८२ ॥

प्रतिसमयमसंख्यगुणा द्रव्यात् असंख्यगुणविहीनक्रमेण ।
पूर्वगाधस्तनां अधस्तनां करोति कृष्टिं स चरम इति ॥ २८२ ॥

अर्थ—कृष्टिकरणके कालके अन्तसमयतक समयसमय पूर्वपूर्वसमयोंमें की हुई कृष्टियोंके प्रमाणसे [illegible] की गई कृष्टियोंका प्रमाण क्रमसे असंख्यातगुणा घटता हुआ है और अनुभाग [illegible] ॥ २८२ ॥

द्वितीयार्धे परिशेषे समयोनावलित्रिकेषु लोभद्विकम् ।
स्वस्थाने उपशाम्यति हि न ददाति संज्वलनलोभे ॥ २९१ ॥

अर्थ—संज्वलनलोभकी प्रथमस्थितिके द्वितीयार्धमें समयकम तीन आवलि शेष रहने पर अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यानलोभ अपने स्वरूपमें ही रहते हुए उपशम होते हैं लेकिन संज्वलनलोभमें संक्रमण नहीं करते ॥ २९१ ॥

बादरलोभादिठिदी आवलिसेसे तिलोहमुवसंतं ।
णवकं किट्टिं मुचा सो चरिमो थूलसंपराओ य ॥ २९२ ॥

बादरलोभादिस्थितौ आवलिशेषे त्रिलोभमुपशांतम् ।
नवकं कृष्टिं मुक्त्वा स चरमः स्थूलसांपरायो यः ॥ २९२ ॥

अर्थ—बादरलोभकी प्रथमस्थितिमें उच्छिष्टावली शेष रहनेपर उपशमनावलीके अन्तसमयमें तीनों लोभका द्रव्य उपशम होता है लेकिन सूक्ष्मकृष्टिको प्राप्त हुआ द्रव्य और एकसमय कम दो आवलिमात्र नवीनसमयप्रबद्धोंका द्रव्य तथा उच्छिष्टावलिमात्र निषेकोंका द्रव्य उपशमरूप नहीं होता । इसप्रकार कृष्टिकरणकालके अन्तसमयवर्तीको अन्तिम अनिवृत्तबादरसांपराय कहते हैं ॥ २९२ ॥ इसप्रकार अनिवृत्तकरणका स्वरूप कहा ।

से काले किट्टिस्स य पढमट्टिदिकारवेदगो होदि ।
लोहगपढमठिदीदो अद्धं किंचूणयं गत्थ ॥ २९३ ॥

स्वे काले कृष्टेश्च प्रथमस्थितिकारवेदको भवति ।
लोभगप्रथमस्थितितो अर्धं किंचिदूनकं गत्वा ॥ २९३ ॥

अर्थ—बादरलोभकी प्रथमस्थितिके द्वितीय अर्धसे कुछ कम सूक्ष्मकृष्टियोंकी प्रथमस्थिति करता है । और उसी सूक्ष्मसांपरायके प्रथमसमयमें सूक्ष्मकृष्टिके उदयका कर्ता और भोगता है ॥ २९३ ॥

पढमे चरिमे समये कदकिट्टीणग्गदो दु आदीदो ।
मुचा असंखभागं उदेदि सुहुमादिमे सवे ॥ २९४ ॥

प्रथमे चरमे समये कृतकृष्टीनामग्रतस्तु आदितः ।
मुक्त्वा असंख्यभागं उदेति सूक्ष्मादिमे सर्वे ॥ २९४ ॥

अर्थ—सूक्ष्मकृष्टि करनेके कालके प्रथमसमयमें अन्तसमयमेंकी हुई कृष्टियोंका असंख्यातवां एकभाग अपने स्वरूपकर उदय नहीं होता । अन्य कृष्टिरूप परिणमनकर उदय होतीं है । और शेष बहुभाग तथा द्वितीयादि द्विचरम समयोंमें की हुई सब कृष्टियें अपने स्वरूपकर ही उदय होती हैं ॥ २९४ ॥

विदियादिसु समयेसु हि छंडदि पल्लाअसंखभागं तु।
आफुंददि हु अपुव्वा हेट्ठा तु असंखभागं तु ॥ २९५ ॥

द्वितीयादिषु समयेषु हि त्यजति पल्यासंख्यभागं तु।
आक्रामति हि अपूर्वा अधस्तनास्तु असंख्यभागं तु ॥ २९५ ॥

अर्थ—सूक्ष्मसांपरायके द्वितीय आदिसमयोंमें पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियोंको छोड़ता है अर्थात् उदयको प्राप्त नहीं करता। और उस प्रथमसमयमें जो नीचेकी अनुदय कृष्टि कहीं थीं उनमें अन्तकृष्टिसे लेकर यहां जितना प्रमाण कहा है उतनी कृष्टियां उदयरूप होतीं हैं ॥ २९५ ॥

किट्टिं सुहुमादीदो चरिमोत्ति असंखगुणिदसेढीए।
उवसमदि हु तच्चरिमे अवरट्ठिदिबंधणं छण्हं ॥ २९६ ॥

कृष्टिं सूक्ष्मादितः चरम इति असंख्यगुणितश्रेण्याः।
उपशमयति हि तच्चरमे अवरस्थितिबंधनं षण्णाम् ॥ २९६ ॥

अर्थ—सूक्ष्मसांपरायके प्रथम समयसे लेकर अन्तसमयतक असंख्यातगुणा क्रमलिये द्रव्य उपशमाता है। और सूक्ष्मसांपरायके अन्तसमयमें आयुमोहके विना छहकर्मोंका जघन्य स्तिबन्ध होता है ॥ २९६ ॥

अंतोमुहुत्तमेत्तं घादितियाणं जहण्णठिदिबंधो।
णामदुग वेयणीये सोलस चउवीस य मुहुत्ता ॥ २९७ ॥

अंतर्मुहूर्तमात्रं घातित्रयाणां जघन्यस्थितिबंधः।
नामद्विके वेदनीये षोडश चतुर्विंशश्च मुहूर्ताः ॥ २९७ ॥

अर्थ—इनमेंसे तीन घातियाओंका अन्तर्मुहूर्तमात्र, नाम गोत्रका सोलह मुहूर्त, सातावेदनीयका चौवीसमुहूर्त जघन्य स्तिबंध होता है ॥ २९७ ॥

पुरिसादीणुच्छिट्ठं समऊणावलिगदं तु पच्चिहिदि।
सोदयपढमट्ठिदिणा कोहादीकिट्टियंताणं ॥ २९८ ॥

पुरुषादीनामुच्छिष्टं समयोनावलिगतं तु प्रत्याहंति।
सोदयप्रथमस्थितिना क्रोधादिकृष्टंतानाम् ॥ २९८ ॥

अर्थ—पुरुषवेदादिकोंका एकसमयकम आवलिमात्र निषेकोंका द्रव्य उच्छिष्टावलिरूप रहता है वह क्रोधादि सूक्ष्मकृष्टिपर्यंतोंके उदयरूप निषेकसे लेकर प्रथमस्थितिके निषेकोंके साथ उसरूप परिणमनकर उदय होता है ॥ २९८ ॥

पुरिसादो लोहगयं णवकं समऊण दोण्णि आवलियं।
उवसमदि हु कोहादीकिट्टीअंतेसु ठाणेसु ॥ २९९ ॥

पुरुपान् लोभगतं नवकं समयोने द्वे आवलिके ।

उपशाम्यति हि क्रोधादिकृष्टिवेतु स्थानेषु ॥ २९९ ॥

अर्थ—पुरुपवेद आदि लोभ पर्यंतवकका एकसमय कम दो आवलिमात्र नवक समयप्रबद्धोंका द्रव्य है यह क्रोधादिकृष्टिवकके प्रथम स्थितिके कालोंमें समयसमय असंख्यातगुणा क्रमलिये उपशम होता है ॥ २९९ ॥ इसप्रकार सूक्ष्मसांपरायके अन्तसमयमें सब कृष्टि द्रव्यको उपशमाके बादके समयमें उपशांतकपाय होता है ।

उवसंतपढमसमये उवसंतं सयलमोहणीयं तु ।
मोहस्सुदयाभावा सव्वत्थ समाणपरिणामो ॥ ३०० ॥

उपशांतप्रथमसमये उपशांतं सकलमोहनीयं तु ।
मोहस्योदयाभावात् सर्वत्र समानपरिणामः ॥ ३०० ॥

अर्थ—उपशांतकपायके पहले समयमें सकलचारित्रमोहनीयकर्म बंधादिक अवस्थाओंके न होनेसे सब तरह उपशमरूप होगया। और कपायोंके उदयका अभाव होनेसे अपने गुणस्थानके कालमें समानरूप विशुद्धपरिणाम होते हैं। हीनाधिकता नहीं होती ॥ ३०० ॥ ऐसा यथाख्यात चारित्र होता है ।

अंतोमुहुत्तमेत्तं उवसंतकसायवीयरायद्धा ।
गुणसेढीदीहत्तं तस्सद्धा संखभागो दु ॥ ३०१ ॥

अंतर्मुहूर्तमात्रं उपशांतकपायवीतरागाद्धा ।
गुणश्रेणीदीर्घत्वं तस्याद्धा संख्यभागस्तु ॥ ३०१ ॥

अर्थ—उपशांतकपाय वीतराग ग्यारवें गुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त है। उससे परे नियमकर द्रव्यकर्मके उदयके निमित्तसे संक्लेशरूप भावकर्म प्रगट होजाता है। और इस कालके संख्यातवें भागमात्र यहां उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम है ॥ ३०१ ॥

उदयादिअवट्ठिदगा गुणसेढी दव्वमवि अवट्ठिदगं ।
पढमगुणसेढिसीसे उदये जेट्ठं पदेसुदयं ॥ ३०२ ॥

उदयाद्यवस्थितका गुणश्रेणी द्रव्यमपि अवस्थितकम् ।
प्रथमगुणश्रेणिशीर्षे उदये ज्येष्ठं प्रदेशोदयम् ॥ ३०२ ॥

अर्थ—उपशांतकपायमें उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम है और यहां परिणाम अवस्थित है उसके निमित्तसे अपकर्षणरूप द्रव्यका प्रमाण भी अवस्थित है। तथा प्रथमसमयमें की गई गुणश्रेणीका अन्तनिषेक जिससमय उदय आवे उस समय उत्कृष्ट परमाणुओंका उदय जानना ॥ ३०२ ॥

णामधुवोदयबारस सुभगति गोदेक विग्घपणगं च ।
केवल णिद्दाजुयलं चेदे परिणामपचया होंति ॥ ३०३ ॥

नामध्रुवोदयद्वादश सुभगत्रि गोत्रैकं विघ्नपंचकं च ।
केवलं निद्रायुगलं चैते परिणामप्रत्यया भवंति ॥ ३०३ ॥

अर्थ—उपशांतकषायमें जो उनसठ उदयप्रकृतियां पाई जाती हैं उनमेंसे तैजसशरीर आदि नामकर्मकी ध्रुवोदयी बारह प्रकृतियां, सुभग आदेय यशस्कीर्ति, उच्चगोत्र, पांच अन्तराय, केवल ज्ञानावरण दर्शनावरण और निद्रा प्रचला—ये पचीस प्रकृतियां परिणाम प्रत्यय हैं अर्थात् वर्तमान परिणामके निमित्तसे इनका अनुभाग उत्कर्षण (बढना) अपकर्षण (घटना) आदिरूप होके उदय होता है ॥ ३०३ ॥

तेसिं रसवेदमवट्ठाणं भवपचया हु सेसाओ ।
चोत्तीसा उवसंते तेसिं तिट्ठाण रसवेदं ॥ ३०४ ॥

तेषां रसवेदमवस्थानं भवप्रत्यया हि शेषाः ।
चतुस्त्रिंशत् उपशांते तेषां त्रिस्थानं रसवेदं ॥ ३०४ ॥

अर्थ—उन पचीस प्रकृतियोंके अनुभागका उदय उपशांत कषायके प्रथमसमयसे अंतसमयतक अवस्थित (समानरूप) है । क्योंकि वहां परिणाम समान हैं । और शेष चौंतीस प्रकृतियां भवप्रत्यय हैं । आत्माके परिणामोंकी अपेक्षा रहित पर्यायके ही आश्रयसे इनके अनुभागमें हानि वृद्धि पायी जाती है इसलिये इनके अनुभागका उदय तीन अवस्था लिये है ॥ ३०४ ॥ इस तरह उपशांत कषाय गुणस्थानके अन्तसमयतक इक्कीस चारित्रमोहकी प्रकृतियोंका उपशमन विधान समाप्त हुआ ।

आगे उपशांतकषायसे पड़नेका विधान कहते हैं;—

उवसंते पडिवडिदे भवक्खये देवपढमसमयम्हि ।
उग्घाडिदाणि सव्वि करणाणि हवंति णियमेण ॥ ३०५ ॥

उपशांते प्रतिपतिते भवक्षये देवप्रथमसमये ।
उद्घाटितानि सर्वाण्यपि करणानि भवंति नियमेन ॥ ३०५ ॥

अर्थ—उपशांतकषायके कालमें प्रथमादि अन्तसमयतक समयोंमें जिस किसीमें आयुके नाशसे मरकर देवपर्यायके असंयतगुणस्थानमें पड़े वहां असंयतके प्रथमसमयमें बंध उदीरणा वगैरह सब करणोंको प्रगटकर प्रवर्तता है । क्योंकि जो उपशांत कषायमें उपशमे थे वे सब असंयतमें उपशम रहित हुए हैं ॥ ३०५ ॥

सोदीरणाण दव्वं देदि हु उदयावलिम्हि इयरं तु ।
उदयावलिबाहिरगे उंछाये देदि सेडीये ॥ ३०६ ॥

सोदीरणानां द्रव्यं ददाति हि उदयावली इतरत्तु ।

उदयावलिबाह्यके अन्तरे ददाति श्रेण्याम् ॥ ३०६ ॥

अर्थ—वह देव उदयरूप प्रकृतियोंके द्रव्यको उदयावलिमें देता है । और उदय रहित नपुंसकवेदादि मोहकी प्रकृतियोंके द्रव्यको उदयावलीसे बाह्य अन्तरायाम वा ऊपरकी स्थितिमें चय घटते क्रमसे देता है ॥ ३०६ ॥

अद्धाखए पडंतो अधापवत्तोत्ति पडदि हु कमेण ।
सुज्झंतो आरोहदि पडदि सो संकिलिस्संतो ॥ ३०७ ॥

अद्धाक्षये पतन् अधःप्रवृत्त इति पतति हि क्रमेण ।
शुद्ध्यन् आरोहति पतति स संक्लिश्यन् ॥ ३०७ ॥

अर्थ—उपशांतकषायका अन्तर्मुहूर्तकाल बीतनेपर क्रमसे पड़कर अधःप्रवृत्तकरणरूप अप्रमत्त होता है । उसके बाद शुद्धता सहित होनेसे ऊपरके गुणस्थानोंमें चढ जाता है और वही जीव संक्लेश सहित होनेसे नीचेके गुणस्थानोंमें पड़ जाता है । यहां उपशमकालके क्षयके निमित्तसे पड़ना जानना ॥ ३०७ ॥

सुहुमपविट्ठसमयेणदुवसामण तिलोहगुणसेढी ।
सुहुमद्धादो अहिया अवट्ठिदा मोहगुणसेढी ॥ ३०८ ॥

सूक्ष्मप्रविष्टसमयेनाधुपशमं त्रिलोभगुणश्रेणी ।
सूक्ष्माद्धातो अधिका अवस्थिता मोहगुणश्रेणी ॥ ३०८ ॥

अर्थ—सूक्ष्मसांपरायमें प्रवेश करनेके बाद प्रथमसमयमें जिनका उपशमकरण नष्ट होगया है ऐसे अप्रत्याख्यानादि तीन लोभोंकी गुणश्रेणीका आरंभ होता है । उस गुणश्रेणी आयामका प्रमाण चढनेवाले सूक्ष्मसांपरायके कालसे एक आवलिमात्र अधिक है । इस अवसरमें मोहकी गुणश्रेणीका आयाम अवस्थितरूप जानना ॥ ३०८ ॥

उदयाणं उदयादो सेसाणं उदयबाहिरे देदि ।
छण्हं बाहिरसेसे पुव्वतिगादहियणिक्खेओ ॥ ३०९ ॥

उदयानामुदयतः शेषाणां उदयबाह्ये ददाति ।
षण्णां बाह्यशेषे पूर्वत्रिकादधिकनिक्षेपः ॥ ३०९ ॥

अर्थ—उदयरूप द्रव्यको आकर्षणकर उदयरूप गुणश्रेणी आयाममें निक्षेपण करे और उदय रहित अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान लोभके द्रव्यको आकर्षणकर उदयावलीसे बाह्य निक्षेपण करे । और आयु मोहके बिना छह कर्मोंके द्रव्यको आकर्षणकर उदयावलीमें तथा बहुभाग गुणश्रेणी आयाममें देवे । वह गुणश्रेणी आयाम उतरनेवाले सूक्ष्मसांपरायादि तीनोंका मिलाये हुए कालसे कुछ अधिक प्रमाण लिये हुए गलितावशेषरूप है ॥ ३०९ ॥

ओदरसुहुमादीए बंधो अंतो मुहुत्तवत्तीसं ।
अडदालं च मुहुत्ता तिघादिणामदुगवेयणीयाणं ॥ ३१० ॥

अवतरत्सूक्ष्मादिके बंधो अन्तर्मुहूर्तं द्वात्रिंशत् ।
अष्टचत्वारिंशत् च मुहूर्ताः त्रिघातिनामद्विकवेदनीयानाम् ॥ ३१० ॥

अर्थ—उतरे हुए सूक्ष्मसांपरायके प्रथमसमयमें तीन घातियाओंका अन्तर्मुहूर्त, नाम गोत्रका बत्तीसमुहूर्त और वेदनीयका अड़तालीस मुहूर्तमात्र स्थितिबन्ध है ॥ ३१० ॥ आरोहकसे अवरोहक (उतरनेवाला) का दूना स्थितिबन्ध होता है ।

गुणसेढीसत्थेदरसबंधो उवसमादु विवरीयं ।
पढमुदओ किट्टीणमसंखभागा विसेसहियकमा ॥ ३११ ॥

गुणश्रेणी शस्तेतररसबन्ध उपशमात् विपरीतम् ।
प्रथमोदयः कृष्टीनामसंख्यभागा विशेषाधिकक्रमाः ॥ ३११ ॥

अर्थ—गुणश्रेणी प्रशस्त अप्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभागबंधका चढ़नेसे उतरनेमें विपरीतपना है । घटता बढ़ता क्रमलिये है । और कृष्टियोंका प्रथम समयमें पल्यके असंख्यातवें भाग है फिर उसके बाद द्वितीयादि समयोंमें विशेष अधिकका क्रम जानना ॥३११॥ इस तरह सूक्ष्मसांपरायका काल वितीत हुआ ।

बादरपढमे किट्टी मोहस्स य आणुपुव्विसंकमणं ।
णट्ठं ण च उच्छिट्ठं फड्डयलोहं तु वेदयदि ॥ ३१२ ॥

बादरप्रथमे कृष्टिः मोहस्य च आनुपूर्विसंक्रमणम् ।
नष्टं न च उच्छिष्टं स्पर्धकलोभं तु वेदयति ॥ ३१२ ॥

अर्थ—अवरोहक अनिवृत्तिकरणके प्रथमसमयमें सूक्ष्मकृष्टियां उच्छिष्टावलिमात्र निषेकके विना सभी स्वरूपसे नष्ट हुईं, मोहका आनुपूर्वी संक्रमण भी नष्ट होगया । अब उदयको प्राप्त हुए स्पर्धकरूप बादरलोभको भोगता है ॥ ३१२ ॥

ओदरबादरपढमे लोहस्संतोमुहुत्तियो बंधो ।
दुदिणंतो घादितिये चउवस्संतो अघादितिये ॥ ३१३ ॥

अवतरबादरप्रथमे लोभस्यांतर्मुहूर्तको बंधः ।
द्विदिनान्तो घातित्रिके चतुःवर्षान्तो अघातित्रये ॥ ३१३ ॥

अर्थ—उतरनेवाले बादरसांपराय अनिवृत्तिकरणके पहले समयमें संज्वलनलोभका स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्त है, तीन घातियाओंका कुछकम दो दिन है, नामगोत्रका कुछकम चार दिन और तीन अघातियाओंका संख्यातहजार वर्ष है ॥ ३१३ ॥

ओदरमायापढमे मायातिण्हं च लोभतिण्हं च ।
ओदरमायावेदगकालादहियो दु गुणसेढी ॥ ३१४ ॥

अवतरमायाप्रथमे मायात्रयाणां च लोभत्रयाणां च ।
अवतरमायावेदककालादधिकस्तु गुणश्रेणी ॥ ३१४ ॥

अर्थ—उतरनेवाला अनिवृत्तिकरण मायावेदक कालके प्रथमसमयमें अप्रत्याख्यानादि तीन मायाके द्रव्यको और तीनलोभके द्रव्यको अपकर्षणकर उदयावलिसे बाह्य साधिक मायावेदककालमात्र अवस्थित आयाममें गुणश्रेणी करता है । यहां संक्रमण होता है ॥ ३१४ ॥

ओदरमायापढमे मायालोभे दुमासठिदिबंधो ।
छण्हं पुण वस्साणं संखेज्जसहस्सवस्साणि ॥ ३१५ ॥

अवतरमायाप्रथमे मायालोभे द्विमासस्थितिबन्धः ।
षण्णां पुनः वर्षाणां संख्येयसहस्रवर्षाणि ॥ ३१५ ॥

अर्थ—उतरनेवाले माया वेदक कालके प्रथमसमयमें संज्वलन मायालोभका दो महीने तीन घातियाओंका संख्यातहजार वर्ष, तीन अघातियाओंका उससे भी संख्यातगुणा स्थितिबन्ध होता है । इसप्रकार संख्यातहजार स्थितिबन्ध होनेपर मायावेदककाल समाप्त हो जाता है ॥ ३१५ ॥

ओदरगमाणपढमे तेत्तियमाणादियाण पयडीणं ।
ओदरगमाणवेदगकालादहिओ दु गुणसेढी ॥ ३१६ ॥

अवतरकमानप्रथमे तावन्मानादिकानां प्रकृतीनाम् ।
अवतरकमानवेदककालादधिकस्तु गुणश्रेणी ॥ ३१६ ॥

अर्थ—उसके बाद मानवेदककालके प्रथमसमयमें संज्वलनमानके द्रव्यको अपकर्षणकर उदयावलिके प्रथमसमयसे लेकर और दो मान तीन माया तीनलोभोंके द्रव्यको अपकर्षणकर उदयावलिसे बाह्य प्रथमसमयसे लेकर आवलि अधिक माया वेदक कालप्रमाण अवस्थित आयाममें गुणश्रेणी करता है ॥ ३१६ ॥

ओदरगमाणपढमे चउमासा माणपहुदिठिदिबंधो ।
छण्हं पुण वस्साणं संखेज्जसहस्समेत्ताणि ॥ ३१७ ॥

अवतरकमानप्रथमे चतुर्मासा मानप्रभृतिस्थितिबंधः ।
षण्णां पुनः वर्षाणां संख्येयसहस्रमात्राणि ॥ ३१७ ॥

अर्थ—उसी उतरनेवाले मानवेदक कालके प्रथमसमयमें संज्वलनमानमायालोभोंका चार महीने, तीन घातियाओंका संख्यातहजार वर्ष, तीन अघातियाओंका उससे संख्यातगुणा

स्थितिबन्ध होता है । इसतरह संख्यातहजार स्थितिबन्ध होनेपर मानवेदककाल समाप्त हो-जाता है ॥ ३१७ ॥

ओदरगकोहपढमे छकम्मसमाणया हु गुणसेढी ।
बादरकसायाणं पुण एत्तो गलिदावसेसं तु ॥ ३१८ ॥

अवतरकक्रोधप्रथमे षट्कर्मसमानिका हि गुणश्रेणी ।
बादरकषायाणां पुनः इतः गलितावशेषं तु ॥ ३१८ ॥

अर्थ—उसके बाद उतरनेवाला अनिवृत्तिकरण है वह संज्वलनक्रोधके उदयके प्रथम-समयमें अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान संज्वलन क्रोध मान माया लोभरूप बारह कषायोंकी ज्ञाना-वरणादि छहकर्मोंके समान गलितावशेष गुणश्रेणी करता है ॥ ३१८ ॥

ओदरगकोहपढमे संजलणाणं तु अट्ठमासठिदी ।
छण्हं पुण वस्साणं संखेज्जसहस्सवस्साणि ॥ ३१९ ॥

अवतरकक्रोधप्रथमे संज्वलनानां तु अष्टमासस्थितिः ।
षण्णां पुनः वर्षाणां संख्येयसहस्रवर्षाणि ॥ ३१९ ॥

अर्थ—उतरनेवालेके क्रोधउदयके प्रथमसमयमें संज्वलन चार कषायोंका आठ महीने, तीनघातियाओंका संख्यातहजार वर्ष, उससे संख्यातगुणा नामगोत्रका, उससे डौढा वेद-नीयका स्थितिबन्ध होता है ॥ ३१९ ॥

ओदरगपुरिसपढमे सत्तकसाया पणट्ठउवसमणा ।
उणवीसकसायाणं छकम्माणं समाणगुणसेढी ॥ ३२० ॥

अवतरकपुरुषप्रथमे सप्तकषायाः प्रणष्टोपशमकाः ।
एकोनविंशकषायाणां षट्कर्मणां समानगुणश्रेणी ॥ ३२० ॥

अर्थ—संज्वलनक्रोधवेदककालमें पुरुषवेदके उदय होनेके प्रथमसमयमें पुरुषवेद, छह हास्यादि–ये सात कषाय हैं वे नष्ट उपशम करणवाले होजाते हैं तब ही बारहकषाय और सातनोकषाय–ऐसे उन्नीस कषायोंकी ज्ञानावरणादि छहकर्मोंके समान आयाममें गुणश्रेणी करता है ॥ ३२० ॥

पुंसंजलणिदराणं वस्सा बत्तीसयं तु चउसट्ठी ।
संखेज्जसहस्साणि य तक्काले होदि ठिदिबंधो ॥ ३२१ ॥

पुंसंज्वलनेतरेषां वर्षाणि द्वात्रिंशत् तु चतुःषष्टिः ।
संख्येयसहस्राणि च तत्काले भवति स्थितिबंधः ॥ ३२१ ॥

अर्थ—उतरनेवालेके पुरुषवेद उदयके प्रथमसमयमें पुरुषवेदका बत्तीसवर्ष, संज्वलनचा-

रका चौसठवर्ष, तीनघातियाओंका संख्यात हजार वर्ष, उससे संख्यातगुणा नामगोत्रका और उससे ड्यौढा वेदनीयका स्थितिबन्ध होता है ॥ ३२१ ॥

पुरिसे दु अणुवसंते इत्थी उवसंतगोत्ति अद्धाए ।
संखाभागासु गदेसंसखवस्सं अघादिठिदिबंधो ॥ ३२२ ॥

पुरुषे तु अनुपशांते स्त्री उपशांतका इति अद्धायाः ।
संख्यभागेपु गतेष्वसंख्यवर्षं अघातिस्थितिबंधः ॥ ३२२ ॥

अर्थ—पुरुषवेदके उदयकालमें स्त्रीवेदका जबतक उपशम कान रहे तब तकके कालके संख्यात बहुभाग वीतनेपर एकभाग शेष रहे अघातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यात हजार वर्षमात्र होता है ॥ ३२२ ॥

णवरि य णामदुगाणं वीसियपडिभागदो हवे बंधो ।
तीसियपडिभागेण य बंधो पुण वेयणीयस्स ॥ ३२३ ॥

नवरि च नामद्विकयोः वीसियप्रतिभागतो भवेत् बंधः ।
तीसियप्रतिभागेन च बंधः पुनः वेदनीयस्य ॥ ३२३ ॥

अर्थ—यहां इतना विशेष है कि नामगोत्रका पल्यके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिबन्ध है इतना वीसियोंका है । इसहिसावसे तीसिय वेदनीयका डेढगुणा पल्यके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिबन्ध है । और तीन घातियाओंका सख्यात हजार वर्षमात्र, उससे संख्यात-गुणा कम संख्यातहजार वर्षमात्र मोहनीयका स्थितिबन्ध है ॥ ३२३ ॥

थी अणुवसमे पढमे वीसकसायाण होदि गुणसेढी ।
संढुवसमोत्ति मज्झे संखाभागेसु तीदेसु ॥ ३२४ ॥

स्त्री अनुशमे प्रथमे विंशकषायाणां भवति गुणश्रेणी ।
षंढोपशम इति मध्ये संख्यभागेष्वतीतेषु ॥ ३२४ ॥

अर्थ—उससे आगे अन्तर्मुहूर्तकाल वीतनेपर स्त्रीवेदका उपशम नष्ट होजाता है वहांसे लेकर प्रथमसमयमें स्त्रीवेद और पहले कहे हुए उन्नीस कषाय—इसतरह वीस कषायोंकी गुणश्रेणी होती है । उसीकालमें जबतक नपुंसकवेदका उपशम है तबतकके कालके संख्यात बहुभाग वीतनेपर ॥ ३२४ ॥

घादितियाणं णियमा असंखवस्सं तु होदि ठिदिबंधो ।
तक्काले दुट्ठाणं रसबंधो ताण देसघादीणं ॥ ३२५ ॥

घातित्रयाणां नियमात् असंख्यवर्षस्तु भवति स्थितिबंधः ।
तत्काले द्विस्थानं रसबंधः तेषां देशघातिनाम् ॥ ३२५ ॥

अर्थ—तीन घातियाओंका पल्यके असंख्यातवें भागमात्र, इससे असंख्यातगुणा नाम-गोत्रका, उससे ड्यौढा वेदनीयका और मोहका संख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिबन्ध होता है। उसी अवसरमें चार ज्ञानावरण तीन दर्शनावरण और पांच अन्तराय–इन देशघातियाओंका लता और दारु समान दो स्थानगत अनुभागबंध होता है ॥ ३२५ ॥

संढणुवसमे पढमे मोहिगिवीसाण होदि गुणसेढी ।
अंतरकदोति मज्झे संखाभागासु तीदासु ॥ ३२६ ॥

षंढानुपशमे प्रथमे मोहैकविंशानां भवति गुणश्रेणी ।
अंतरकृत इति मध्ये संख्यभागेष्वतीतेषु ॥ ३२६ ॥

अर्थ—नपुंसकवेदका उपशम नष्ट होनेपर उसके प्रथमसमयमें नपुंसकवेद और पहली बीस–इसतरह मोहकी इकीस प्रकृतियोंकी गुणश्रेणी होती है। और अन्तरकरण करे उसके बीचमें अन्तर्मुहूर्तकाल है उसके संख्यात बहुभाग बीतनेपर ॥ ३२६ ॥

मोहस्स असंखेज्जा वस्सपमाणा हवेज्ज ठिदिबंधो ।
ताहे तस्स य जादं बंधं उदयं च दुट्ठाणं ॥ ३२७ ॥

मोहस्य असंख्येयानि वर्षप्रमाणानि भवेत् स्थितिबंधः ।
तस्मिन् तस्य च जातो बंध उदयश्च द्विस्थानम् ॥ ३२७ ॥

अर्थ—मोहनीयका असंख्यातवर्ष, तीन घातियाओंका उससे असंख्यातगुणा, नामगो-त्रका उससे असंख्यातगुणा और वेदनीयका उससे अधिक स्थितिबन्ध होता है। उसी अवसरमें मोहनीयके लता दारुरूप दो स्थानगत बन्ध और उदय होते हैं ॥ ३२७ ॥

लोहस्स असंकमणं छावलितीदेसु दीरणत्तं च ।
णियमेण पडंताणं मोहस्सणुपुव्विसंकमणं ॥ ३२८ ॥

लोभस्य असंक्रमणं षडावल्यतीतेषूदीरणत्वं च ।
नियमेन पततां मोहस्यानुपूर्विसंक्रमणम् ॥ ३२८ ॥

अर्थ—उतरनेवालेके सूक्ष्मसांपरायके प्रथमसमयसे लेकर जो कर्मबन्धे हुए थे उनकी छह आवलि बीत जानेपर उदीरणा होनेका नियम था उसको छोड़ अब बन्धावली बीत जानेपर ही उदीरणा की जाती है। और उतरनेवालेके मोहकी सब प्रकृतियोंका आनुपूर्वीसंक्रमका नियम था वह नष्ट हुआ ॥ ३२८ ॥

विवरीयं पडिहण्णदि विरियादीणं च देसघादित्तं ।
तह य असंखेज्जाणं उदीरणा समयपबद्धाणं ॥ ३२९ ॥

विपरीतं प्रतिहन्यते वीर्यादीनां च देशघातित्वम् ।
तथा च असंख्येयानामुदीरणा समयप्रबद्धानाम् ॥ ३२९ ॥

अर्थ—इसतरह वीर्यांतराय आदिका देशघातीबन्ध होता था वह उलटा सर्वघातीरूप अनुभागबंध होनेलगा । उसके बाद हजारों स्थितिबन्ध होनेपर असंख्यात समयप्रबद्धकी उदीरणा होनेका अभाव हुआ ॥ ३२९ ॥

लोयाणमसंखेज्जं समयपबद्धस्स होदि पडिभागो ।
तत्तियमेत्तद्दव्वस्सुदीरणा वट्टदे तत्तो ॥ ३३० ॥

लोकानामसंख्येयं समयप्रबद्धस्य भवति प्रतिभागः ।
तावन्मात्रद्रव्यस्योदीरणा वर्तते ततः ॥ ३३० ॥

अर्थ—अब असंख्यातलोकका भागहार समयप्रबद्धको हुआ इसलिये असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणाका नाश होकर अब एक समयप्रबद्धके असंख्यातवें भागमात्र द्रव्यकी उदीरणा होनेलगी ॥ ३३० ॥

तक्काले मोहणियं तीसीयं वीसियं च वेयणियं ।
मोहं वीसिय तीसिय वेयणिय कमं हवे तत्तो ॥ ३३१ ॥

तत्काले मोहनीयं तीसियं वीसियं च वेदनीयम् ।
मोहं वीसियं तीसियं वेदनीयं क्रमं भवेत् ततः ॥ ३३१ ॥

अर्थ—उस असंख्यात लोकमात्र भागहार संभव होनेके समयमें मोहका सबसे थोड़ा पल्यका असंख्यातवां भागमात्र, उससे असंख्यातगुणा तीन घातियाओंका, उससे असंख्यातगुणा नामगोत्रका, उससे साधिक वेदनीयका स्थितिबन्ध होता है । उससे परे संख्यातहजार स्थितिबन्ध जानेपर मोहका थोड़ा पल्यके असंख्यातवें भागमात्र, उससे असंख्यातगुणा नामगोत्रका, उससे विशेष अधिक तीन घातियाओंका, उससे विशेष अधिक वेदनीयका स्थितिबन्ध होता है ॥ ३३१ ॥

मोहं वीसिय तीसिय तो वीसिय मोहतीसयाण कमं ।
वीसिय तीसिय मोहं अप्पाबहुगं तु अविरुद्धं ॥ ३३२ ॥

मोहं वीसियं तीसियं ततो वीसियं मोहतीसियानां क्रमं ।
वीसियं तीसियं मोहं अल्पबहुकं तु अविरुद्धम् ॥ ३३२ ॥

अर्थ—उसके बाद संख्यातहजार स्थितिबन्ध जानेपर सबसे थोड़ा मोहका उससे असंख्यातगुणा नामगोत्रका उससे विशेष अधिक तीन घातिया और वेदनीयका स्थितिबन्ध होता है । उसके बाद संख्यातहजार स्थितिबन्ध जानेपर सबसे थोड़ा नामगोत्रका पल्यके असंख्यातवें भागमात्र उससे विशेष अधिक मोहका उससे विशेष अधिक तीन घातिया और वेदनीयका स्थितिबन्ध होता है । उसके बाद संख्यातहजार स्थितिबन्ध बीतनेपर

मोहा नामगोत्रका, उससे विशेष अधिक तीन घातिया और वेदनीयका उससे तीसरा भाग अधिक मोहका स्थितिबन्ध होता है ॥ ३३२ ॥

कमकरणविणट्ठादो उवरिट्ठिदा विसेसअहियाओ ।
सव्वासिं तण्णट्ठे हेट्ठा सव्वासु अहियकमं ॥ ३३३ ॥

क्रमकरणविनाशात् उपरि स्थिता विशेषाधिकाः ।
सर्वासां तन्नाशायां अधस्तना सर्वासु अधिकक्रमं ॥ ३३३ ॥

अर्थ—क्रमकरण विनाशकालसे ऊपर अर्थात् उस कालके अन्तमें पल्यका असंख्यातवां भागमात्र स्थितिबन्ध होनेके बाद उत्तरकालमें सब कर्मोंके स्थितिबन्धोंमें पूर्वस्थितिबन्धसे उत्तर स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। और उस क्रमकरणकालकी आदिमें असंख्यातवर्षमात्र स्थितिबन्धसे पहले संख्यातहजार वर्षप्रमाण स्थितिबन्धपर्यंत आयु विना सात कर्मोंका स्थितिबन्ध होता है वह भी पूर्वस्थितिबन्धसे आगेका स्थितिबन्ध अधिकक्रम लिये होता है ॥ ३३३ ॥

जत्तोपाये होदि हु असंखवस्सप्पमाणठिदिबंधो ।
तत्तोपाये अण्णं ठिदिबंधमसंखगुणियकमं ॥ ३३४ ॥

यदुत्पादे भवति हि असंख्यवर्षप्रमानस्थितिबंधः ।
तदुपायेन अन्यं स्थितिबंधमसंख्यगुणितक्रमम् ॥ ३३४ ॥

अर्थ—जहांसे लेकर नाम गोत्रादिकोंका असंख्यातवर्षमात्र स्थितिबन्धका प्रारंभ हुआ वहांसे लेकर जो पहला पहला स्थितिबन्ध है उससे पिछला पिछला अन्य स्थितिबन्ध हुआ वह असंख्यातगुणा है ऐसा क्रम जानना ॥ ३३४ ॥

एवं पल्लासंखं संखं भागं च होइ बंधेण ।
एत्तोपाये अण्णं ठिदिबंधो संखगुणियकमं ॥ ३३५ ॥

एवं पल्यासंख्यं संख्यं भागं च भवति बंधेन ।
एतदुपायेन अन्यः स्थितिबंधः संख्यगुणितक्रमः ॥ ३३५ ॥

अर्थ—इसतरह यथासम्भव हीन अधिक प्रमाण लिये पल्यका असंख्यातवां भागमात्र स्थितिबन्ध बढता क्रम लिये है वहां सबके पीछे एक कालमें सातोंकर्मोंका स्थितिबन्ध पल्यके असंख्यातवें भागमात्र ही कहा है। उनके बाद अन्यस्थितिबन्ध होता है वह सातोंकर्मोंका संख्यातगुणा ही है ॥ ३३५ ॥

मोहस्स य ठिदिबंधो पल्ले जादे तदा दु परिवड्ढी ।
पल्लस्स संखभागं इगिविगलासण्णिबंधसमं ॥ ३३६ ॥

मोहस्य च स्थितिबंधः पल्ये जाते तदा तु परिवृद्धिः ।
पल्यस्य संख्यभागं एकत्रिकलासंज्ञिबंधगमम् ॥ ३३६ ॥

अर्थ—जब मोहका स्थितिबन्ध पल्यमात्र होजावे तब आगेके स्थितिबन्धमें वृद्धि होती है। एक एक स्थितिबन्धोत्सरणमें पल्यका संख्यातवां भागमात्र स्थिति बढ़ती है। इसतरह मत्येक संख्यात हजार स्थितिबन्ध होके क्रमसे एकेंद्री दो इंद्री तेइंद्री चौइंद्री और असैनी पचेंद्रीके स्थितिबन्धके समान स्थितिबन्ध होता है ॥ ३३६ ॥

मोहस्स पल्लबंधे तीसदुगे तत्तिपादमद्धं च ।
दु ति चऊ सत्तभागा वीसतिये एयवियलठिदी ॥ ३३७ ॥

मोहस्य पल्यबंधे त्रिंशद्विके तत्रिपादमर्धं च ।
द्वि त्रि चतुः सप्त भागा वीसत्रिके एकविकलस्थितिः ॥ ३३७ ॥

अर्थ—जब मोहका स्थितिबन्ध पल्यमात्र हुआ तब तीसियाओंका पल्यका तीन चौथा-भागमात्र, वीसियाओंका आधापल्यमात्र स्थितिबन्ध होता है। जहां एकेंद्री समान बन्ध हुआ वहां मोहका सागरके चार सातभागमात्र, तीसियाओंका सागरके तीन सातवांभाग-मात्र वीसियाओंका सागरके दो सातवां भागमात्र स्थितिबन्ध जानना। और दो इंद्री ते-इंद्री चौइंद्री असंज्ञी समान जहां स्थितिबन्ध हुआ वहां क्रमसे एकेंद्री समान बन्धसे पची-सगुणा पचासगुणा सौगुणा हजारगुणा जानना ॥ ३३७ ॥

तत्तो अणियट्टिस्स य अंतं पत्तो हु तत्थ उदधीणं ।
लक्खपुधत्तं बंधो से काले पुव्वकरणो हु ॥ ३३८ ॥

तत अनिवृत्तेश्च अंतं प्राप्तो हि तत्र उदधीनाम् ।
लक्ष्यपृथक्त्वं बंधः स्वे काले अपूर्वकरणो हि ॥ ३३८ ॥

अर्थ—उसके बाद असंज्ञीसमान बन्धसे परे संख्यातहजार स्थितिबन्धोत्सरण होनेपर उतरनेवाला अनिवृत्तिकरणके अन्तसमयको प्राप्त होता है। वहां मोह वीसिय तीसियोंका क्रमसे पृथक्त्वलक्षसागरोंका चार सातवां भाग, तीन सातवां भाग और दो सातवां भाग-मात्र स्थितिबन्ध होता है। उसके बादके समयमें उतरनेवाला अपूर्वकरण होता है ॥ ३३८ ॥

उवसामणा णिधत्ती णिकाचणुग्घाडिदाणि तत्थेव ।
चदुतीसदुगाणं च य बंधो अद्धापवत्तो य ॥ ३३९ ॥

उपशामना निधत्तिः निकाचना उद्घाटितानि तत्रैव ।
चतुस्त्रिंशद्विकानां च च बंधो अधाप्रवृत्तं च ॥ ३३९ ॥

अर्थ—उसके प्रथमसमयसे लेकर अप्रशस्त उपशमकरण निधत्तिकरण और निकाचन-करण—इनको प्रगट करता है। और अपूर्वकरणकालके सातभागोंमेंसे पहले भागमें हास्या-

दि चारका दूसरे भागमें तीर्थंकरादि तीस प्रकृतियोंका छठे भागके अन्तसमयसे लेकर निद्रा प्रचलारूप दोका बंध होता है । उसके बादके समयमें उतरकर अप्रमत्तगुणस्थानमें अधःकरण परिणामको प्राप्त होता है ॥ ३३९ ॥

पढमो अधापवत्तो गुणसेढिमवट्ठिदं पुराणादो ।
संखगुणं तच्चंतोमुहुत्तमेत्तं करेदी हु ॥ ३४० ॥

प्रथमो अधाप्रवृत्तः गुणश्रेणिमवस्थितां पुराणात् ।
संख्यगुणं तच्च अंतर्मुहूर्तमात्रं करोति हि ॥ ३४० ॥

अर्थ—उसके प्रथमसमयमें उतरनेवाला अपूर्वकरणके अन्तसमयमें जितना द्रव्य अपकर्षण किया था उससे असंख्यातगुणा कम द्रव्यको अपकर्षणकर गुणश्रेणी करता है । जिसका सूक्ष्मसांपरायके प्रथमसमयमें आरंभ हुआ था ऐसे पुराने गुणश्रेणी आयामसे संख्यातगुणा है तौभी इसका अवस्थित आयाम अन्तर्मुहूर्त जानना ॥ ३४० ॥

ओदरसुहुमादीदो अपुव्वचरिमोत्ति गलिदसेसे व ।
गुणसेढी णिक्खेवो सट्ठाणे होदि तिट्ठाणं ॥ ३४१ ॥

अवतरसूक्ष्मादितो अपूर्वचरम इति गलितशेषो वा ।
गुणश्रेणी निक्षेपः स्वस्थाने भवति त्रिस्थानं ॥ ३४१ ॥

अर्थ—उतरनेवाले सूक्ष्मसांपरायके प्रथमसमयसे लेकर अपूर्वकरणके अन्तसमयतक ज्ञानावरणादिका गुणश्रेणी आयाम गलितावशेष है अवस्थित नहीं है । क्योंकि तीन स्थानोंमें बढकर अवस्थित गुणश्रेणी आयाम होता है ॥ ३४१ ॥

सट्ठाणे तावदियं संखगुणूणं तु उवरि चडमाणे ।
विरदाविरदाहिमुहे संखेज्जगुणं तदो तिविहं ॥ ३४२ ॥

स्वस्थाने तावत्कं संख्यगुणोनं तु उपरि चटमाने ।
विरताविरताभिमुखे संख्येयगुणं ततः त्रिविधं ॥ ३४२ ॥

अर्थ—स्वस्थान संयत होनेमें वृद्धि हानि रहित अवस्थित गुणश्रेणी आयाम करता है । वही जीव विरताविरतरूप पांचवें गुणस्थानके सन्मुख होवे तो संक्लेशताकर पूर्वगुणश्रेणी आयामसे संख्यातगुणा बढता गुणश्रेणी आयाम करता है । और पलटकर उपशम वा क्षपकश्रेणी चढनेके सन्मुख होवे तो विशुद्धपनेकर उन गुणश्रेणी आयामसे संख्यातगुणा घटता गुणश्रेणी आयाम करता है । इसप्रकार स्वस्थानसंयमीके गुणश्रेणीको वृद्धि हानि अवस्थितरूप तीन स्थान कहे हैं । ३४२ ॥

करणे अधापवत्ते अधापवत्तो दु संकमो जादो ।
विज्झादमबंधाणं णट्ठो गुणसंकमो तत्थ ॥ ३४३ ॥

करणे अधःप्रवृत्ते अधःप्रवृत्तस्तु संक्रमो जातः ।
विध्यातमबंधने नष्टो गुणसंक्रमस्तत्र ॥ ३४३ ॥

अर्थ—उतरनेवाले अधःप्रवृत्तकरणमें जिन प्रकृतियोंका बंध पायाजाता है उनका तो अधःप्रवृत्त संक्रम होगया और जिनका बन्ध नहीं पायाजावे उनके विध्यात संक्रम होता है । गुणसंक्रमका नाश ही होजाता है ॥ ३४३ ॥

घडणोदरकालादो पुव्वादो पुव्वगोत्ति संखगुणं ।
कालं अधापवत्तं पालदि सो उवसमं सम्मं ॥ ३४४ ॥

घटनान्तरकालतो अपूर्वात् अपूर्वक इति संख्यगुणं ।
कालं अधःप्रवृत्तं पालयति स उपशमं सम्यम् ॥ ३४४ ॥

अर्थ—द्वितीयोपशम सम्यक्त्वसहित जीव चढते अपूर्वकरणके प्रथमसमयसे लेकर उतरते अपूर्वकरणके अन्तसमयतक जितना काल हुआ उससे संख्यातगुणा ऐसा अन्तर्मुहूर्तमात्र द्वितीयोपशमसम्यक्त्वका काल है इसकालतक अधःप्रवृत्त करण सहित इस द्वितीयोपशम सम्यक्त्वको पलता है ॥ ३४४ ॥

तस्सम्मत्तद्धाए असंजमं देससंजमं वापि ।
गच्छेज्जावलिछक्के सेसे सासणगुणं वापि ॥ ३४५ ॥

तत्सम्यक्त्वाद्धायां असंयमं देशसंयमं वापि ।
गच्छेदावलिषट्के शेषे सासनगुणं वापि ॥ ३४५ ॥

अर्थ—उसी द्वितीयोपशम सम्यक्त्वके कालमें अधःप्रवृत्तकरण कालको समाप्त कर अप्रत्याख्यानके उदयसे असंयमको प्राप्त होता है, अथवा प्रत्याख्यानके उदयसे देशसंयत गुणस्थानको प्राप्त होता है अथवा वहां अवशेषकालके छह आवलि शेष रहनेपर अनन्तानुबन्धी क्रोधादिमें किसी एकके उदयसे सासादन गुणस्थानको भी प्राप्त होता है ॥३४५॥

जदि मरदि सासणो सो णिरयतिरक्खं णरं ण गच्छेदि ।
णियमा देवं गच्छदि जइवसहमुणिंदवयणेण ॥ ३४६ ॥

यदि म्रियते सासनः स निरयतिर्यञ्चं नरं न गच्छति ।
नियमात् देवं गच्छति यतिवृषभमुनीन्द्रवचनेन ॥ ३४६ ॥

अर्थ—उपशमश्रेणीसे उतरा हुआ सासादन जीव जो आयुनाश होनेसे मरे तो नारक तिर्यंच और मनुष्यगतिको नहीं प्राप्त होता लेकिन देवगतिमें नियमसे जाता है ऐसा कषाय प्राभृतनामा दूसरे सिद्धान्तशास्त्रमें यतिवृषभनामा आचार्यने कहा है ॥ ३४६ ॥

णरयतिरिक्खणराउगसत्तो सक्को ण मोहमुवसमिदुं ।
तम्हा तिसुवि गदीसु ण तस्स उप्पज्जणं होदि ॥ ३४७ ॥

नरकतिर्यग्नरायुष्कसत्त्वः शक्यो न मोहमुपशमयितुम्।
तस्मात् त्रिष्वपि गतिषु न तस्य उत्पादो भवति ॥ ३४७ ॥

अर्थ—नारक तिर्यंच मनुष्य आयुके सत्त्व सहित जीव चारित्रमोहके उपशमानेको समर्थ नहीं है इसलिये उपशम श्रेणीसे उतरे सासादनके देवगतिके विना अन्य तीन गतियोंमें उपजना नहीं होता। पहले जिसके आयु बंधा हो उसी सासादनका मरण होता है अबद्धायुका नहीं होता ॥ ३४७ ॥

उवसमसेढीदो पुण ओदिण्णो सासणं ण पापुणदि।
भूदबलिणाहणिम्मलसुत्तस्स फुडोवदेसेण ॥ ३४८ ॥

उपशमश्रेणीतः पुनरवतीर्णः सासनं न प्राप्नोति।
भूतबलिनाथनिर्मलसूत्रस्य स्फुटोपदेशेन ॥ ३४८ ॥

अर्थ—उपशमश्रेणीसे उतरा हुआ जीव सासादनको नहीं प्राप्त होता क्योंकि पूर्व अनन्तानुबन्धीका विसंयोजनकर उपशमश्रेणी चढा है इसलिये उसके अनन्तानुबन्धीका उदय नहीं संभव होता। इसप्रकार भूतबलि मुनिनाथके कहे हुए महाकर्मप्रकृति प्राभृत नामा पहले धवल शास्त्रमें पूर्वापर विरोधरहित निर्मल प्रगट उपदेश है। उसीसे हमने भी निश्चय किया है ॥ ३४८ ॥

आगे उपशमश्रेणी चढनेवाले बारहप्रकारके जीव हैं उनकी क्रियामें विशेषता कहते हैं;—

पुंकोधोदयचलियस्सेसाह परूवणा हु पुंमाणे।
मायालोभे चलिदस्सत्थि विसेसं तु पत्तेयं ॥ ३४९ ॥

पुंक्रोधोदयचटितस्य शेषा अथ प्ररूपणा हि पुंमाने।
मायालोभे चटितस्यास्ति विशेषं तु प्रत्येकम् ॥ ३४९ ॥

अर्थ—पूर्वं कहीं सर्व प्ररूपणा वे पुरुषवेद और क्रोधकषाय सहित उपशम श्रेणी चढनेवाले जीवकी कहीं हैं और पुरुषवेद संज्वलन मान व माया व लोभसहित उपशमश्रेणी चढनेवालोंके क्रियाविशेष है। वही आगे कहते हैं ॥ ३४९ ॥

दोण्हं तिण्ह चउण्हं कोहादीणं तु पढमठिदिमित्तं।
माणस्स य मायाए बादरलोहस्स पढमठिदी ॥ ३५० ॥

द्वयोः त्रयाणां चतुर्णां क्रोधादीनां तु प्रथमस्थितिमात्रम्।
मानस्य च मायाया बादरलोभस्य प्रथमस्थितिः ॥ ३५० ॥

अर्थ—क्रोधके उदयसहित श्रेणी चढनेवालेके क्रमसे चारों कषायोंका उदय होता है, मानसहित चढनेवालेके क्रोधके विना तीनका ही उदय है, मायासहित चढनेवालेके माया

लोभ—इन दोनोंका उदय है, लोभसहित चढनेवालेके केवल लोभका ही उदय होता है इसलिये पूर्वोक्तप्रकार प्रथमस्थिति कही है। और चारोंमें किसी कषायके उदयसहित चढे सब जीवोंके सूक्ष्मलोभकी प्रथमस्थिति समान है उनके नपुंसक स्त्रीवेद सातनोकषायोंका उपशमनकाल समान है ॥ ३५० ॥

जस्सुदयेणारूढो सेढिं तस्सेव ठविदि पढमठिदी ।
सेसाणावलिमेत्तं मोत्तूण करेदि अंतरं णियमा ॥ ३५१ ॥

यस्योदयेनारूढो श्रेणिं तस्यैव स्थापयति प्रथमस्थितिः ।
शेषाणामावलिमात्रं मुक्त्वा करोति अंतरं नियमात् ॥ ३५१ ॥

अर्थ—जिस वेद या कषायके उदयकर जीव श्रेणी चढा हो उसकी अन्तर्मुहूर्तमात्र प्रथमस्थिति स्थापन करता है और उदयरहित वेद या कषायोंकी आवलिमात्र स्थितिको छोड़ उसके ऊपरके निषेकोंका अन्तर करता है ॥ ३५१ ॥

जस्सुदएणारूढो सेढिं तक्कालपरिसमत्तीए ।
पढमट्ठिदिं करेदि हु अणंतरुवरुदयमोहस्स ॥ ३५२ ॥

यस्योदयेनारूढः श्रेणिं तत्कालपरिसमाप्तौ ।
प्रथमस्थितिं करोति हि अनंतरोपर्युदयमोहस्य ॥ ३५२ ॥

अर्थ—जिस कषायके उदयसहितश्रेणी चढा है उस कषायकी प्रथमस्थिति समाप्त होनेपर उसके अनन्तरवर्ती कषायकी प्रथमस्थिति करता है। भावार्थ—क्रोधसहितश्रेणी चढे जीवके क्रोधकी प्रथमस्थितिका काल पूर्ण हुए बाद मानकी प्रथमस्थिति होती है इसीप्रकार आगे मायादिककी जानना। इसीतरह मान वगैर सहित चढे जीवमें जानना ॥ ३५२ ॥

माणोदएण चडिदो कोहं उवसमदि कोहअद्धाए ।
मायोदएण चडिदो कोहं माणं सगद्धाए ॥ ३५३ ॥

मानोदयेन चटितः क्रोधं उपशमयति क्रोधाद्धायाम् ।
मायोदयेन चटितः क्रोधं मानं स्वकाद्धायाम् ॥ ३५३ ॥

अर्थ—क्रोधके उदयकालमें ही मानके उदय सहित चढा जीव उदय रहित तीन क्रोधोंको उपशमाता है। उसीतरह मायाके उदय सहित चढा हुआ जीव उदय रहित तीन क्रोधोंको और तीन मानोंको अपने २ कालमें उपशमाता है ॥ ३५३ ॥

लोभोदएण चडिदो कोहं माणं च मायामुवसमदि ।
अप्पप्पण अद्धाणे ताणं पढमट्ठिदी णत्थि ॥ ३५४ ॥

लोभोदयेन चटितः क्रोधं मानं च मायामुपशाम्यति ।
आत्मात्मनो अध्वाने तेषां प्रथमस्थितिर्नास्ति ॥ ३५४ ॥

अर्थ—लोभके उदय सहित चढा जीव अपने २ कालमें उदय रहित तीन क्रोध तीन मान तीन मायाओंको क्रमसे उपशमाता है उन क्रोधादिकोंकी प्रथमस्थितीका अभाव है, क्योंकि लोभसहित चढे हुएके क्रोधादिका उदय नहीं पाया जाता ॥ ३५४ ॥

माणोदयचडपडिदो कोहोदयमाणमेत्तमाणुदओ।
माणतियाणं सेसे सेससमं कुणदि गुणसेढी ॥ ३५५ ॥

मानोदयचटपतितः क्रोधोदयमानमात्रमानोदयः।
मानत्रयाणां शेषे शेषसमं करोति गुणश्रेणी ॥ ३५५॥

अर्थ—मानके उदयसहित श्रेणी चढ पडा जो जीव उसके क्रोध मानका उदयकाल मिलाया हुआ जितना हो उतना मानका उदयकाल है। और मान माया लोभसहित चढकर पड़ा जीव क्रमसे मान माया लोभके द्रव्यको अपकर्षणकर ज्ञानावरणादिकोंकी गुणश्रेणी आयामके समान गलितावशेष आयामकर गुणश्रेणी आयाम करता है ॥ ३५५ ॥

माणादितियाणुदये चडपडिये सगसगुदयसंपत्ते।
णव छत्ति कसायाणं गलिदवसेसं करेदि गुणसेढिं ॥ ३५६ ॥

मानादित्रयाणामुदये चटपतिते स्वकस्वकोदयसंप्राप्ते।
नव षट् त्रिकषायाणां गलितावशेषं करोति गुणश्रेणिम् ॥ ३५६ ॥

अर्थ—मान माया लोभके उदयसहित चढके पड़ा हुआ जीव अपनी २ कषायके उदयको प्राप्त हुए क्रमसे नवकषायोंकी, छहकषायोंकी और तीन कषायोंकी पूर्वोक्त रीतिसे गलितावशेष आयामलिये गुणश्रेणी करता है ॥ ३५६ ॥

जस्सुदएण य चडिदो तम्हि य उक्कट्टियम्हि पडिऊण।
अंतरमाऊरेदि हु एवं पुरिसोदए चडिदो ॥ ३५७ ॥

यस्योदयेन च चटितः तस्मिंश्च अपकर्षिते पतित्वा।
अंतरमापूरयति हि एवं पुरुषोदये चटितः ॥ ३५७ ॥

अर्थ—जिस कषायके उदय सहित चढके पड़ा हो उसी कषायके द्रव्यका अपकर्षण होनेपर अन्तरको पूरता है अर्थात् नष्ट किये निषेकोंका सद्भाव करता है। इसीप्रकार पुरुषवेद सहित क्रोधादि युक्त श्रेणी चढने उतरनेका व्याख्यान जानना ॥ ३५७ ॥

थी उदयस्स य एवं अवगदवेदो हु सत्तकम्मंसे।
समयुवनामदि संढस्सुदए चडिदस्स वोच्छामि ॥ ३५८ ॥

स्त्री उदयस्य च [illegible] अपगतवेदो हि सप्तकर्मांशान्
[illegible] पण्ढोदये चटितस्य वक्ष्यामि ॥ ३५८ ॥

अर्थ—स्त्रीवेदयुक्त क्रोधादिकोंके उदय सहित श्रेणी चढे चार प्रकारके जीव हैं। वे वेद उदयरहित हुए पुरुषवेद और छह हास्यादि–इस तरह सात नोकषायोंको एकसाथ उपशमाते हैं। अब नपुंसकवेदके उदयसहित श्रेणी चढे हुएके विशेषता कहते हैं ॥ ३५८ ॥

संढुदयंतरकरणो संढद्धाणम्हि अणुवसंतेसे ।
इत्थिस्स य अद्धाए संढं इत्थिं च समगमुवसमदि ॥ ३५९ ॥

षंढोदयांतरकरणः षंढाद्धायां अनुपशांतांशे ।
स्त्रियः च अद्धायां षंढं स्त्रीं च समकमुपशमयति ॥ ३५९ ॥

अर्थ—वे चारप्रकारके जीव नपुंसकवेदका अन्तर करते हुए नपुंसक वेदके कालमें नपुंसकवेदका उपशम समाप्त न हुआ हो तबतक स्त्रीवेद नपुंसकवेद इनदोनोंका एकसाथ उपशम करता है। वहांपर पुरुषवेद सहित चढे जीवके स्त्रीवेदके उपशम करनेके कालको प्राप्त होकर ॥ ३५९ ॥

ताहे चरिमसवेदो अवगदवेदो हु सत्तकम्मंसे ।
सममुवसामदि सेसा पुरिसोदयचलिदभंगा हु ॥ ३६० ॥

तस्मिन् चरमसवेदो अपगतवेदो हि सप्तकर्मांशान् ।
सममुपशमयति शेषाः पुरुषोदयचलितभङ्गा हि ॥ ३६० ॥

अर्थ—सवेद अवस्थाके अन्तसमयको प्राप्त हुआ स्त्रीवेद नपुंसकवेदके उपशमको एकसाथ समाप्त करता है। उसके बाद अपगतवेदी हुआ पुरुषवेद छह हास्यादि कषाय–इन सातोंको युगपत् उपशमाता है। अन्य सब पुरुषवेद सहित श्रेणी चढे जीवके समान विधान जानना ॥ ३६० ॥

पुंकोहस्स य उदए चडपडिदे दुचडदो अपुव्वोत्ति ।
एदिम्मे अद्धाणं अप्पाबहुगं तु वोच्छामि ॥ ३६१ ॥

पुंक्रोधस्य च उदये चटपतितेऽपूर्वो अपूर्व इति ।
एतस्य अद्धानामल्पबहुत्वं तु वक्ष्यामि ॥ ३६१ ॥

अर्थ—पुरुषवेद और क्रोधकषायके उदय सहित चढकर पडे जीवके आरोहक अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर अवरोहक अपूर्वकरणके अन्तसमय पर्यंतकालमें संभवते अल्पबहुत्व स्थानोंको कहूंगा ॥ ३६१ ॥

अवरादो वरमहियं रसखंडुक्कीरणस्स अद्धाणं ।
संखगुणं अवरट्ठिदिखंडस्सुक्कीरणो कालो ॥ ३६२ ॥

अवरात् वरमधिकं रसखण्डोत्करणस्याद्धानम् ।
संख्यगुणं अवरस्थितिखण्डोत्करणः कालः ॥ ३६२ ॥

अर्थ—जघन्य अनुभागकांडकोत्करणकाल सबसे थोड़ा है उससे अधिक उत्कृष्ट अनुभागकांडकोत्करणकाल है। उससे संख्यातगुणा जघन्यस्थितिकांडकोत्करण काल है॥३६२॥

पडणजहण्णट्ठिदिबंधद्धा तह अंतरस्स करणद्धा।
जेट्ठट्ठिदिबंधठिदीउक्कीरद्धा य अहियकमा॥ ३६३॥

पतनजघन्यस्थितिबंधाद्धा तथा अंतरस्य करणाद्धा।
ज्येष्ठस्थितिबंधस्थित्युत्करणाद्धा च अधिकक्रमाः॥ ३६३॥

अर्थ—अवरोहक अनिवृत्तिकरणके प्रथमसमयमें संभव मोहका जघन्यस्थितिबंधापसरण काल विशेष अधिक है। उससे विशेष अधिक अन्तर करनेका काल है, उससे अधिक उत्कृष्टस्थितिबंधकाल है उससे अधिक उत्कृष्ट स्थितिकांडकोत्करणकाल है॥ ३६३॥

सुहमंतिमगुणसेढी उवसंतकसायगस्स गुणसेढी।
पडिवदसुहुमद्धावि य तिण्णिवि संखेज्जगुणिदकमा॥ ३६४॥

सूक्ष्मांतिमगुणश्रेणी उपशांतकषायकस्य गुणश्रेणी।
प्रतिपतत्सूक्ष्माद्धापि च तिस्रोपि संख्येयगुणितक्रमाः॥ ३६४॥

अर्थ—उससे संख्यातगुणा आरोहक सूक्ष्मसांपरायके अन्तसमयमें संभव ऐसा गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम है। उससे संख्यातगुणा उपशांतकषायके प्रथमसमयमें आरंभ किया गुणश्रेणी आयाम है। उससे संख्यातगुणा पड़नेवाला सूक्ष्मसांपरायका काल है॥ ३६४॥

तग्गुणसेढी अहिया पडसुहुमो किट्टिउवसमद्धा य।
सुहुमस्स य पढमठिदी तिण्णिवि सरिसा विसेसहिया॥ ३६५॥

तद्गुणश्रेणी अधिका पतत्सूक्ष्मः कृष्ट्युपशमाद्धा च।
सूक्ष्मस्य च प्रथमस्थितिः तिस्रोपि सदृशा विशेषाधिकाः ३६५॥

अर्थ—उससे पड़नेवाले सूक्ष्मसांपरायके लोभका गुणश्रेणी आयाम आवलिमात्र विशेषकर अधिक है, उससे सूक्ष्मकृष्टि उपशमानेका काल और सूक्ष्मसांपरायकी प्रथमस्थिति आयाम—ये तीनों आपसमें समान हैं तौभी अन्तर्मुहूर्तमात्र विशेषकर अधिक हैं॥ ३६५॥

किट्टीकरणद्धहिया पडबादर लोभवेदगद्धा हु।
संखगुणं तस्सेव तिलोहगुणसेढिणिक्खेवो॥ ३६६॥

कृष्टिकरणाद्धाधिका पतद्बादरलोभवेदकाद्धा हि।
संख्यगुणं तस्यैव त्रिलोभगुणश्रेणिनिक्षेपः॥ ३६६॥

अर्थ—उससे सूक्ष्मकृष्टि करनेका काल विशेष अधिक है १२। उससे पड़नेवाले

वादरसांपरायके बादरलोभवेदकका काल संख्यातगुणा है १३ ॥ उससे पड़नेवाले अनिवृत्तिकरणके तीनलोभकी गुणश्रेणीका आयाम आवलिमात्र अधिक है ॥ ३६६ ॥

पडबादरलोहस्स य वेदगकालो य तस्स पढमठिदी ।
पडलोहवेदगद्धा तस्सेव य लोहपढमठिदी ॥ ३६७ ॥

पटबादरलोभस्य च वेदककालश्च तस्य प्रथमस्थितिः ।
पतल्लोहवेदकाद्धा तस्यैव च लोभप्रथमस्थितिः ॥ ३६७ ॥

अर्थ—उससे आरोहक अनिवृत्तिकरणके बादरलोभका वेदककाल अन्तर्मुहूर्तकर अधिक है १५ । उससे बादरलोभकी प्रथमस्थितिका आयाम विशेष अधिक है १६ । उससे पड़नेवालेके बादरलोभका वेदककाल विशेष अधिक है १७ । उससे उतरनेवालेके लोभकी प्रथमस्थितिका आयाम आवलिमात्र अधिक १८ है ॥ ३६७ ॥

तम्मायावेदद्धा पडिवडछण्हंपि खित्तगुणसेढी ।
तम्माणवेदगद्धा तस्स णवण्हंपि गुणसेढी ॥ ३६८ ॥

तन्मायावेदकाद्धा प्रतिपतत्षण्णामपि क्षिप्तगुणश्रेणी ।
तन्मानवेदकाद्धा तस्य नवानामपि गुणश्रेणी ॥ ३६८ ॥

अर्थ—उससे पड़नेवालेके मायावेदककाल अन्तर्मुहूर्तकर अधिक है १९ । उससे पड़नेवाले माया वेदकके छह कषायोंका गुणश्रेणी आयाम आवलिकर अधिक है २० । उससे पड़नेवालेके मानवेदककाल अन्तर्मुहूर्तकर अधिक है २१ । उससे उसीके नौकषायोंका गुणश्रेणी आयाम आवलिकर अधिक २२ है ॥ ३६८ ॥

चडमायावेदद्धा पढमट्ठिदिमायउवसमद्धा य ।
चलमाणवेदगद्धा पढमट्ठिदिमाणउवसमद्धा य ॥ ३६९ ॥

चटमायावेदाद्धा प्रथमस्थितिमायोपशमाद्धा च ।
चटमानवेदकाद्धा प्रथमस्थितिमानोपशमाद्धा च ॥ ३६९ ॥

अर्थ—उससे चढनेवालेके मायावेदककाल अन्तर्मुहूर्तकर अधिक है २३ । उससे उसके मायाकी प्रथमस्थितिका आयाम उच्छिष्टावलिकर अधिक है २४ । उससे मायाके उपशमानेका काल समयकम आवलिमात्र अधिक है २५ । उससे चढनेवालेके मानवेदककाल अन्तर्मुहूर्तकर अधिक है २६ । उससे उसकी प्रथमस्थितिका आयाम आवलिमात्र अधिक है २७ । उससे उसके मान उपशमानेका काल समयकम आवलिमात्र अधिक २८ है ॥ ३६९ ॥

कोहोवसामणद्धा छप्पुरिसित्थीण उवसमाणं च ।
खुद्दभवगहणं च य अहियकमा एक्कवीसपदा ॥ ३७० ॥

चडपडणमोहपढमं चरिमं तु तहा तिघादयादीणं ।
संखेज्जवस्सबंधो संखेज्जगुणक्कमो छण्हं ॥ ३८१ ॥

चटपतनमोहप्रथमं चरमं तु तथा त्रिघातकादीनाम् ।
संख्येयवर्षबंधः संख्येयगुणक्रमः षण्णाम् ॥ ३८१ ॥

अर्थ—चढनेवालेके मोहनीयका प्रथमस्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । उससे उतरनेवालेके मोहका अन्तस्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । उससे चढनेवालेके तीन घातियाओंका प्रथमस्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । उससे उतरनेवालेके उनके अन्तका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । वह संख्यातहजार वर्षमात्र है ॥ ३८१ ॥

चडपडणमोहचरिमं पढमं तु तहा तिघादियादीणं ।
असंखेज्जवस्सबंधो संखेज्जगुणक्कमो छण्हं ॥ ३८२ ॥

चटपतनमोहचरमं प्रथमं तु तथा त्रिघातकादीनाम् ।
असंख्येयवर्षबंधः संख्येयगुणक्रमः षण्णाम् ॥ ३८२ ॥

अर्थ—उससे चढनेवालेके मोहनीयका असंख्यात वर्षमात्र अन्तस्थितिबन्ध है वह असंख्यातगुणा है । उससे उतरनेवालेके मोहका प्रथमस्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । उससे चढनेवालेके तीन घातियाओंका अन्तस्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । उससे उतरनेवालेके तीन घातियाओंका प्रथमस्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है वह पल्यका असंख्यातवां भागमात्र है ॥ ३८२ ॥

चडणे णामदुगाणं पढमो पलिदोवमस्स संखेज्जो ।
भागो ठिदिस्स बंधो हेट्ठिल्लादो असंखगुणो ॥ ३८३ ॥

चटने नामद्विकयोः प्रथमः पलितोपमस्यासंख्येयः ।
भागः स्थितेर्बंधो अधस्तनादसंख्यगुणः ॥ ३८३ ॥

अर्थ—उससे चढनेवालेके नामगोत्रका पहला स्थितिबन्ध पल्यके असंख्यातवें भागमात्र है वह नीचेके तीनघातियाओंके स्थितिबन्धसे असंख्यातगुणा है ॥ ३८३ ॥

तीसियचउण्ह पढमो पलिदोवमसंखभागठिदिबंधो ।
मोहस्सवि दोण्णि पदा विसेसअहियक्कमा होंति ॥ ३८४ ॥

तीसियचतुर्णां प्रथमः पलितोपमासंख्यभागस्थितिबंधः ।
मोहस्यापि द्वे पदे विशेषाधिकक्रमा भवंति ॥ ३८४ ॥

अर्थ—उससे चढनेवालेके तीसियचतुष्कका प्रथम स्थितिबन्ध विशेष अधिक है वह भी पल्यके असंख्यातवें भागमात्र है । उससे चढनेवालेके मोहका चालीसियस्थितिबन्ध उसीके त्रिभागमात्र विशेषकर अधिक है ॥ ३८४ ॥

ठिदिखंडयं तु चरिमं बंधोसरणट्ठिदी य पल्लद्धं ।
पल्लं चडपडबादरपढमो चरिमो य ठिदिबंधो ॥ ३८५ ॥

स्थितिखंडकं तु चरमं बंधापसरणस्थिती च पल्यार्धं ।
पल्यं चटपतद्बादरप्रथमः चरमश्च स्थितिबंधः ॥ ३८५ ॥

अर्थ—उससे अन्तका स्थितिखण्ड संख्यातगुणा है। उससे स्थितिबन्धापसरणोंकर उत्पन्न हुए पल्यके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिबन्ध वे सभी क्रमसे संख्यातगुणे हैं। उससे चढनेवालेके अनिवृत्तिकरणके प्रथमसमयमें सम्भव स्थितिबन्ध संख्यातगुणे हैं वे पृथक्त्वलक्षसागर प्रमाण हैं। उससे उतरनेवालेके अनिवृत्तिकरणके अन्तसमयमें सम्भव स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ॥ ३८५ ॥

चडपडअपुव्वपढमो चरिमो ठिदिबंधओ य पडणस्स ।
तच्चरिमं ठिदिसत्तं संखेज्जगुणकमा अट्ठ ॥ ३८६ ॥

चटपतदपूर्वप्रथमः चरमः स्थितिबंधकश्च पतनस्य ।
तच्चरमं स्थितिसत्त्वं संख्येयगुणक्रमं अष्ट ॥ ३८६ ॥

अर्थ—उससे चढनेवाले अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है वह अंतःकोटाकोटि सागर मात्र है। उससे पड़नेवाले अपूर्वकरणके अन्तसमयमें स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। उससे पड़नेवालेके अपूर्वकरणके अंतसमयमें स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है ॥ ३८६ ॥

तप्पढमट्ठिदिसंतं पडिवडअणियट्टिचरिमठिदिसत्तं ।
अहियकमा चडबादरपढमट्ठिदिसत्तयं तु संखगुणं ॥ ३८७ ॥

तत्प्रथमस्थितिसत्त्वं प्रतिपतदनिवृत्तिचरमस्थितिसत्त्वं ।
अधिकक्रमं चटबादरप्रथमस्थितिसत्त्वकं तु संख्यगुणम् ॥ ३८७ ॥

अर्थ—उससे पड़नेवालेके अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें स्थितिसत्त्व विशेष अधिक है। उससे पड़नेवाले अनिवृत्ति करणके अंतसमयमें स्थितिसत्त्व एक समयकर अधिक है। उससे चढनेवाले अनिवृत्तिकरणके प्रथमसमयमें स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है क्योंकि इसके अब भी अनिवृत्तिकरणके परिणामोंसे स्थितिसत्त्वका खंडन सम्भवता है ॥ ३८७ ॥

चडमाणअपुव्वस्स य चरिमट्ठिदिसत्तयं विसेसहियं ।
तस्सेव य पढमट्ठिदिसत्तं संखेज्जसंगुणियं ॥ ३८८ ॥

चटदपूर्वस्य च चरमस्थितिसत्त्वं विशेषाधिकम्

८८ ॥

आदिमकरणद्धाए पढमट्ठिदिबंधदो दु चरिमम्हि।
संखेज्जगुणविहीणो ठिदिबंधो होदि णियमेण ॥ ३९३ ॥
आदिकरणाद्धायां प्रथमस्थितिबंधतस्तु चरमे।
संख्येयगुणविहीनः स्थितिबंधो भवति नियमेन ॥ ३९३ ॥

अर्थ—इसतरह स्थितिबन्धापसरण होनेसे पहले अधःप्रवृत्तकरण कालमें प्रथमसमयके स्थितिबन्धसे संख्यातगुणा कम अन्तसमयमें स्थितिबन्ध नियमसे होता है ॥ ३९३ ॥ इसतरह इस अधःकरणमें आवश्यक होते हैं। जिस जगह अन्य जीवके नीचेके समयवर्ती भावोंके समान अन्यजीवके ऊपर समयवर्ती भाव हों वह अधःप्रवृत्तकरण ऐसा सार्थक नाम है जानना।

आगे अपूर्वकरणका वर्णन करते हैं;—

गुणसेढी गुणसंकम ठिदिखंडमसत्थगाण रसखंडं।
विदियकरणादिसमए अण्णं ठिदिबंधमारवई ॥ ३९४ ॥
गुणश्रेणी गुणसंक्रमं स्थितिखंडमशस्तानां रसखंडम्।
द्वितीयकरणादिसमये अन्यं स्थितिबंधमारभते ॥ ३९४ ॥

अर्थ—दूसरे अपूर्वकरणके पहलेसमयमें गुणश्रेणी गुणसंक्रम स्थितिखण्डन और अप्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभागखण्डन होता है। और अधःकरणके अन्तसमयमें जो स्थितिबंध होता था उससे पल्यका असंख्यातवां भाग घटता अन्य ही स्थितिबन्ध आरंभ करता है। इसलिये यहां एक स्थितिबन्धापसरण होनेसे इतना स्थितिबन्ध घटाते हैं ॥ ३९४ ॥

गुणसेढीदीहत्तं अपुव्वचउक्कादु साहियं होदि।
गलिदवसेसे उदयावलिबाहिरदो दु णिक्खेओ ॥ ३९५ ॥
गुणश्रेणीदीर्घत्वं अपूर्वचतुष्कात् साधिकं भवति।
गलितावशेषे उदयावलिबाह्यतस्तु निक्षेपः ॥ ३९५ ॥

अर्थ—गलितावशेष गुणश्रेणी आयामका प्रमाण अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसांपराय क्षीणकषाय—इन चार गुणस्थानोंके मिलाये हुए कालसे साधिक है। वह अधिकका प्रमाण क्षीणकषायके कालके संख्यातवें भागमात्र है। वह उदयावलिसे बाह्य गलितावशेषरूप गुणश्रेणी आयाममें अपकर्षण किये द्रव्यका निक्षेपण होता है ॥ ३९५ ॥

पडिसमयं उक्कट्टदि असंखगुणिदक्कमेण संचदि य।
इदि गुणसेढीकरणं पडिसमयमपुव्वपढमादो ॥ ३९६ ॥
प्रतिसमयं अपकर्षति असंख्यगुणितक्रमेण संचिनोति च।
इति गुणश्रेणीकरणं प्रतिसमयमपूर्वप्रथमात् ॥ ३९६ ॥

अर्थ—प्रथमसमयमें अपकर्षण किये द्रव्यसे द्वितीयादि समयोंमें असंख्यातगुणा क्रम-लिये समय समय प्रति द्रव्यको अपकर्षण करता है। और उदयावलिमें गुणश्रेणी आयामें उपरकी स्थितिमें निक्षेपण करता है। इसतरह अपूर्वकरणके प्रथमसमयसे लेकर समय समय प्रति गुणश्रेणीका करना है। यह गुणश्रेणीका स्वरूप कहा ॥ ३९६ ॥

पडिसमयमसंखगुणं दव्वं संकमदि अप्पसत्थाणं।
बंधुज्झियपयडीणं बंधंतसजादिपयडीसु ॥ ३९७ ॥

प्रतिसमयमसंख्यगुणं द्रव्यं संक्रामति अप्रशस्तानाम्।
बंधोज्झितप्रकृतीनां बध्यमानस्वजातिप्रकृतिषु ॥ ३९७ ॥

अर्थ—अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर जिनका यहां बन्ध नहीं पाया जाता ऐसी अप्रशस्तप्रकृतियोंका गुणसंक्रमण होता है वह समय समय प्रति असंख्यातगुणा क्रमलिये उन प्रकृतियोंका द्रव्य है वह बंध होनेवाली स्वजातिप्रकृतियोंमें संक्रमण करता है उसरूप परिणमता है। जैसे असातावेदनीका द्रव्य सातावेदनीयरूप होके परिणमता है। इसीतरह अन्य प्रकृतियोंका भी जानना ॥ ३९७ ॥

उक्कट्टणा जहण्णा आवलियाऊणिया तिभागेण।
एसा ठिदिसु जहण्णा तहाणुभागे सणंतेसु ॥ ३९८ ॥

अतिस्थापना जघन्या आवलिकोनिका त्रिभागेन।
एषा स्थितिषु जघन्या तथानुभागेष्वनंतेषु ॥ ३९८ ॥

अर्थ—संक्रमणमें जघन्य अतिस्थापन अपने त्रिभागकर कमती आवलिमात्र है यही जघन्यस्थिति है। इसीतरह अनन्त अनुभागोंमें भी जानना ॥ ३९८ ॥

संकामे दुक्कट्टदि जे अंसे ते अवट्ठिदा होंति।
आवलियं से काले तेण परं होंति भजियव्वा ॥ ३९९॥

संक्रामे तु उत्कृष्यंते ये अंशास्ते अवस्थिता भवंति।
आवलिकां स्वे काले तेन परं भवंति भजितव्याः ॥ ३९९ ॥

अर्थ—संक्रमणमें जो प्रकृतियोंके परमाणू उत्कर्षणरूप किये जाते हैं वे अपने कालमें आवलिपर्यंत तो अवस्थित ही रहते हैं उससे परे भजनीय हैं अर्थात् अवस्थित भी रहते हैं और स्थिति आदिकी वृद्धि हानिआदिरूप भी रहते हैं ॥ ३९९ ॥

उक्कट्टदि जे अंसे से काले ते च होंति भजियव्वा।
वड्ढीए अवट्ठाणे हाणीए संकमे उदए ॥ ४०० ॥

उत्कृष्यंते ये अंशाः स्वे काले ते च भवंति भजितव्याः।
वृद्धौ अवस्थाने हानौ संक्रमे उदये ॥ ४०० ॥

अर्थ—जो प्रकृतियोंके परमाणू अपकर्षण किये जाते हैं वे अपने कालमें भजनीय हैं। स्थित्यादिकी वृद्धि अवस्थान हानि संक्रमण और उदय इनरूप होवें भी और नहीं भी हों कुछ नियम नहीं है ॥ ४०० ॥

एक्कं च ठिदिविसेसं तु असंखेज्जेसु ठिदिविसेसेसु ।
वड्ढेदि रहस्सेदि व तहाणुभागेसुणंतेसु ॥ ४०१ ॥

एकं च स्थितिविशेषं तु असंख्येयेषु स्थितिविशेषेषु ।
वर्धते ह्रस्वते वा तथानुभागेष्वनंतेषु ॥ ४०१ ॥

अर्थ—एक स्थितिविशेष जो एक निषेकका द्रव्य वह असंख्यात निषेकोंमें निक्षेपण किया जाता है। उसीतरह अनंत अनुभागोंमें भी एक स्पर्धकका द्रव्य अनंत स्पर्धकोंमें निक्षेपण किया जाता है ऐसा जानना ॥ ४०१ ॥ इस तरह गुणसंक्रमणका स्वरूप कहा।

पल्लस्स संखभागं वरं पि अवराडु संखगुणिदं तु ।
पढमे अपुव्विखवगे ठिदिखंडपमाणयं होदि ॥ ४०२ ॥

पल्यस्य संख्यभागं वरमपि अवरात् संख्यगुणितं तु ।
प्रथमे अपूर्वक्षपके स्थितिखंडप्रमाणकं भवति ॥ ४०२ ॥

अर्थ—क्षपक अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें स्थितिकांडक आयामका जघन्य और उत्कृष्ट प्रमाण पल्यके संख्यातवें भागमात्र है तो भी जघन्यसे उत्कृष्ट संख्यातगुणा है ॥ ४०२ ॥

आउगवज्जाणं ठिदिघादो पढमादु चरिमठिदिसंतो ।
ठिदिबंधो य अपुव्वे होदि हु संखेज्जगुणहीणो ॥ ४०३ ॥

आयुष्कवर्ज्यानां स्थितिघातः प्रथमात् चरमस्थितिसत्त्वम् ।
स्थितिबंधश्च अपूर्वे भवति हि संख्येयगुणहीनः ॥ ४०३ ॥

अर्थ—आयुके विना सातकर्मोंका स्थितिकांडक आयाम स्थितिसत्त्व और स्थितिबंध—ये तीनों अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें जो पाये जाते हैं उनसे उसके अंतसमयमें संख्यातगुणे कम होते हैं ॥ ४०३ ॥

अंतोकोडाकोडी अपुव्वपढमम्हि होदि ठिदिबंधो ।
बंधादो पुण सत्तं संखेज्जगुणं हवे तत्थ ॥ ४०४ ॥

अंतःकोटीकोटिः अपूर्वप्रथमे भवति स्थितिबंधः ।
बंधात् पुनः सत्त्वं संख्येयगुणं भवेत् तत्र ॥ ४०४ ॥

अर्थ—अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें स्थितिबंध अंतःकोड़ाकोड़ी प्रमाण है वह प्रमाण

लक्षकोटिसागर है । और वहां सत्त्व स्थितिबन्धसे संख्यातगुणा है ॥ ४०४ ॥ इसतरह स्थितिकांडकका स्वरूप कहा ।

एक्केक्कट्ठिदिखंडयणिवडणठिदिओसरणकाले ।
संखेज्जसहस्साणि य णिवडंति रसस्स खंडाणि ॥ ४०५ ॥

एकैकस्थितिखंडकनिपतनस्थित्युत्करणकाले ।
संख्येयसहस्राणि च निपतंति रसस्य खंडानि ॥ ४०५ ॥

अर्थ—एक एक स्थिति खण्डघात जिसमें होवे ऐसे स्थितिकांडकोत्करणकालमें संख्यातहजार अनुभागकांडकोंका घात होता है ॥ ४०५ ॥

असुहाणं पयडीणं अणंतभागा रसस्स खंडाणि ।
सुहपयडीणं णियमा णत्थित्ति रसस्स खंडाणि ॥ ४०६ ॥

अशुभानां प्रकृतीनां अनंतभागा रसस्य खंडानि ।
शुभप्रकृतीनां नियमात् नास्तीति रसस्य खंडानि ॥ ४०६ ॥

अर्थ—अशुभ प्रकृतियोंका अनंत बहुभागमात्र अनुभागकांडकका प्रमाण है और प्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभागखण्ड नियमसे नहीं होता क्योंकि विशुद्धपरिणामोंकर शुभप्रकृतियोंके अनुभागका घटाना संभव नहीं होता ॥ ४०६ ॥ इसप्रकार अनुभागखण्डका स्वरूप कहा ।

पढमे छट्ठे चरिमे भागे दुग तीस चदुर वोच्छिण्णा ।
बंधेण अपुव्वस्स य से काले बादरो होदि ॥ ४०७ ॥

प्रथमे षष्ठे चरमे भागे द्विकं त्रिंशत् चतस्रो व्युच्छिन्नाः ।
बंधेन अपूर्वस्य च स्वे काले बादरो भवति ॥ ४०७ ॥

अर्थ—अपूर्वकरणके सात भागोंमेंसे पहले भागमें निद्रा प्रचला इन दो प्रकृतियोंकी बंधसे व्युच्छित्ति हुई । छट्ठे भागमें देवगति आदि तीस प्रकृतियोंकी बंधव्युच्छित्ति हुई और इसके बाद संख्यातहजार स्थितिबन्ध होनेपर अपूर्वकरणके अंतसमयमें हास्यादि चार कर्मोंकी बंधसे व्युच्छित्ति होती है । यहांपर ही छह नोकषायोंके उदयकी व्युच्छित्ति होती है । जिस जगह ऊपर समयके भाव हमेशा नीचेके समयके भावोंके समान हों वह कर्मनाश करनेवाला साधक समझा घातक अपूर्वकरण जानना । उसके बाद अपने कालमें अनिवृत्तिकरण होता है ॥ ४०७ ॥

आगे उस अनिवृत्तिकरणका स्वरूप कहते हैं,—

अणियट्टिस्स य पढमे अण्णं ठिदिखंडपहुदिमारवई ।
उवसामणा णिधत्ती णिकाचणा तत्थ वोच्छिण्णा ॥ ४०८

अनिवृत्तेश्च प्रथमे अन्यं स्थितिखंडप्रभृतिमारभते ।
उपशामना निधत्तिः निकाचना तत्र व्युच्छिन्नाः ॥ ४०८ ॥

अर्थ—अनिवृत्तिकरणके प्रथमसमयमें अन्य ही स्थितिखण्डादिक प्रारंभ किये जाते हैं, उस घातके बाद शेष रहे अनुभागका अनंत बहुभागमात्र अन्य ही अनुभागकांडक होता है और अपूर्वकरणके अंतसमयके स्थितिबन्धसे पल्यका संख्यातवां भागमात्र घटता अन्य ही स्थितिबन्ध होता है । यहांपर ही अप्रशस्त उपशम निधत्ति निकाचना इन तीन करणोंकी व्युच्छित्ति होती है । सब ही कर्म उदय संक्रमण उत्कर्षण अपकर्षण करने योग्य होते हैं ॥ ४०८ ॥

बादरपढमे पढमं ठिदिखंडं विसरिसं तु विदियादि ।
ठिदिखंडयं समाणं सवस्स समाणकालम्हि ॥ ४०९ ॥

बादरप्रथमे प्रथमं स्थितिखंडं विसदृशं तु द्वितीयादि ।
स्थितिखंडकं समानं सर्वस्य समानकाले ॥ ४०९ ॥

अर्थ—अनिवृत्तिकरणके प्रथमसमयमें पहला स्थितिखंड विसदृश है और द्वितीयादिस्थितिखंड हैं वे समानकालमें सब जीवोंके समान हैं अर्थात् जिनको अनिवृत्तिकरण आरंभकिये समान काल हुआ उनके परस्पर द्वितीयादि स्थितिकांडक आयामका समान प्रमाण जानना ॥ ४०९ ॥

पल्लस्स संखभागं अवरं तु वरं तु संखभागहियं ।
घादादिमठिदिखंडो सेसा सवस्स सरिसा हु ॥ ४१० ॥

पल्यस्य संख्यभागं अवरं तु वरं तु संख्यभागाधिकम् ।
घातादिमस्थितिखंडः शेषाः सर्वस्य सदृशा हि ॥ ४१० ॥

अर्थ—वह घातके पहले तक प्रथमस्थितिखंड जघन्य तो पल्यका संख्यातवां भागमात्र है और उत्कृष्ट उसके संख्यातवें भागकर अधिक है । तथा शेष द्वितीयादि स्थितिखंड सब जीवोंके समान है ॥ ४१० ॥

उदधिसहस्सपुधत्तं लक्खपुधत्तं तु बंध संतो य ।
अणियट्टीसादीए गुणसेढीपुवपरिसेसा ॥ ४११ ॥

उदधिसहस्रपृथक्त्वं लक्ष्यपृथक्त्वं तु बंधः सत्त्वं च ।
अनिवृत्तेरादौ गुणश्रेणीपूर्वपरिशेषाः ॥ ४११ ॥

अर्थ—अनिवृत्तिकरणके प्रथमसमयमें घटता घटता स्थितिबन्ध पृथक्त्वहजारसागरप्रमाण होता है, स्थितिसत्त्व घटता घटता पृथक्त्वलक्ष्य सागर प्रमाण होता है और गुणश्रेणी आयाम यहांपर अपूर्वकरण कालके बीतनेके बाद शेष रहा वही जानना । समय समय

प्रति असंख्यातगुणा क्रम लिये पूर्वकी तरह गुणश्रेणी और गुणसंक्रम होता है ॥ ४११ ॥ इसतरह तीनकरण कहे।

आगे स्थितिबन्धापसरणका क्रम कहते हैं;—

ठिदिबंधसहस्सगदे संखेज्जा बादरे गदा भागा।
तत्थासण्णिस्सट्ठिदिसरिसं ठिदिबंधणं होदि ॥ ४१२ ॥

स्थितिबंधसहस्रगते संख्येया बादरे गता भागाः।
तत्रासंज्ञिनः स्थितिसदृशं स्थितिबंधनं भवति ॥ ४१२ ॥

अर्थ—इसप्रकार संख्यातहजार स्थितिबन्ध होनेपर अनिवृत्तिकरणकालके संख्यात बहुभाग बीतजानेपर एक भाग शेष रहनेके अवसरमें असंज्ञीपंचेंद्रीकी स्थितिके समान स्थितिबंध होता है ॥ ४१२ ॥

ठिदिबंधसहस्सगदे पत्तेयं चदुरतियबिएइंदी।
ठिदिबंधसमं होदि हु ठिदिबंधमणुक्कमेणेव ॥ ४१३ ॥

स्थितिबंधसहस्रगते प्रत्येकं चतुस्त्रिद्विएकेंद्री।
स्थितिबंधसमं भवति हि स्थितिबंधमनुक्रमेणैव ॥ ४१३ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त क्रमसे संख्यातहजार स्थितिबन्ध होनेपर क्रमसे चौइंद्री तेइंद्री दोइंद्री एकेंद्रीके स्थितिबन्धके समान सौ पचास पचीस एकसागर प्रमाण कर्मका स्थितिबन्ध होता है ॥ ४१३ ॥

एइंदियट्ठिदीदो संखसहस्से गदे दु ठिदिबंधे।
पल्लेकदिवड्ढदुगं ठिदिबंधो वीसियतियाणं ॥ ४१४ ॥

एकेंद्रियस्थितितः संख्यसहस्रे गते हि स्थितिबंधे।
पल्यैकसार्धद्विकं स्थितिबंधः वीसियत्रिकाणाम् ॥ ४१४ ॥

अर्थ—एकेंद्रियसमान स्थितिबंधसे परे संख्यातहजार स्थितिबन्ध बीत जानेपर वीसियोंका एकपल्य तीसियोंका डेढपल्य मोहका दो पल्यमात्र स्थितिबन्ध होता है ॥ ४१४ ॥

तक्काले ठिदिसंतं लक्खपुधत्तं तु होदि उवहीणं।
बंधोसरणा बंधो ठिदिखंडं संतमोसरदि ॥ ४१५ ॥

[illegible] स्थितिसत्त्वं [illegible] तु भवति उदधीनाम्।
[illegible] ॥ ४१५ ॥

[illegible]

पल्लस्स संखभागं संखगुणूणं असंखगुणहीणं ।
बंधोसरणे पल्लं पल्लासंखं असंखवस्संति ॥ ४१६ ॥
पल्यस्य संख्यभागं संख्यगुणोनमसंख्यगुणहीनम् ।
बंधापसरणे पल्यं पल्यासंख्यं असंख्यवर्षमिति ॥ ४१६ ॥

अर्थ—पल्यका संख्यातवां भाग, पूर्वबन्धसे संख्यातगुणा कम, असंख्यातगुणा घटता प्रमाण लिये स्थितिबन्धापसरणोंकर पल्यमात्र, पल्यका असंख्यातवां भागमात्र और असंख्यातवर्षमात्र स्थितिबन्ध होता है ॥ ४१६ ॥ इसीप्रकार स्थितिसत्त्व जानना ।

एवं पल्लं जादा वीसीया तीसिया य मोहो य ।
पल्लासंखं च कमे बंधेण य वीसियतियाओ ॥ ४१७ ॥
एवं पल्यं जाते वीसिया तीसिया च मोहश्च ।
पल्यासंख्यं च क्रमेण बंधेन च वीसियत्रिकाः ॥ ४१७ ॥

अर्थ—इसप्रकार वीसियोंका पल्यमात्र स्थितिबन्ध होनेपर वीसिय तीसिय मोह–इनका पल्यके असंख्यातवें भाग क्रमसे पूर्वसे संख्यातगुणा घटता स्थितिबन्ध होता है ॥ ४१७॥

उदधिसहस्सपुधत्तं अब्भंतरदो दु सदसहस्सस्स ।
तक्काले ठिदिसंतो आउगवज्जाण कम्माणं ॥ ४१८ ॥
उदधिसहस्रपृथक्त्वं अभ्यंतरतस्तु शतसहस्रस्य ।
तत्काले स्थितिसत्त्वं आयुर्वर्जितानां कर्मणाम् ॥ ४१८ ॥

अर्थ—उस मोहनीयके बन्ध होनेके बाद आयुके विना अन्यकर्मोंका स्थितिसत्त्व पृथक्त्वहजार सागर प्रमाण होता है । यहां पृथक्त्वहजार शब्दकर लक्षके अंदर यथासम्भव प्रमाण जानना । पहले पृथक्त्व लक्ष सागरका स्थितिसत्त्व था यह कांडकघातकर यहां इतना रहा है ॥ ४१८ ॥

मोहगपल्लासंखट्ठिदिबंधसहस्सगेसु तीदेसु ।
मोहो तीसिय हेट्ठा असंखगुणहीणयं होदि ॥ ४१९ ॥
मोहगपल्यासंख्यस्थितिबंधसहस्रकेष्वतीतेषु ।
मोहः तीसियं अधस्तना असंख्यगुणहीनकं भवति ॥ ४१९ ॥

अर्थ—मोहका पल्यके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिबन्ध होनेके समयमें मोह तीसिय वीसिय कर्मोंका असंख्यातगुणाकम स्थितिबन्ध होता है ॥ ४१९ ॥

तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वीसियाण हेट्ठादु ।
एक्कसराहे मोहे [illegible] दि ॥ ४२० ॥

तावन्मात्रे बंधे समतीते वीसियानां अधस्तात् ।

एकसमये मोहो असंख्यगुणहीनको भवति ॥ ४२० ॥

अर्थ—ऐसा अल्प बहुत्वका क्रमलिये उतने ही संख्यातहजार स्थितिबन्ध होनेपर एक ही बार असंख्यातगुणा कम तीसिय वीसिय और मोहका स्थितिबन्ध होता है ॥ ४२० ॥

तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वेयणीयहेट्ठादु ।

तीसियघादितियाओ असंखगुणहीणया होंति ॥ ४२१ ॥

तावन्मात्रे बंधे समतीते वेदनीयाधस्तात् ।

तीसियघातित्रिका असंख्यगुणहीनका भवंति ॥ ४२१ ॥

अर्थ—ऐसा क्रमलिये संख्यातहजार स्थितिबंध बीतनेपर वीसियोंमें भी वेदनीयसे नीचे तीनघातियाकर्मोंका असंख्यातगुणा घटता कम लिये स्थितिबन्ध होता है ॥ ४२१ ॥

तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वीसियाण हेट्ठा दु ।

तीसियघादितियाओ असंखगुणहीणया होंति ॥ ४२२ ॥

तावन्मात्रे बंधे समतीते वीसियानामधस्तात् तु ।

तीसियघातित्रिका असंख्यगुणहीनका भवंति ॥ ४२२ ॥

अर्थ—ऐसा क्रमलिये संख्यातहजार स्थितिबन्ध बीतजानेपर विशुद्धिके बलसे वीसियोंके नीचे तीसियोंमेंसे तीनघातियाओंका असंख्यातगुणा घटता स्थितिबन्ध होता है ॥ ४२२ ॥

तक्काले वेयणियं णामा गोदा दु साहियं होदि ।

इदि मोहतीसवीसियवेयणियाणं कमो बंधे ॥ ४२३ ॥

तत्काले वेदनीयं नाम गोत्रं हि साधिकं भवति ।

इति मोहतीसियवीसियवेदनीयानां क्रमो बंधे ॥ ४२३ ॥

अर्थ—उस कालमें वेदनीयका स्थितिबन्ध नाम गोत्रके स्थितिबन्धसे अधिक है उसके आधे प्रमाणकर अधिक होता है इसतरह मोह तीसिय वीसिय और वेदनीयका क्रमसे बंध हुआ। यही क्रमलिये अल्प बहुत्वका होना क्रमकरण है ॥ ४२३ ॥

आगे स्थितिसत्त्वापसरणका स्वरूप कहते हैं:—

बंधे मोहादिकमे संजादे तेत्तियेहिं बंधेहिं ।

ठिदिसंतमसण्णिसमं मोहादिकमं तहा संते ॥ ४२४ ॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

ही संख्यातहजार स्थितिबन्ध होनेपर असंज्ञी पंचेंद्रीके समान स्थितिसत्त्व होता है। औ
उसके बाद वैसे ही स्थितिसत्त्वका होना क्रमसे जानना ॥ ४२४ ॥

तीदे बंधसहस्से पल्लासंखेज्जयं तु ठिदिबंधे ।
तत्थ असंखेज्जाणं उदीरणा समयबद्धाणं ॥ ४२५ ॥

अतीते बंधसहस्रे पल्यासंख्येयकं तु स्थितिबंधे ।
तत्र असंख्येयानां उदीरणा समयबद्धानाम् ॥ ४२५ ॥

अर्थ—इस क्रमकरणसे परे संख्यातहजार स्थितिबन्ध बीतनेपर पल्यका असंख्यातव
भागमात्र स्थितिबन्ध होते हुए असंख्यात समय प्रबद्धोंकी उदीरणा होती है ॥ ४२५ ॥

आगे क्षपणाका स्वरूप कहते हैं;—

ठिदिबंधसहस्सगदे अट्ठकसायाण होदि संकमगो ।
ठिदिखंडपुधत्तेण य तट्ठिदिसंतं तु आवलियविद्धं ॥ ४२६ ॥

स्थितिबंधसहस्रगते अष्टकषायानां भवति संक्रामकः ।
स्थितिखंडपृथक्त्वेन च तत्स्थितिसत्त्वं तु आवलिकविद्धं ॥ ४२६ ॥

अर्थ—उसके बाद संख्यातहजार स्थितिकांडक बीतनेपर अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान
क्रोध मान माया लोभरूप आठ कषायोंका संक्रामक होता है। इसतरह मोहराजाकी सेनाके
नायक आठ कषायोंका नाश होनेपर शेष स्थितिसत्त्व काल अपेक्षा आवलिमात्र रहता है
और निषेकोंकी अपेक्षा समयकम आवलीमात्र रहता है ॥ ४२६ ॥

ठिदिबंधपुधत्तगदे सोलसपयडीण होदि संकमगो ।
ठिदिखंडपुधत्तेण य तट्ठिदिसंतं तु आवलिपविट्ठं ॥ ४२७ ॥

स्थितिबंधपृथक्त्वगते षोडशप्रकृतीनां भवति संक्रामकः ।
स्थितिखंडपृथक्त्वेन च तत्स्थितिसत्त्वं तु आवलिप्रविष्टम् ॥ ४२७ ॥

अर्थ—उसके बाद पृथक्त्व यानी संख्यातहजार स्थितिबन्ध बीतनेपर निद्रा निद्रा
आदि तीन दर्शनावरणकी नरकगति आदि तेरह नामकर्मकी—इस तरह सोलह प्रकृतियोंका
संक्रामक होता है। इस तरह संख्यातहजार स्थितिखण्डोंसे उनकर्मोंका स्थितिसत्त्व आव-
लिमात्र रहता है ॥ ४२७ ॥

आगे देशघातिकरणको कहते हैं;—

ठिदिबंधपुधत्तगदे मणदाणा तत्तियेवि ओहि दुगं ।
लाभं च पुणोवि सुदं अचक्खुभोगं पुणो चक्खु ॥ ४२८ ॥
पुणरवि मदिपरिभोगं पुणरवि विरयं कमेण अणुभागो ।
बंधेण देसघादी पल्लासंखं तु ठिदिबंधो ॥ ४२९ ॥

स्थितिबंधपृथक्त्वगते मनोदाने तावदपि अवधिलाभम् ।
लाभश्च पुनरपि श्रुतं अचक्षुर्भोगं पुनः चक्षुः ॥ ४२८ ॥
पुनरपि मतिपरिभोगं पुनरपि वीर्यं क्रमेण अनुभागः ।
बंधेन देशघातिः पल्यासंख्यस्तु स्थितिबंधः ॥ ४२९ ॥

अर्थ—सोलह प्रकृतियोंके संक्रमणके बाद पृथक्त्वसंख्यातहजार स्थितिकांडक बीत जानेपर मनःपर्यय ज्ञानावरण और दानांतरायका, उतने ही स्थितिकांडक बीत जानेपर अवधिज्ञानावरण अवधिदर्शनावरण और लाभांतरायका, उसीतरह श्रुतज्ञानावरण अचक्षुर्दर्शनावरण भोगांतरायका, उसीतरह चक्षुर्दर्शनावरण, उसीतरह मतिज्ञानावरण उपभोगांतरायका और उसीतरह वीर्यांतरायका अनुभागबंध देशघाती होता है । इसी अवसरमें स्थितिबन्ध पल्यासंख्यातवां भागमात्र ही जानना ॥ ४२८ । ४२९ ॥

आगे अंतरकरणको कहते हैं;—

ठिदिबंधसहस्सगदे चदुसंजलणाण णोकसायाणं ।
एयट्ठिदिखंडुक्कीरणकाले अंतरं कुणइ ॥ ४३० ॥
स्थितिबंधसहस्रगते चतुःसंज्वलनानां नोकषायाणाम् ।
एकस्थितिखंडोत्कीरणकाले अंतरं करोति ॥ ४३० ॥

अर्थ—देशघातिकरणसे परे संख्यातहजार स्थितिखण्ड बीत जानेपर चार संज्वलन और नव नोकषायोंका अंतर करता है यानी बीचके निषेकोंका अभाव करता है । और एक स्थितिकांटकोत्करणका जितना काल है उतने कालकर अंतरको पूर्ण करता है ॥ ४३० ॥

संजलणाणं एक्कं वेदाणेक्कं उदेदि तद्दोण्हं ।
सेसाणं पढमट्ठिदि ठवेदि अंतोमुहुत्तमावलियं ॥ ४३१ ॥
संज्वलनानामेकं वेदानामेकमुदेति तद्द्वयोः ।
शेषाणां प्रथमस्थितिं स्थापयति अंतर्मुहूर्तमावलिकां ॥ ४३१ ॥

अर्थ—संज्वलनक्रोधादिकोंमेंसे कोई एक और तीनवेदोंमेंसे कोई एक वेद इसतरह उदयरूप दो प्रकृतियोंकी तो अंतर्मुहूर्तमात्र प्रथमस्थिति स्थापन करता है । इनके विना जिनका उदय न पायाजावे ऐसी ग्यारह प्रकृतियोंकी आवलिमात्र प्रथमस्थिति स्थापन करता है ॥ ४३१ ॥

उक्कीरिदं तु दव्वं संते पढमट्ठिदिम्हि संछुहदि ।
बंधेवि य आबाधमदिच्छिय उक्कट्टदे णियमा ॥ ४३२ ॥
[illegible] प्रथमस्थितौ [illegible]
[illegible] ॥ ४३२ ॥

अर्थ— [illegible] अपकर्षणकर

प्रथमस्थितिमें निक्षेपण करता है और उत्कर्षण किये द्रव्यको आबाधा छोड़कर बंधरूप स्थितिमें निक्षेपण करता है ॥ ४३२ ॥

आगे संक्रमणको कहते हैं;—

सत्त करणाणि यंतरकदपढमे ताणि मोहणीयस्स ।
इगिठाणियबंधुदओ तस्सेव य संखवस्सठिदिबंधो ॥ ४३३ ॥
तस्साणुपुव्विसंकम लोहस्स असंकमं च संढस्स ।
आवेत्तकरणसंकम छावलितीदेसुदीरणदा ॥ ४३४ ॥

सप्तकरणानि अंतरकृतप्रथमे तानि मोहनीयस्य ।
एकस्थानिकबंधोदयौ तस्यैव च संख्यवर्षस्थितिबंधः ॥ ४३३ ॥
तस्यानुपूर्विसंक्रमं लोभस्यासंक्रमं च षंढस्य ।
आवृत्तकरणसंक्रमं षडावल्यतीतेषूदीरणता ॥ ४३४ ॥

अर्थ—जिसने अंतर किया ऐसे अंतरकृत जीवके प्रथमसमयमें सात करणोंका प्रारंभ होता है । उनमेंसे मोहनीयका बंध उदय केवल लतारूप एकस्थानगत हुआ ये दो करण, उसी मोहनीयका स्थितिबन्ध पल्यासंख्यातभागसे घटकर संख्यातवर्षमात्र हुआ, उन्हीं मोहप्रकृतियोंका आनुपूर्वी संक्रमण होता है, लोभका अन्यप्रकृतियोंमें संक्रमण नहीं होता, नपुंसकवेदका आवृत्तकरण संक्रम हुआ, और पूर्वकर्मोंके बंध होनेबाद आवलि बीतनेपर उदीरणा होती थी अब छह आवलि बीतनेपर उदीरणा होती है । इसतरह सात करणोंका युगपत् प्रारंभ होता है ॥ ४३३ । ४३४ ॥

संछुहदि पुरिसवेदे इत्थीवेदं णउंसयं चेव ।
सत्तेव णोकसाए णियमा कोहम्हि संछुहदि ॥ ४३५ ॥
कोहं च छुहदि माणे माणं मायाए णियमि संछुहदि ।
मायं च छुहदि लोहे पडिलोमो संकमो णत्थि ॥ ४३६ ॥

संक्रामति पुरुषवेदे स्त्रीवेदं नपुंसकं चैव ।
सप्तैव नोकषायान् नियमात् क्रोधे संक्रामति ॥ ४३५ ॥
क्रोधश्च क्रामति माने मानो मायायां नियमेन संक्रामति ।
माया च क्रामति लोभे प्रतिलोमः संक्रमो नास्ति ॥ ४३६ ॥

अर्थ—स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका द्रव्य तो पुरुषवेदमें संक्रमण करता है, पुरुषवेद हास्यादि छह ऐसें सात नोकषायका द्रव्य संज्वलन क्रोधमें, क्रोधका द्रव्य मानमें, मानका द्रव्य मायामें, मायाका द्रव्य लोभमें संक्रमण करता है । अब अन्यप्रकार संकम नहीं होता ॥ ४३५ । ४३६ ॥

ठिदिबंधसहस्सगदे संढो संकामिदो हवे पुरिसे ।
पडिसमयमसंखगुणं संकामगचरिमसमओत्ति ॥ ४३७ ॥

स्थितिबंधसहस्रगते पंढः संक्रामितो भवेत् पुरुषे ।
प्रतिसमयमसंख्यगुणं संक्रामकचरमसमय इति ॥ ४३७ ॥

अर्थ—अन्तरकरणके अनंतरसमयसे लेकर संख्यातहजार स्थितिबन्ध बीतजानेपर नपुंसकवेद पुरुषवेदमें संक्रमण किया जाता है । और समय समय प्रति असंख्यातगुणा क्रम लिये संक्रमणकालके अंतसमयतक वह द्रव्य संक्रमित होता है ॥ ४३७ ॥

बंधेण होदि उदओ अहिओ उदएण संकमो अहिओ ।
गुणसेढि असंखेज्जापदेसअंगेण बोधव्वा ॥ ४३८ ॥

बंधेन भवति उदयो अधिक उदयेन संक्रमो अधिकः ।
गुणश्रेणिरसंख्येयप्रदेशांगेन बोद्धव्या ॥ ४३८ ॥

अर्थ—उस कालमें पुरुषवेदके बंधद्रव्यसे उदय अधिक है और उदयद्रव्यसे संक्रमण द्रव्य अधिक है । वह अधिकता असंख्यात प्रदेशसमूहोंकर गुणश्रेणी अर्थात् गुणकारकी पङ्क्तिरूप जानना ॥ ४३८ ॥

गुणसेढिअसंखेज्जापदेसअंगेण संकमो उदओ ।
से काले से काले उज्जो बंधो पदेसंगो ॥ ४३९ ॥

गुणश्रेण्यसंख्येयप्रदेशांगेन संक्रम उदयः ।
स्वे काले स्वे काले योग्यो बंधः प्रदेशांगः ॥ ४३९ ॥

अर्थ—अपने २ कालमें स्वस्थान अपेक्षा संक्रमसे संक्रम उदयसे उदय प्रदेश अपेक्षाकर असंख्यातरूप गुणकारकी पङ्क्ति लिये है । और अपने पुरुषवेदके बन्धकालमें प्रदेशरूप बंध भजनीय है ॥ ४३९ ॥

इदि संढं संकामिय से काले इत्थिवेदसंकमगो ।
अण्णं ठिदिरसखंडं अण्णं ठिदिबंधमारभई ॥ ४४० ॥

इति पंढं संक्राम्य स्वे काले स्त्रीवेदसंक्रामकः ।
अन्यत्स्थितिरसखंडमन्यं स्थितिबंधमारभते ॥ ४४० ॥

अर्थ—इसप्रकार नपुंसकवेदको संक्रमण कर अपने कालमें स्त्रीवेदका संक्रामक होता है अर्थात् पुरुषवेदमें संक्रमणकर क्षपण करनेवाला होता है । वहां प्रथमसमयमें पूर्वसे अन्य प्रमाण लिये स्थितिकांडक अनुभागकांडक और स्थितिबन्धको आरंभ करता है ॥ ४४० ॥

थी अद्धा संखेज्जभागे पगदे तिघादिठिदिबंधो ।
वस्साणं संखेज्जं थी संकं तापगद्धंते ॥ ४४१ ॥

स्त्री अद्धा संख्येयभागेपगते त्रिघातिस्थितिर्बंधः ।
वर्षाणां संख्येयं स्त्री संक्रमोपगतार्धांते ॥ ४४१ ॥

अर्थ—स्त्रीवेद क्षपणाकालका संख्यातवां भाग बीतनेपर ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तराय इन तीन घातियाओंके स्थितिबन्धको संकोचकर संख्यातवर्षप्रमाण स्थितिबन्ध करता है। उसके बाद स्त्रीवेदका स्थितिसत्त्व अन्तस्थितिकांडकरूप करता है ॥ ४४१ ॥

ताहे संखसहस्सं वस्साणं मोहणीयठिदिसंतं ।
से काले संकमगो सत्तण्हं णोकसायाणं ॥ ४४२ ॥

तस्मिन् संख्यसहस्रं वर्षाणां मोहनीयस्थितिसत्त्वम् ।
स्वे काले संक्रामकः सप्तानां नोकषायाणाम् ॥ ४४२ ॥

अर्थ—स्त्रीवेद क्षपणाकालके अन्तमें मोहनीयका स्थितिसत्त्व असंख्यातवर्षप्रमाण है। उसके बाद अपने कालमें सात नोकषायोंका संक्रामक होता है यानी संज्वलनक्रोधरूप परिणामके नाश करनेवाला होता है ॥ ४४२ ॥

ताहे मोहो थोवो संखेज्जगुणं तिघादिठिदिबंधो ।
तत्तो असंखगुणियो णामदुगं साहियं तु वेयणियं ॥ ४४३ ॥

तत्र मोहः स्तोकः संख्येयगुणं त्रिघातिस्थितिर्बंधः ।
ततोऽसंख्येयगुणितं नामद्विकं साधिकं तु वेदनीयम् ॥ ४४३ ॥

अर्थ—उसी जगह प्रथमसमयमें मोहका स्थितिबन्ध थोड़ा है, उससे तीन घातियोंका संख्यातगुना, उससे नाम गोत्रका असंख्यातगुणा और वेदनीयका साधिक स्थितिबन्ध होता है ॥ ४४३ ॥

ताहे असंखगुणियं मोहादु तिघादिपयडिठिदिसंतं ।
तत्तो असंखगुणियं णामदुगं साहियं तु वेयणिये ॥ ४४४ ॥

तस्मिन् असंख्यगुणितं मोहात् त्रिघातिप्रकृतिस्थितिसत्त्वम् ।
ततो असंख्यगुणितं नामद्विकं साधिकं तु वेदनीयं ॥ ४४४ ॥

अर्थ—उसी प्रथमसमयमें संख्यातवर्षमात्र मोहका स्थितिसत्त्व थोड़ा है उससे असंख्यातगुणा तीनघातियाओंका स्थितिसत्त्व है उससे असंख्यातगुणा नाम गोत्रका स्थितिसत्त्व है उससे अधिक वेदनीयका स्थितिसत्त्व है ॥ ४४४ ॥

सत्तण्हं पढमट्ठिदिखंडे पुण्णे दु मोहठिदिसंतं ।
संखेज्जगुणविहीणं सेसाणमसंखगुणहीणं ॥ ४४५ ॥

सप्तानां प्रथमस्थितिखंडे पूर्णे तु मोहस्थितिसत्त्वं ।
संख्येय गुणविहीनं शेषाणामसंख्यगुणहीनम् ॥ ४४५ ॥

अर्थ—सात नोकषायोंका पहला स्थितिकांडक पूर्ण होनेपर पूर्वस्थितिसत्त्वसे मोहका स्थितिसत्त्व संख्यातगुणाकम है और शेष कर्मोंका स्थितिसत्त्व असंख्यातगुणा कम है ॥ ४४५ ॥

सत्तण्हं पढमट्ठिदिखंडे पुण्णेति घादिठिदिबंधो ।
संखेज्जगुणविहीणं अघादितियाणं असंखगुणहीणं ॥ ४४६ ॥

सप्तानां प्रथमस्थितिखंडे पूर्णे इति घातिस्थितिबंधः ।
संख्येयगुणविहीनो अघातित्रयाणामसंख्यगुणहीनः ॥ ४४६ ॥

अर्थ—सात नोकषायोंके प्रथमस्थितिखंड पूर्ण होनेपर पूर्वस्थितिबन्धसे चार घातिया-ओंका तो संख्यातगुणा घटता और तीन अघातियाकर्मोंका असंख्यातगुणा घटता स्थिति-बन्ध होता है ॥ ४४६ ॥

ठिदिबंधपुधत्तगदे संखेज्जदिमं गतं तदद्धाए ।
एत्थ अघादितियाणं ठिदिबंधो संखवस्सं तु ॥ ४४७ ॥

स्थितिबंधपृथक्त्वगते संख्येयं गतं तदद्धायाम् ।
अत्र अघातित्रयाणां स्थितिबंधः संख्यवर्षस्तु ॥ ४४७ ॥

अर्थ—उसके बाद संख्यातहजार स्थितिबन्ध बीतजानेपर उस सात नोकषायक्षपणा-कालका संख्यातवां भाग बीतजानेसे नामगोत्र वेदनीयरूप तीन अघातियाओंका स्थितिबंध संख्यातहजार वर्षमात्र होता है ॥ ४४७ ॥

ठिदिखंडपुधत्तगदे संखा भागा गदा तदद्धाए ।
घादितियाणं तत्थ य ठिदिसंतं संखवस्सं तु ॥ ४४८ ॥

स्थितिखंडपृथक्त्वगते संख्या भागा गता तदद्धायाः ।
घातित्रयाणां तत्र च स्थितिसत्त्वं संख्यवर्षं तु ॥ ४४८ ॥

अर्थ—उसके बाद संख्यातहजार स्थितिकांडक बीतनेपर सात नोकषायकालका संख्या-तबहुभाग बीतनेसे एक भागमें तीनघातियाओंका स्थितिसत्त्व संख्यात वर्षमात्र होता है ॥ ४४८ ॥

पडिसमयं असुहाणं रसबंधुदया अणंतगुणहीणा ।
बंधोवि य उदयादो तदणंतरसमय उदयोथ ॥ ४४९ ॥

प्रतिसमयमशुभानां रसबंधोदयौ अनन्तगुणहीनौ
[illegible] उदयोऽथ ॥ ४४९ ॥

अर्थ—अशुभप्रकृतियोंके अनुभागबंध और अनुभाग उदय समय समय प्रति अनन्त-

गुणा कम होता है । पूर्वसमयके उदयसे उत्तरसमयका बन्ध भी और अनन्तरसमयवर्ती उदय भी अनन्तगुणा घटता जानना ॥ ४४९ ॥

बंधेण होदि उदओ अहियो उदएण संकमो अहियो ।
गुणसेढि अणंतगुणा बोधव्वा होदि अणुभागे ॥ ४५० ॥

बंधेन भवति उदयो अधिक उदयेन संक्रमो अधिकः ।
गुणश्रेणिरनंतगुणा बोद्धव्या भवति अनुभागे ॥ ४५० ॥

अर्थ—बन्धसे तो उदय अधिक है और उदयसे संक्रम अधिक है । इसतरह अनुभागमें अनन्तगुणी गुणकारकी पंक्ति जानना । भावार्थ—विवक्षित एक समयमें अनुभागके बन्धसे अनन्तगुणा अनुभागका उदय होता है उससे अनन्तगुणा अनुभागका संक्रम होता है ॥ ४५० ॥

गुणसेढि अणंतगुणेणूणा य वेदगो दु अणुभागो ।
गणणादिकंतसेढी पदेसअंगेण बोधव्वा ॥ ४५१ ॥

गुणश्रेणिरनंतगुणेनोना च वेदकस्तु अनुभागः ।
गणनातिक्रांतश्रेणी प्रदेशांगेन बोद्धव्या ॥ ४५१ ॥

अर्थ—यद्यपि उदयरूप अनुभाग समय समय प्रति अनन्तगुणा घटतारूप गुणकार पङ्क्ति लिये है तोभी प्रदेश अंगकर असंख्यातगुणकारकी पङ्क्तिरूप जानना । भावार्थ—समय २ प्रति अनुभागका उदय अनन्तगुणा घटता है तो भी कर्मपरमाणुओंका उदय समय २ प्रति असंख्यातगुणा बढ़ता है ऐसा जानना ॥ ४५१ ॥

बंधोदएहिं णियमा अणुभागो होदि णंतगुणहीणं ।
से काले से काले भज्जो पुण संकमो होदि ॥ ४५२ ॥

बंधोदयाभ्यां नियमादनुभागो भवति अनंतगुणहीनः ।
स्वे काले स्वे काले भाज्यः पुनः संक्रमो भवति ॥ ४५२ ॥

अर्थ—अपने कालमें अनुभाग बन्ध और उदयकर समय २ प्रति अनन्तगुणा घटता ही है । और अपने २ कालमें संक्रम भजनीय है यानी घटनेके नियमसे रहित है ॥४५२॥

संकमणं तदवट्ठं जाव दु अणुभागखंडयं पडिदि ।
अण्णाणुभागखंडे आढत्ते णंतगुणहीणं ॥ ४५३ ॥

संक्रमणं तदवस्थं यावत् अनुभागखंडकं पतति ।
अन्यानुभागखंडे आरब्धे अनंतगुणहीनम् ॥ ४५३ ॥

अर्थ—जिस अनुभागकांडकमें संक्रमण हो उस अनुभागकांडकका घात होकर न निबटे तबतक समय समय प्रति अवस्थित (समान) रूप ही अनुभागका संक्रमण होता

है । और अन्य नवीन अनुभागकांडकका प्रारंभ होजानेपर पहलेसे अनन्तगुणा घटता अनुभागका संक्रम होता है ॥ ४५३ ॥

सत्तण्हं संकामगचरिमे पुरिसस्स बंधमडवस्सं ।
सोलस संजलणाणं संखसहस्साणि सेसाणं ॥ ४५४ ॥

सप्तानां संक्रामकचरमे पुरुषस्य बंधोष्टवर्षम् ।
षोडश संज्वलनानां संख्यसहस्राणि शेषाणाम् ॥ ४५४ ॥

अर्थ—सात नोकषायोंके संक्रमणकालके अन्तसमयमें पुरुषवेदका स्थितिबन्ध आठ वर्षप्रमाण होता है और संज्वलनचौकड़ीका सोलह वर्षमात्र तथा शेष रहे मोह आयु विना छह कर्मोंका संख्यातहजार वर्षमात्र स्थितिबन्ध होता है ॥ ४५४ ॥

ठिदिसंतं घादीणं संखसहस्साणि होंति वस्साणं ।
होंति अघादितियाणं वस्साणमसंखमेत्ताणि ॥ ४५५ ॥

स्थितिसत्त्वं घातिनां संख्यसहस्राणि भवंति वर्षाणाम् ।
भवंति अघातित्रयाणां वर्षाणामसंख्यमात्राणि ॥ ४५५ ॥

अर्थ—यहांपर ही स्थितिसत्त्व चार घातियाओंका संख्यातहजार वर्षमात्र और तीन अघातियाओंका असंख्यातवर्षप्रमाण जानना ॥ ४५५ ॥

पुरिसस्स य पढमट्ठिदि आवलिदोसुवरिदासु आगाला ।
पडिआगाला छिण्णा पडिआवलियादुदीरणदा ॥ ४५६ ॥

पुरुषस्य च प्रथमस्थितौ आवलिद्वयोरुपरतयोरागालाः ।
प्रत्यागालाः छिन्ना प्रत्यावलिकाया उदीरणता ॥ ४५६ ॥

अर्थ—पुरुषवेदकी प्रथमस्थितिमें आवलि प्रत्यावलि दोनों शेष रहनेपर आगाल प्रत्यागाल नष्ट हो जाते हैं और द्वितीयावलिसे उदीरणा होती है ॥ ४५६ ॥ द्वितीयस्थितिमें स्थित परमाणुओंको अपकर्षण करके प्रथमस्थितिमें प्राप्त करना आगाल कहा जाता है । प्रथमस्थितिमें ठहरे हुए परमाणुओंको उत्कर्षणकर द्वितीयस्थितिमें प्राप्त करना प्रत्यागाल है।

अंतरकदपढमादो कोहे छण्णोकसाययं छुहदि ।
पुरिसस्स चरिमसमए पुरिसवि एणेण सयं छुहदि ॥ ४५७ ॥

अन्तरकृतप्रथमात् क्रोधे षण्णोकषायकं संक्रामति ।
पुरुषस्य चरमसमये पुरुषमपि एतेन सर्वं संक्रामति ॥ ४५७ ॥

अर्थ [illegible] पुरुषवेदके उदयकालके अंतमें [illegible] है और पुरुषवेदको भी सब [illegible] ४५७ [illegible]

समऊणदोण्णिआवलिपमाणसमयप्पबद्धणवबंधो ।
विदिये ठिदीये अत्थि हु पुरिसस्सुदयावली च तदा ॥ ४५८ ॥

समयोनद्व्यावलिप्रमाणसमयप्रबद्धनवबंधः ।
द्वितीयस्यां स्थितौ अस्ति हि पुरुषस्योदयावली च तदा ॥ ४५८ ॥

अर्थ—द्वितीय स्थितिमें समय कम दो आवलिमात्र नवक समयप्रबद्ध मात्र उदयावलिके निषेक पुरुषवेदके सत्वमें शेष रहते हैं अन्य सब संख्यातहजार वर्षमात्र स्थिति लिये पुरुषवेदका पुराना सत्व संज्वलनक्रोधमें संक्रमणरूप करदिया जाता है ॥ ४५८ ॥

अब अपगतवेदीकी क्रिया कहते हैं;—

से काले ओवट्टणिउट्टण अस्सकण्ण आदोलं ।
करणं तियसण्णगयं संजलणरसेसु वट्टिहिदि ॥ ४५९ ॥

स्वे काले अपवर्तनोद्वर्तनं अश्वकर्णमांदोलम् ।
करणं त्रिकसंज्ञागतं संज्वलनरसेषु वर्तयति ॥ ४५९ ॥

अर्थ—अपने कालमें अपवर्तनोद्वर्तकरण १ अश्वकरण २ आंदोलकरण–इसतरह नामोंको प्राप्त किया है वह संज्वलनचौकड़ीके अनुभागमें प्राप्त होती है ॥ ४५९ ॥ आरंभ किये प्रथम अनुभाग कांडकके घात होनेपर शेष अनुभाग क्रोधसे लेकर लोभतक अनन्तगुणा घटता, व लोभसे लेकर क्रोधतक अनन्तगुणा बढता होता है उसे अपवर्तनोद्वर्तनकरण कहते हैं । जैसे घोड़ेका कान मध्यके प्रदेशसे आदितक क्रमसे घटता होता है उसीतरह प्रथमअनुभागकांडकका घात हुए बाद क्रोध आदि लोभपर्यंतका क्रमसे अनुभाग घटता होता है उसे अश्वकर्ण कहते हैं । जैसे हिंडोलेको रस्सी बन्धती है वह रस्सीके बीचका प्रदेश आदिसे अन्ततक क्रमसे घटता होता है उसीतरह पूर्ववत् क्रोधसे लोभतकका अनुभाग घटता होता है उसे आंदोलकरण कहते हैं ।

ताहे संजलणाणं ठिदिसंतं संखवस्सयसहस्सं ।
अंतोमुहुत्तहीणो सोलसवस्साणि ठिदिबंधो ॥ ४६० ॥

तत्र संज्वलनानां स्थितिसत्त्वं संख्यवर्षसहस्रम् ।
अंतर्मुहूर्तहीनः षोडशवर्षाणि स्थितिबंधः ॥ ४६० ॥

अर्थ—उस अश्वकर्णके प्रारंभसमयमें संज्वलन चारका स्थितिसत्त्व संख्यातहजार वर्षमात्र है और स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तकम सोलह वर्षमात्र है ॥ ४६० ॥

रससंतं आगहिदं खंडेण समं तु माणगे कोहे ।
मायाए लोभेवि य अहियकमा होंति बंधेवि ॥ ४६१ ॥

रससत्त्वमागृहीतं खंडेन समं तु मानके क्रोधे।
मायायां लोभेपि च अधिकक्रमं भवति बंधेपि ॥ ४६१ ॥

अर्थ—प्रारंभ किये प्रथम अनुभागकांडककर सहित इस प्रथमअनुभाग कांडकके घात होनेसे पहले मानमें क्रोधमें मायामें लोभमें जो अनुभागसत्त्व है वह अधिक क्रमलिये हुए है। और इस अश्वकर्णके प्रारंभसमयमें जो अनुभागबन्ध है उसमें भी इसीतरह अल्प बहुत्वका क्रम जानना ॥ ४६१ ॥

रसखंडफड्ढयाओ कोहादीया हवंति अहियकमा।
अवसेसफड्ढयाओ लोहादि अणंतगुणिदकमा ॥ ४६२ ॥

रसखंडस्पर्धकानि क्रोधादिकानां भवंति अधिकक्रमाणि।
अवशेषस्पर्धकानि लोभादेः अनंतगुणितक्रमाणि ॥ ४६२ ॥

अर्थ—घात करनेके लिये प्रथम अनुभागकांडकरूप ग्रहण किये जो स्पर्धक वे क्रोधके थोड़े हैं उससे मानादिके विशेष अधिक हैं। और प्रथम अनुभागकांडकका घात हुए बाद अवशेष रहे स्पर्धक हैं वे लोभके थोड़े हैं उससे मायादिके अनंतगुणे हैं ऐसा क्रम जानना ॥ ४६२ ॥

अब अश्वकर्णके प्रथम समयमें हुए अपूर्वस्पर्धकोंका व्याख्यान करते हैं;—

ताहे संजलणाणं देसावरफड्ढयस्स हेट्ठादो।
णंतगुणूणमपुव्वं फड्ढयमिह कुणदि हु अणंतं ॥ ४६३ ॥

तस्मिन् संज्वलनानां देशावरस्पर्धकस्य अधस्तनात्।
अनंतगुणोनमपूर्वं स्पर्धकमिह करोति हि अनंतम् ॥ ४६३ ॥

अर्थ—उस अश्वकर्णके आरंभसमयमें चारों संज्वलनकषायोंका एक साथ अपूर्वस्पर्धक देशघाती जघन्यस्पर्धकसे नीचे अनन्तगुणा घटता अनुभागरूप करता है। इस तरह अनन्ते अपूर्वस्पर्धक होते हैं ॥ ४६३ ॥

गणणादेयपदेसगगुणहाणिट्ठाणफड्ढयाणं तु।
होदि असंखेज्जदिमं अवरादु वरं अणंतगुणं ॥ ४६४ ॥

गणनादेकप्रदेशकगुणहानिस्थानस्पर्धकानां तु।
भवति असंख्येयं अवरतो वरमनंतगुणम् ॥ ४६४ ॥

अर्थ—गणनाकरके परमाणुओंकी गुणहानिके स्पर्धकोंका असंख्यातवां भाग अपूर्वस्पर्धकोंका प्रमाण है और जघन्य अपूर्वस्पर्धकोंसे उत्कृष्ट अपूर्वस्पर्धकमें अनुभागके अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणे होते हैं ॥ ४६४ ॥ इसका विशेषकथन कषायप्राभृत (महाधवल) में कहा है।

पुव्वाण फड्ढयाणं छेत्तूण असंखभागदव्वं तु ।
कोहादीणमपुव्वं फड्ढयमिह कुणदि अहियकमा ॥ ४६५ ॥

पूर्वान् स्पर्धकान् छित्वा असंख्यभागद्रव्यं तु ।
क्रोधादीनामपूर्वं स्पर्धकमिह करोति अधिकक्रमम् ॥ ४६५ ॥

अर्थ—संज्वलन क्रोध मान माया लोभके पूर्व स्पर्धकोंके द्रव्यको अपकर्षण भागमात्र असंख्यातका भाग देकर एक भागमात्र द्रव्यको ग्रहणकर यहां अपूर्वस्पर्धक करता है। वे स्पर्धक क्रमसे अधिक २ जानना ॥ ४६५ ॥

समखंडं सविसेसं णिक्खिवियोकट्टिदादु सेसधणं ।
पक्खेवकरणसिद्धं इगिगोउंछेण उभयत्थ ॥ ४६६ ॥

समखंडं सविशेषं निक्षिप्यापकर्षितात् शेषधनम् ।
प्रक्षेपकरणसिद्धं एकगोपुच्छेन उभयत्र ॥ ४६६ ॥

*अर्थ—अपकर्षणकिये द्रव्यमें कितने एक द्रव्य तो विशेष सहित समखण्डरूप अपूर्व-*स्पर्धकोंमें निक्षेपणकर अवशेष धनको एक गोपुच्छकर पूर्व अपूर्व दोनों स्पर्धकोंमें निक्षे-पण करना सिद्ध हुआ ॥ ४६६ ॥

उकट्टिदं तु देदि अपुव्वादिमवग्गणाउ हीणकमं ।
पुव्वादिवग्गणाए असंखगुणहीणयं तु हीणकमा ॥ ४६७ ॥

अपकर्षितं तु ददाति अपूर्वादिमवर्गणा हीनक्रमम् ।
पूर्वादिवर्गणायामसंख्यगुणहीनकं तु हीनक्रमम् ॥ ४६७ ॥

अर्थ—अपकर्षण किये द्रव्यमेंसे अपूर्वस्पर्धककी आदिवर्गणामें विशेष घटते क्रमसे द्रव्य दिया जाता है। और अपूर्वस्पर्धककी अंतवर्गणामें दिये हुए द्रव्यसे साधिक अपक-र्षण भागहारमात्र असंख्यातगुणा घटता पूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणामें द्रव्य दिया जाता है ॥ ४६७ ॥

कोहादीणमपुव्वं जेट्ठं सरिसं तु अवरमसरित्थं ।
लोहादिआदिवग्गणअविभागा होंति अहियकमा ॥ ४६८ ॥

क्रोधादीनामपूर्वं ज्येष्ठं सदृशं तु अवरमसदृशम् ।
लोभादिकादिवर्गणाविभागा भवन्ति अधिकक्रमाः ॥ ४६८ ॥

अर्थ—क्रोधादिकोंके [illegible] अपूर्वस्पर्धकोंका [illegible] अनुभागके अविभाग-प्रतिच्छेदोंके [illegible] समान है और [illegible] असमान है । [illegible] लोभा-दिकके [illegible] क्रमसे अधिक है ॥ ४६८ ॥

सगसगफड्डयएहिं सगजेट्ठे भाजिदे सगीआदि ।
मज्झेवि अणंताओ वग्गणगाओ समाणाओ ॥ ४६९ ॥

स्वकस्वकस्पर्धकैः स्वकज्येष्ठे भाजिते स्वकीयादि ।
मध्येपि अनंता वर्गणाः समानाः ॥ ४६९ ॥

अर्थ—अपने अपने स्पर्धकोंका भाग अपनी २ उत्कृष्टवर्गणाओंमें देनेसे अपनी २ आदिवर्गणाओंका प्रमाण आता है। और मध्यमें भी अनंतवर्गणा चारों कषायोंकी परस्पर समान होतीं हैं ॥ ४६९ ॥

जे हीणा अवहारे रूवा तेहिं गुणित्तु पुव्वफलं ।
हीणवहारेणहिये अद्धं पुव्वं फलेणहियं ॥ ४७० ॥

ये हीना अवहारे रूपाः तैः गुणितं पूर्वफलं ।
हीनावहारेणाधिके अर्धं पूर्वं फलेनाधिकम् ॥ ४७० ॥

अर्थ— .... ॥ ४७० ॥

कोहदुसेसेणवहिदकोहे तकंडयं तु माणतिए ।
रूवहियं सगकंडयहिदकोहादी समाणसला ॥ ४७१ ॥

क्रोधद्विशेषेणावहितक्रोधे तत्कांडकं तु मानत्रये ।
रूपाधिकं स्वककांडकहितक्रोधादि समानशलाकाः ॥ ४७१ ॥

अर्थ—क्रोधके स्पर्धकप्रमाणको मानके स्पर्धकोंमें घटानेसे जो शेष रहे उसका भाग क्रोधके स्पर्धकोंके प्रमाणको देनेसे जो प्रमाण आवे उसका नाम क्रोध कांडक है और मानादि तीनमें एक एक अधिक है। और अपने २ कांडकोंका भाग अपने २ स्पर्धकोंमें देनेसे जो नाना कांडकोंका प्रमाण आता है उतने ही वर्गणाओंके अविभागप्रतिच्छेद चारों कषायोंके परस्पर समान होते हैं ॥ ४७१ ॥

ताहे दव्ववहारो पदेसगुणहाणिफड्डयवहारो ।
पल्लस्स पढममूलं असंखगुणियकमा होंति ॥ ४७२ ॥

तत्र द्रव्यावहारः प्रदेशगुणहानिस्पर्धकावहारः ।
पल्यस्य प्रथममूलं असंख्यगुणितक्रमा भवंति ॥ ४७२ ॥

अर्थ—अश्वकर्णकारकके प्रथमसमयमें सत्र द्रव्यको जिस अपकर्षण भागहारका भाग देनेसे प्रदेशोंका एक गुणहानिमें जितना स्पर्धकोंका प्रमाण है उसको जिसका भाग दिया वह असंख्यातगुणा है। इससे पल्यका प्रथमवर्गमूल असंख्यातगुणा है ॥ ४७२ ॥

[illegible]

ताहे अपुव्वफड्डयपुव्वस्सादीदणंतिमुदेदि ।
बंधो हु लताणंतिमभागोत्ति अपुव्वफड्डयदो ॥ ४७३ ॥

तस्मिन् अपूर्वस्पर्धकपूर्वस्यादितो अनंतिममुदेति ।
बंधो हि लतानंतिमभाग इति अपूर्वस्पर्धकतः ॥ ४७३ ॥

अर्थ—उस अश्वकर्णकरणके प्रथमसमयमें उदयनिषेकोंके सब अपूर्व स्पर्धक और पूर्वस्पर्धककी आदिसे लेकर उसका अनंतवां भाग उदय होता है। और लता भागसे अनंतवें भागमात्र अपूर्वस्पर्धकके प्रथम स्पर्धकसे लेकर अन्तस्पर्धकतक जो स्पर्धक हैं उनरूप होकर बंधरूप स्पर्धक परिणमते हैं ॥ ४७३ ॥

विदियादिसु समयेसु वि पढमं व अपुव्वफड्डयाण विही ।
णवरि य संखगुणूणं 'दव्वपमाणं तु' पडिसमयं ॥ ४७४ ॥
णवफड्डयाण करणं पडिसमयं एवमेव णवरिं तु ।
दव्वमसंखेज्जगुणं फड्डयमाणं असंखगुणहीणं ॥ ४७५ ॥

द्वितीयादिषु समयेषु अपि प्रथमं व अपूर्वस्पर्धकानां विधिः ।
नवरि च संख्यगुणोनं द्रव्यप्रमाणं तु प्रतिसमयम् ॥ ४७४ ॥
नवस्पर्धकानां करणं प्रतिसमयं एवमेव नवरि तु ।
द्रव्यमसंख्येयगुणं स्पर्धकमानं असंख्यगुणहीनम् ॥ ४७५ ॥

अर्थ—द्वितीयादि समयोंमें भी प्रथम समयवत् अपूर्वस्पर्धकोंकी विधि है। परंतु विशेष इतना है कि वहां द्रव्य तो क्रमसे असंख्यातगुणा बढता हुआ अपकर्षण किया जाता है और किये हुए नवीन स्पर्धकोंका प्रमाण असंख्यातगुणा घटता होता है ऐसा जानना ॥ ४७४।४७५॥

पढमादिसु दिज्जकमं तक्कालजफड्डयाण चरिमोत्ति ।
हीणकमं से काले असंखगुणहीणयं तु हीणकमं ॥ ४७६ ॥

प्रथमादिषु देयक्रमं तत्कालजस्पर्धकानां चरम इति ।
हीनक्रमं स्वे काले असंख्यगुणहीनकं तु हीनक्रमम् ॥ ४७६ ॥

अर्थ—अपूर्वस्पर्धक करण कालके प्रथमादि समयोंमें अपकर्षण द्रव्य देनेका क्रम उस कालमें किये स्पर्धकोंके अन्तपर्यंत तो विशेष हीन क्रम लिये है। उसके बाद असंख्यातगुणा घटता हुआ उसके ऊपर विशेष हीन क्रमलिये जानना ॥ ४७६ ॥

पढमादिसु दिस्सकमं तक्कालजफड्डयाण चरिमोत्ति ।
हीणकमं से काले हीणं हीणं कमं तत्तो ॥ ४७७ ॥

---

१ यह पाठ छपानेमें छूट हुआ था सो अभिप्रायके अनुसार लिखदिया है। [illegible] यह पाठ है नहीं लिखा है।

प्रथमादिषु द्रव्यक्रमं तत्कालजस्पर्धकानां चरम इति।
हीनक्रमं स्वे काले हीनं हीनं क्रमं ततः॥ ४७७॥

अर्थ—अपूर्वस्पर्धक करणकालके प्रथमादि समयोंमें देखनेयोग्य परमाणुओंका क्रम उस समयमें किये गये स्पर्धकोंकी अन्तवर्गणा पर्यंत विशेष घटता क्रमलिये है। और उसके ऊपर जो वर्गणा उसका भी द्रव्य क्रम एक चयमात्र घटता हुआ है ऐसा चय घटता क्रम जानना॥ ४७७॥

आगे प्रथम अनुभागकांडकके घात होनेपर क्या होता है वह दिखलाते हैं;—

पढमाणुभागखंडे पडिदे अणुभागसंतकम्मं तु।
लोभादणंतगुणिदं उवरिं पि अणंतगुणिदकमं॥ ४७८॥

प्रथमानुभागखंडे पतिते अनुभागसत्त्वकर्म तु।
लोभादनंतगुणितमुपर्यपि अनंतगुणितक्रमम्॥ ४७८॥

अर्थ—इस तरह प्रथम अनुभागखण्डके पतन होनेपर लोभसे अनन्तगुणा क्रमलिये अनुभागसत्त्वरूप कर्म होता है ऐसा जानना॥ ४७८॥

आदोलस्स य पढमे णिवत्तिदपुव्वफड्डयाणि बहु।
पडिसमयं पलिदोवममूलासंखेज्जभागभजियकमा॥ ४७९॥

आंदोलस्य च प्रथमे निर्वर्तितापूर्वस्पर्धकानि बहूनि।
प्रतिसमयं पलितोपममूलासंख्येयभागभजितक्रमम्॥ ४७९॥

अर्थ—आंदोलकरणके प्रथमसमयमें किये हुए अपूर्वस्पर्धक बहुत हैं उसके बाद समय समय प्रति पल्यके वर्गमूलका असंख्यातवां भागकर भाजित क्रमलिये हुए जानना॥४७९॥

आदोलस्स य चरिमे पुव्वादिमवग्गणाविभागादो।
दो चडिमादीणादी चडिदव्वामेत्तणंतगुणा॥ ४८०॥

आंदोलस्य च चरमे पूर्वादिमवर्गणाविभागात्।
द्विचटितादीनामादिः चटितव्यामात्रानंतगुणाः॥ ४८०॥

अर्थ—अश्वकर्णकालके अन्तसमयमें प्रथमस्पर्धककी आदिवर्गणामें अविभागप्रतिच्छेद अनुभागके थोड़े हैं उससे आगे दूसरे वगैरःके आदिकी वर्गणामें दूने तिगुने आदि अनन्तगुणे जानना॥ ४८०॥

आदोलस्स य पढमे रसखंडे पाडिदे अपुव्वादो।
कोहादो अहियकमा पदेसगुणहाणिफड्डया तत्तो॥ ४८१॥
होदि असंखेज्जगुणं इगिफड्डयवग्गणा अणंतगुणा।
तत्तो अणंतगुणिदा कोहस्स अपुव्वफड्डयाणं च॥ ४८२॥

माणादीणहियकमा लोभगपुव्वं च वग्गणा तेसिं ।
कोहोति य अट्ठपदा अणंतगुणिदकमा होंति ॥ ४८३ ॥

आंदोलस्य च प्रथमे रसखंडे पातिते अपूर्वान् ।
क्रोधान् अधिकक्रमाः प्रदेशगुणहानिस्पर्धकान्ततः ॥ ४८१ ॥
भवति असंख्येयगुणं एकस्पर्धकवर्गणा अनंतगुणा ।
ततो अनंतगुणितं क्रोधस्य अपूर्वस्पर्धकानां च ॥ ४८२ ॥
मानादीनामधिकक्रमं लोभगपूर्वं च वर्गणा तेषां ।
क्रोध इति च अष्ट पदानि अनंतगुणितक्रमाणि भवंति ॥ ४८३ ॥

अर्थ—अधकरणकालके प्रथम अनुभागकांडकका घात होनेपर हुए क्रोधके अपूर्वस्पर्धक थोड़े हैं उससे मानादिके विशेष अधिक क्रमलिये हुए हैं । उससे प्रदेशकी एक गुणहानिके स्पर्धकोंका प्रमाण असंख्यातगुणा है । उससे एकस्पर्धककी वर्गणाओंका प्रमाण अनन्तगुणा है । उससे क्रोधके सब अपूर्वस्पर्धकोंकी वर्गणाओंका प्रमाण अनंतगुणा है । उससे मानके सब अपूर्व स्पर्धकोंकी वर्गणा विशेष अधिक क्रमलिये हैं । और लोभके अपूर्वस्पर्धकोंकी वर्गणाओंके प्रमाणसे लोभके पूर्वस्पर्धकोंका प्रमाण अनन्तगुणा है । उससे लोभके पूर्वस्पर्धकोंकी वर्गणाका प्रमाण अनन्तगुणा है । उससे मायादिका प्रमाण क्रोधकी वर्गणापर्यंत उलटे क्रमसे अनन्तगुणा है । इस प्रकार आठ स्थानोंका अल्पबहुत्व जानना ॥ ४८१ । ४८२ । ४८३ ॥

रसठिदिखंडाणेवं संखेज्जसहस्सगाणि गंतूणं ।
तत्थ य अपुव्वफड्डयकरणविही णिट्ठिदा होई ॥ ४८४ ॥

रसस्थितिखंडानामेवं संख्येयसहस्रकाणि गत्वा ।
तत्र च अपूर्वस्पर्धककरणविधिर्निष्ठिता भवति ॥ ४८४ ॥

अर्थ—इसप्रकार क्रमसे हजारों अनुभागकांडक बीतजानेपर एकस्थितिकांडक होता है । ऐसे सख्यात हजार स्थितिकांडक जिसमें हों ऐसा अन्तर्मुहूर्तमात्र अधकरणकाल होनेपर अपूर्वस्पर्धककरणकी क्रिया पूर्ण होजाती है ॥ ४८४ ॥

आगे कृष्टि क्रियासहित अधकर्ण क्रिया होती है ऐसा यतिवृषभाचार्यका अभिप्राय कहते हैं;—

हयकण्णकरणचरिमे संजलणाणट्ठवस्सठिदिबंधो ।
वस्साणं संखेज्जसहस्साणि हवंति सेसाणं ॥ ४८५ ॥

हयकर्णकरणचरमे संज्वलनानामष्टवर्षस्थितिबंधः ।
वर्षाणां संख्येयसहस्राणि भवंति शेषाणाम् ॥ ४८५ ॥

अर्थ—अपूर्वस्पर्धक सहित अश्वकर्णकरणकालके अन्तसमयमें संज्वलनचारका आठ वर्षमात्र स्थितिबन्ध है । और शेषकर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यातहजार वर्षप्रमाण है । इसके पहले समयमें अधिक था ॥ ४८५ ॥

ठिदिसत्तमघादीणं असंखवस्साण होंति घादीणं ।
वस्साणं संखेज्जसहस्साणि हवंति णियमेण ॥ ४८६ ॥

स्थितिसत्त्वमघातिनामसंख्यवर्षा भवंति घातिनाम् ।
वर्षाणां संख्येयसहस्राणि भवंति नियमेन ॥ ४८६ ॥

अर्थ—उसी अन्तसमयमें अघातिया नाम गोत्र वेदनीयका स्थितिसत्त्व असंख्यातवर्षमात्र है पहले समयमें अधिक था । और चार घातियाकर्मोंका स्थितिसत्त्व संख्यातवर्षमात्र है ॥ ४८६ ॥ इस तरह अपूर्वस्पर्धकका अधिकार पूर्ण हुआ ।

आगे कृष्टिकरणमेंसे बादरकृष्टिकरणकालका प्रमाण कहते हैं;—

छक्कम्मे संछुद्धे कोहे कोहस्स वेदगद्धा जा ।
तस्स य पढमतिभागो होदि हु हयकण्णकरणद्धा ॥ ४८७ ॥
विदियतिभागो किट्टीकरणद्धा किट्टिवेदगद्धा हु ।
तदियतिभागो किट्टीकरणो हयकण्णकरणं च ॥ ४८८ ॥

षट्कर्मणि संक्षुब्धे क्रोधे क्रोधस्य वेदकाद्धा या ।
तस्य च प्रथमत्रिभागः भवति हि हयकर्णकरणाद्धा ॥ ४८७ ॥
द्वितीयत्रिभागः कृष्टिकरणाद्धा कृष्टिवेदकाद्धा हि ।
तृतीयत्रिभागः कृष्टिकरणं हयकर्णकरणं च ॥ ४८८ ॥

अर्थ—छह नोकषायोंको संज्वलनक्रोधमें संक्रमणकर अन्तर्मुहूर्तमात्र क्रोधवेदककाल है । उसमेंसे पहला त्रिभाग अश्वकर्णकरणका काल है, दूसरा त्रिभाग कुछ कम है वह चार संज्वलनकषायोंके कृष्टि करनेका काल है वह वर्त रहा है और तीसरा त्रिभाग कुछ कम है वह क्रोधकृष्टिका वेदककाल है सो आगे प्रवर्तेगा । इस कृष्टिकरणकालमें भी अश्वकर्णकरण पाया जाता है । क्योंकि यहां भी अश्वकरणके समान संज्वलनकषायोंका अनुभागसत्त्व का अनुभागकाण्डक वर्तता है इसलिये यहां कृष्टिसहित अश्वकर्णकरण पाया जाता है ॥ ४८७ । ४८८ ॥

कोहादीण सगसगपुधापुधगयफड्ढयेहिंतो ।
उक्कड्ढिदूण दव्वं ताण किट्टी करेदि कमे ॥ ४८९ ॥

[illegible]

[illegible]

अर्थ—संज्वलन क्रोध मान माया लोभका अपना २ पूर्व अपूर्वस्पर्द्धकरूप सब द्रव्यको अपकर्षण भागहारसे भाजितकर एकभागमात्रद्रव्य ग्रहणकर यथा क्रमसे उन क्रोधादिकोंकी कृष्टि करता है ॥ ४८९ ॥

उक्कट्टिददवस्स य पल्लासंखेज्जभागबहुभागो ।
बादरकिट्टिणिबद्धो फड्डयगे सेसइगिभागो ॥ ४९० ॥

अपकर्षितद्रव्यस्य च पल्यासंख्येयभागबहुभागः ।
बादरकृष्टिनिबद्धः स्पर्धके शेषैकभागः ॥ ४९० ॥

अर्थ—अपकर्षण किये द्रव्यको पल्यका असंख्यातवां भागसे भाजितकर बहुभागमात्र द्रव्य बादरकृष्टिका है और शेष एक भागमात्र द्रव्य पूर्व अपूर्व स्पर्धकोंमें निक्षेपण किया जाता है ॥ ४९० ॥

किट्टीयो इगिफड्डयवग्गणसंखाणणंतभागो दु ।
एक्केक्कम्हि कसाये तियंति अहवा अणंता वा ॥ ४९१ ॥

कृष्टय एकस्पर्धकवर्गणासंख्यानामनंतभागस्तु ।
एकैकस्मिन् कषाये त्रिकत्रिकमथवा अनंता वा ॥ ४९१ ॥

अर्थ—एकस्पर्धकमें वर्गणाशलाकाके अनन्तवें भागमात्र सब कृष्टियोंका प्रमाण है । अनुभागके अल्पबहुत्वकी अपेक्षा एक एक कषायमें संग्रह कृष्टि तीन तीन हैं और एक एक संग्रह कृष्टिमें अन्तर कृष्टियां अनन्त अनन्त हैं ॥ ४९१ ॥

अकसायकसायाणं दवस्स विभंजणं जहा होई ।
किट्टिस्स तहेव हवे कोहो अकसायपडिबद्धं ॥ ४९२ ॥

अकषायकषायाणां द्रव्यस्य विभंजनं यथा भवति ।
कृष्टेस्तथैव भवेत् क्रोधो अकषायप्रतिबद्धः ॥ ४९२ ॥

अर्थ—नोकषाय और कषायोंके द्रव्यका विभाग जैसे होता है वैसे ही इनकी कृष्टियोंके प्रमाणका विभाग जानना । और नोकषायकी कृष्टियां क्रोधकी कृष्टियोंमें जोड़नी । क्योंकि नोकषायोंका सब द्रव्य संज्वलनक्रोधरूप संक्रमण हुआ है ॥ ४९२ ॥

पढमादिसंगहाओ पल्लासंखेज्जभागहीणाओ ।
कोहस्स तदीयाए अकसायाणं तु किट्टीओ ॥ ४९३ ॥

प्रथमादिसंग्रहाः पल्यासंख्येयभागहीनाः ।
क्रोधस्य तृतीयायामकषायाना तु कृष्टयः ॥ ४९३ ॥

अर्थ—पूर्वरीतिसे प्रथम आदि बारह संग्रह कृष्टियोंका आयाम पल्यके असंख्यातवें

भागके क्रमसे घटना जानना। और नोकषायकी सब कृष्टियें क्रोधकी तीसरी संग्रहकृष्टिमें प्राप्त जाननी ॥ ४९३ ॥

कोहस्स य माणस्स य मायालोभोदएण चडिदस्स।
बारस णव छ त्तिण्णि य संगहकिट्टी कमे होंति ॥ ४९४ ॥

क्रोधस्य च मानस्य च मायालोभोदयेन चटितस्य।
द्वादश नव षट् त्रीणि च संग्रहकृष्टयः क्रमेण भवंति ॥ ४९४ ॥

अर्थ—संज्वलनक्रोधके उदय सहित श्रेणी चढनेवाले जीवके चारों कषायोंकी बारह संग्रह कृष्टि होतीं हैं। मानके उदय सहितके तीन कषायोंकी नौ संग्रह कृष्टियां होतीं हैं। मायाके उदय सहितके छह संग्रह कृष्टियां और लोभके उदयसहित श्रेणी चढनेवालेके लोभकी ही तीन संग्रह कृष्टियां होतीं हैं ॥ ४९४ ॥

संगहगे एक्केक्के अंतरकिट्टी हवंति हु अणंता।
लोभादि अणंतगुणा कोहादि अणंतगुणहीणा ॥ ४९५ ॥

संग्रहके एकैकस्मिन् अंतरकृष्टयो भवंति हि अनंताः।
लोभादौ अनंतगुणाः क्रोधादौ अनंतगुणहीनाः ॥ ४९५ ॥

अर्थ—एक एक संग्रह कृष्टिमें अन्तर कृष्टियां अनन्त हैं। उनमें लोभसे लेकर क्रमसे अनन्तगुणा बढता और क्रोधसे लेकर क्रमसे अनन्तगुणा घटता अनुभाग पाया जाता है ॥ ४९५ ॥

लोभादी कोहोत्ति य सट्ठाणंतरमणंतगुणिदकमं।
तत्तो बादरसंगहकिट्टी अंतरमणंतगुणिदकमं ॥ ४९६ ॥

लोभादितः क्रोधांतं च स्वस्थानांतरमनंतगुणितक्रमं।
ततो बादरसंग्रहकृष्टेरंतरमनंतगुणितक्रमम् ॥ ४९६ ॥

अर्थ—लोभसे लेकर क्रोधतक स्वस्थान अन्तर अनन्तगुणा क्रमलिये है। उससे बादर-संग्रहकृष्टियोंका अन्तर अनन्तगुणा क्रमलिये है ॥ ४९६ ॥

लोहस्स अवरकिट्टिगदव्वादो कोधजेट्ठकिट्टिस्स।
दव्वोत्ति य हीणकमं देदि अणंतेण भागेण ॥ ४९७ ॥

लोभस्य अवरकृष्टिगद्रव्यात् क्रोधज्येष्ठकृष्टेः।
द्रव्यांतं च हीनक्रमं दीयते अनंतेन भागेन ॥ ४९७ ॥

अर्थ—लोभकी जघन्य कृष्टिके द्रव्यसे लेकर क्रोधकी उत्कृष्टकृष्टिके द्रव्यतक हीन क्रमलिये द्रव्य दिया जाता है वह अनन्तभाग घटता क्रमलिये है ॥ ४९७ ॥

लोभस्स अवरकिट्टिगदव्वादो कोधजेट्ठकिट्टिस्स ।
दव्वं तु होदि हीणं असंखभागेण जोगेण ॥ ४९८ ॥
लोभस्यावरकृष्टिगद्रव्यतः क्रोधज्येष्ठकृष्टेः ।
द्रव्यं तु भवति हीनं असंख्यभागेन योगेन ॥ ४९८ ॥

अर्थ—लोभकी जघन्यकृष्टिके द्रव्यसे क्रोधकी उत्कृष्ट कृष्टिका द्रव्य असंख्यातवें भागकर हीन है ॥ ४९८ ॥

पडिसमयमसंखगुणं कमेण उक्कट्टिदूण दव्वं खु ।
संग्गहहेट्ठापासे अपुव्वकिट्टी करेदी हु ॥ ४९९ ॥
प्रतिसमयमसंख्यगुणं क्रमेणापकृष्य द्रव्यं खलु ।
संग्रहाधस्तनपार्श्वे अपूर्वकृष्टिं करोति हि ॥ ४९९ ॥

अर्थ—समय २ प्रति असंख्यातगुणा क्रमलिये द्रव्यको अपकर्षणकर संग्रह कृष्टिके नीचे वा पार्श्वमें अपूर्वकृष्टिको करता है ॥ ४९९ ॥

पूर्वसमयमें की हुई कृष्टियोंमें जो नवीनद्रव्यका निक्षेपण करना वह पार्श्वमें करना समझना ।

हेट्ठा असंखभागं फासे वित्थारदो असंखगुणं ।
मज्झिमखंडं उभये दव्वविसेसे हवे फासे ॥ ५०० ॥
अधस्तनमसंख्यभागं पार्श्वे विस्तारतो असंख्यगुणं ।
मध्यमखंडमुभयं द्रव्यविशेषं भवति पार्श्वे ॥ ५०० ॥

अर्थ—संग्रहके नीचे की हुई कृष्टियोंका प्रमाण सबके असंख्यातवें भागमात्र है और पार्श्वमें की हुई कृष्टियोंका प्रमाण उनसे असंख्यात गुणा है । वहां पार्श्वमें की हुई कृष्टियोंमें मध्यमखण्ड और उभयद्रव्य विशेष होता है ॥ ५०० ॥

पुव्वादिम्हि अपुव्वा पुव्वादि अपुव्वपढमगे सेसे ।
दिज्जदि असंखभागेणूणं अहियं अणंतभागूणं ॥ ५०१ ॥
पूर्वादौ अपूर्वा पूर्वादी अपूर्वप्रथमके शेषे ।
दीयते असंख्यभागेनोनमधिकं अनंतभागोनं ॥ ५०१ ॥

अर्थ—अपूर्व (नवीन) कृष्टिकी अन्तकृष्टिमें पहले जो पुरातनकृष्टि उसकी आदि कृष्टिमें असंख्यातवें भाग घटता द्रव्य दिया जाता है और पूर्व (पुरातन) कृष्टिकी अन्तकृष्टिमें अपूर्व (नवीन) कृष्टि उसकी प्रथमकृष्टिमें असंख्यातवां भागमात्र अधिक द्रव्य दिया जाता है । तथा शेष सब कृष्टियोंमें पूर्वकृष्टिसे उत्तरकृष्टिमें द्रव्य अनंतवां भागमात्र घटता हुआ दिया जाता है ॥ ५०१ ॥

वारेक्कारमणंतं पुव्वादि अपुव्वआदि सेसं तु ।
तेवीस ऊंटकूडा दिज्जे दिस्से अणंतभागूणं ॥ ५०२ ॥
द्वादशैकादशमनंतं पूर्वादि अपूर्वादि शेषं तु ।
त्रयोविंशतिरुष्ट्रकूटा देये दृश्ये अनंतभागोनम् ॥ ५०२ ॥

अर्थ—पुरातन प्रथमकृष्टि बारह और नवीन प्रथमकृष्टि ग्यारह तथा शेषकृष्टियां अनंत जानना । इसप्रकार देयद्रव्यमें तेवीस स्थानोंमें उष्ट्रकूट (ऊंटकी पीठ समान) रचना होती है । और दृश्यमानद्रव्यमें अनन्तवें भागमात्र घटता हुआ क्रम जानना ॥ ५०२ ॥

किट्टीकरणद्धाए चरिमे अंतोमुहुत्तसुव्वत्तो ।
चत्तारि होंति मासा संजलणाणं तु ठिदिबंधो ॥ ५०३ ॥
कृष्टिकरणाद्धायाः चरमे अंतर्मुहूर्तसंयुक्ताः ।
चत्वारो भवंति मासाः संज्वलनानां तु स्थितिबंधः ॥ ५०३ ॥

अर्थ—कृष्टिकरणकालके अन्तसमयमें अन्तर्मुहूर्त अधिक चार मास प्रमाण संज्वलन-चारका स्थितिबन्ध है । अपूर्वस्पर्धककरणकालके अन्तसमयमें आठ वर्षमात्र था वह एक एक स्थितिबन्धापसरणमें अन्तर्मुहूर्तमात्र कम होकर यहां इतना रहजाता है ॥ ५०३ ॥

सेसाणं वस्साणं संखेज्जसहस्सगाणि ठिदिबंधो ।
मोहस्स य ठिदिसंतं अडवस्संतोमुहुत्तहियं ॥ ५०४ ॥
शेषाणां वर्षाणां संख्येयसहस्रकानि स्थितिबंधः ।
मोहस्य च स्थितिसत्त्वं अष्टवर्षोन्तर्मुहूर्ताधिकः ॥ ५०४ ॥

अर्थ—शेषकर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यातहजार वर्षमात्र है । पहले भी संख्यातहजार वर्ष-मात्र ही था वह संख्यातगुणा घटता क्रमरूप संख्यातहजार स्थितिबन्धापसरण होनेपर भी आलापकर इतना ही कहा है । और मोहनीयका स्थितिसत्त्व पहले संख्यातहजार वर्षमात्र था वह घटकर यहां अन्तर्मुहूर्त अधिक आठवर्षमात्र रहा है ॥ ५०४ ॥

घादितियाणं संखं वस्ससहस्साणि होदि ठिदिसंतं ।
वस्साणमसंखेज्जसहस्साणि अघादितिण्णं तु ॥ ५०५ ॥
घातित्रयाणां संख्यं वर्षसहस्राणि भवति स्थितिसत्त्वम् ।
वर्षाणामसंख्येयसहस्राणि अघातित्रय तु ॥ ५०५ ॥

अर्थ—[illegible] स्थितिसत्त्व है और तीन अघाति-[illegible]

पडिपदमणंतगुणिदा किट्टीणं फड्डया विसेसहिया ।
किट्टीण फड्डयाण [illegible]णमणुभागमासेज्ज ॥ ५०६ ॥

प्रतिपदमनंतगुणिता कृष्टयः स्पर्धका विशेषाधिकाः ।
कृष्टीनां स्पर्धकानां लक्षणमनुभागमासाद्य ॥ ५०६ ॥

अर्थ—कृष्टियां प्रतिपद अनन्तगुणा अनुभागलिये है । स्पर्धक विशेष अधिक अनुभागलिये हैं । इसप्रकार अनुभागका आश्रयकर कृष्टि और स्पर्धकोंका लक्षण है । द्रव्यकी अपेक्षा तो चय घटता क्रम दोनोंमें ही है परंतु अनुभागके क्रमकी अपेक्षा इनका लक्षण जुदा कहा है ॥ ५०६ ॥

पुव्वापुव्वप्फड्डयमणुहवदि हु किट्टिकारओ णियमा ।
तस्सद्धा णिट्ठायदि पढमट्ठिदि आवलीसेसे ॥ ५०७ ॥

पूर्वापूर्वस्पर्धकमनुभवति हि कृष्टिकारको नियमात् ।
तस्याद्धा निष्ठापयति प्रथमस्थितौ आवलिशेषे ॥ ५०७ ॥

अर्थ—कृष्टिकरनेवाला उस कालमें पूर्व अपूर्वस्पर्धकोंके ही उदयको नियमसे भोगता है । इसप्रकार संज्वलनक्रोधकी प्रथमस्थितिमें उच्छिष्टावलीमात्र काल शेष रहनेपर उस कृष्टिकरणकालको समाप्त करता है ॥ ५०७ ॥ इसतरह कृष्टिकरण अधिकार हुआ ।

अब कृष्टिवेदना अधिकारको कहते हैं;—

से काले किट्टीओ अणुहवदि हु चारिमासमडवस्सं ।
बंधो संतं मोहे पुव्वालावं तु सेसाणं ॥ ५०८ ॥

स्वे काले कृष्टीन् अनुभवति हि चतुर्मासमष्टवर्षं ।
बंधः सत्त्वं मोहे पूर्वालापस्तु शेषाणाम् ॥ ५०८ ॥

अर्थ—अपने कृष्टिवेदककालमें कृष्टियोंके उदयको अनुभवता है । द्वितीय स्थितिके निषेकोंमें स्थित कृष्टियोंको प्रथमस्थितिके निषेकोंमें प्राप्तकर भोगता है उस भोगनेका नाम वेदना है । उसके कालके प्रथमसमयमें चार संज्वलनरूप मोहका स्थितिबन्ध चार महीने है और स्थितिसत्त्व आठवर्षमात्र है । तथा शेषकर्मोंका स्थितिबन्ध स्थितिसत्त्व आलापकर पूर्वोक्तप्रकार जानना ॥ ५०८ ॥

ताहे कोहुच्छिट्ठं सव्वं घादी हु देसघादी हु ।
दोसमऊणदुआवलिणवकं ते फड्डयगदाओ ॥ ५०९ ॥

तत्र क्रोधोच्छिष्टं सर्वं घातिर्हि देशघातिर्हि ।
द्विसमयोनद्व्यावलिनवकं तत् स्पर्धकगतम् ॥ ५०९ ॥

अर्थ—अनुभाग सत्त्व है वह क्रोधकी उच्छिष्टावलिका तो सर्वघाती है । और संज्वलन चौकड़ीका दो समय कम दो आवलिमात्र नवक समय प्रबद्धका अनुभाग देशघातिशक्तिकर सहित है । क्योंकि कृष्टिरूप बन्ध नहीं है इसलिये स्पर्धकरूप शक्तिकर युक्त है ॥ ५०९ ॥

लोहादो कोहादो कारउ वेदउ हवे किट्टी।
आदिमसंगहकिट्टिं वेदयदि ण विदिय तिदियं च ॥ ५१० ॥

लोभात् क्रोधात् कारको वेदको भवेत् कृष्टेः।
आदिमसंग्रहकृष्टिं वेदयति न द्वितीयां तृतीयां च ॥ ५१० ॥

अर्थ—कृष्टिका कारक तो लोभसे लेकर क्रमरूप है और वेदक है वह क्रोधसे लेकर क्रमरूप है। तथा यहां पहले क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिको ही अनुभवता है द्वितीय तृतीय संग्रह कृष्टिको नहीं अनुभवता ऐसा जानना ॥ ५१० ॥

किट्टीवेदगपढमे कोहस्स पढमसंगहादो दु।
कोहस्स य पढमठिदी पत्तो उवट्टगो मोहे ॥ ५११ ॥

कृष्टिवेदकप्रथमे क्रोधस्य प्रथमसंग्रहात् तु।
क्रोधस्य च प्रथमस्थितिं प्राप्तः अपवर्तको मोहे ॥ ५११ ॥

अर्थ—कृष्टिवेदककालके प्रथमसमयमें क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिसे क्रोधकी प्रथमस्थिति करता है, इसप्रकार मोहका घात करता है ॥ ५११ ॥

पढमस्स संगहस्स य असंखभागा उदेदि कोहस्स।
बंधेवि तहा चेव य माणतियाणं तहा बंधे ॥ ५१२ ॥

प्रथमस्य संग्रहस्य च असंख्यभागान् उदयति क्रोधस्य।
बंधेपि तथा चैव च मानत्रयाणां तथा बंधे ॥ ५१२ ॥

अर्थ—कृष्टिवेदकके प्रथमसमयमें क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तर कृष्टियोंके असंख्यात बहुभाग उदय आते हैं। इसीतरह बन्धमें भी बीचकी असंख्यात बहुभागमात्र कृष्टियां जानना। उसीप्रकार मानादि तीनकी असंख्यात बहुभागमात्र कृष्टियां बन्धवर्ती हैं ॥ ५१२ ॥

कोहस्स पढमसंगहकिट्टिस्स य हेट्ठिमणुभयट्ठाणा।
तत्तो उदयट्ठाणा उवरिं पुण अणुभयट्ठाणा ॥ ५१३ ॥
उवरिं उदयट्ठाणा चत्तारि पदाणि होंति अहियकमा।
मज्झे उभयट्ठाणा होंति असंखेज्जसंगुणिया ॥ ५१४ ॥

क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकृष्टेश्चाधस्तनानुभयस्थानानि।
तत उदयस्थानानि उपरि पुनरनुभयस्थानानि ॥ ५१३ ॥
उपरि उदयस्थानानि चत्वारि पदानि भवंति अधिकक्रमाणि।
मध्ये उभयस्थानानि भवंति असंख्येयसंगुणितानि ॥ ५१४ ॥

अर्थ—क्रोधकी प्रथमसंग्रहकृष्टिकी अन्तरकृष्टियोंमें नीचले अनुभय स्थान थोड़े हैं उसमें उस कृष्टिके उदयस्थान पल्यके असंख्यातवें भागकर अधिक हैं । उससे ऊपरके अनुभयस्थानरूप कृष्टियोंका प्रमाण अधिक है और उससे उदयस्थान अधिक हैं । इसतरह चार पद तो अधिकक्रम लिये हैं । उससे असंख्यातगुणे बीचके उभयस्थान हैं ॥५१३।५१४॥ यह प्रथमसमयमें अल्पबहुत्व कहा है ।

विदियादिसु चउठाणा पुव्विलेहिं असंखगुणहीणा ।
तत्तो असंखगुणिदा उवरिमणुभया तदो उभया ॥ ५१५ ॥

द्वितीयादिषु चतुःस्थानानि पूर्वेभ्यो असंख्यगुणहीनानि ।
ततो असंख्यगुणितानि उपर्यनुभयानि तत उभयानि ॥ ५१५ ॥

अर्थ—कृष्टिकरणकालके द्वितीयादिसमयोंमें चारों स्थान पूर्वसे असंख्यातगुणे कम हैं उससे असंख्यातगुणे ऊपरके अनुभयस्थान हैं उससे बीचमें बन्ध उदयरूप उभयकृष्टियां असंख्यातगुणी हैं ॥ ५१५ ॥

पुव्विलबंधजेट्ठा हेट्ठासंखेज्जभागमोदरिय ।
संपडिगो चरिमोदयवरमवरं अणुभयाणं च ॥ ५१६ ॥

पौर्विकबंधज्येष्ठात् अधस्तनमसंख्येयभागमवतीर्य ।
सांप्रतिकः चरमोदयवरमवरं अनुभयानां च ॥ ५१६ ॥

अर्थ—पूर्वसमयके बन्धकी उत्कृष्टकृष्टिसे लेकर असंख्यातवें भागमात्र कृष्टि नीचे उतरकर वर्तमान उत्तरसमयकी अन्तकी केवल उदयरूप उत्कृष्ट कृष्टि होती है । उसके बाद ऊपर अनुभयकृष्टिकी जघन्यकृष्टि पाई जाती है ॥ ५१६ ॥

हेट्ठिमणुभयवरादो असंखबहुभागमेत्तमोदरिय ।
संपडिबंधजहण्णं उदयुक्कस्सं च होदित्ति ॥ ५१७ ॥

अधस्तनानुभयवरात् असंख्यबहुभागमात्रमवतीर्य ।
संप्रतिबंधजघन्यं उदयोत्कृष्टं च भवतीति ॥ ५१७ ॥

अर्थ—पूर्वसमयकी अनुभय कृष्टियोंका असंख्यात बहुभागमात्र कृष्टि नीचे उतरकर वर्तमान बन्धकृष्टिकी जघन्यकृष्टि होती है उसके बाद उदयकृष्टि उत्कृष्ट होती है ॥५१७॥

पडिसमयं अहिगदिणा उदये बंधे च होदि उक्कस्सं ।
बंधुदये च जहण्णं अणंतगुणहीणगा किट्टी ॥ ५१८ ॥

प्रतिसमयमहिगतिना उदये बंधे च भवति उत्कृष्टं ।
बंधोदये च जघन्य अनंतगुणहीनका कृष्टिः ॥ ५१८ ॥

अर्थ—समय समय प्रति सर्पकी गतिकी तरह उत्कृष्ट तो उदय और बन्धमें होती

है तथा जघन्य कृष्टि घना और उदयमें अनन्तगुणा घटता क्रमलिये अनुभाग अपेक्षा जानना ॥ ५१८ ॥

अब संक्रमणद्रव्यका विधान कहते हैं;—

संकमदि संगहाणं दव्वं सगहेट्ठिमस्स पढमोत्ति ।
तदणुदये संखगुणं इदरेसु हवे जहाजोग्गं ॥ ५१९ ॥

संक्रामति संग्रहाणां द्रव्यं स्वकाधस्तनस्य प्रथम इति ।
तदनुदये संख्यगुणमितरेषु भवेत् यथायोग्यम् ॥ ५१९ ॥

अर्थ—संग्रह कृष्टिका द्रव्य है वह अपनी कषायके नीचेकी कषायकी प्रथमसंग्रहकृष्टितक संक्रमण करता है । उसके बाद भोगने योग्य संग्रह कृष्टिमें संख्यातगुणा द्रव्य संक्रमण होता है । अन्यकृष्टियोंमें यथायोग्य संक्रमण होता है ॥ ५१९ ॥

आगे अनुसमय अपवर्तनकी प्रवृत्तिका क्रम कहते हैं;—

पडिसमयं संखेज्जदिभागं णासेदि कंडयेण विणा ।
बारससंगहकिट्टीणग्गादो किट्टिवेदगो णियमा ॥ ५२० ॥

प्रतिसमयं संख्येयभागं नाशयति कांडकेन विना ।
द्वादशसंग्रहकृष्टीनामग्रतः कृष्टिवेदको नियमात् ॥ ५२० ॥

अर्थ—कृष्टिवेदक जीव है वह कांडक विना बारह संग्रह कृष्टियोंके अग्रभागसे सब कृष्टियोंके असंख्यातवें भागको हरसमय नियमसे नष्ट करता है ॥ ५२० ॥

णासेदि परट्ठाणिय गोउंछं अग्गकिट्टिघादादो ।
सट्ठाणियगोउच्छं संकमदव्वादु घादेदि ॥ ५२१ ॥

नाशयति परस्थानिकं गोपुच्छमग्रकृष्टिघातात् ।
स्वस्थानिकगोपुच्छं संक्रमद्रव्यात् घातयति ॥ ५२१ ॥

अर्थ—अग्रकृष्टिघातसे तो परस्थान गोपुच्छको नष्ट करता है और संक्रम द्रव्यसे स्वस्थान गोपुच्छको नष्ट करता है ॥ ५२१ ॥

आयादो वयमहियं हीणं सरिसं कहिंपि अण्णं च ।
तम्हा आयद्दव्वा ण होदि सट्ठाणगोउच्छं ॥ ५२२ ॥

आयो [illegible]मधिकं हीनं सदृशं कुत्रापि अन्यत्र ।
तस्मा[illegible] भवति स्वस्थानगोपुच्छम् ॥ [illegible] ॥

अर्थ—[illegible] संग्रहकृष्टिमें [illegible] आयद्रव्यसे व्ययद्रव्य अधिक है कहीं हीन है कहीं समान है कहीं [illegible] है । [illegible] आयद्रव्यसे स्वस्थान गोपुच्छ नहीं होता ॥ ५२२ ॥

अब जिसतरह ससान परसान गोपुच्छका सद्भाव होता है वैसे कहते हैं;—

घादयदवादो पुण वय आयदखेत्तदवं देदि ।
सेसासंखाभागे अणंतभागूणयं देदि ॥ ५२३ ॥

घातकद्रव्यात् पुनर्व्ययमायतक्षेत्रद्रव्यकं ददाति ।
शेषासंख्यभागे अनंतभागोनकं ददाति ॥ ५२३ ॥

अर्थ—घातद्रव्यसे व्यय और आयतक्षेत्र द्रव्यको देनेसे एक ससान गोपुच्छ होता है । शेष असंख्यातभागमें अनन्तभाग कम द्रव्य दिया जाता है यह दूसरा गोपुच्छ हुआ ॥ ५२३ ॥

उदयगदसंगहस्स य मज्झिमखंडादिकरणमेदेण ।
दवेण होदि णियमा एवं सवेसु समयेसु ॥ ५२४ ॥

उदयगतसंग्रहस्य च मध्यमखंडादिकरणमेतेन ।
द्रव्येण भवति नियमादेवं सर्वेषु समयेषु ॥ ५२४ ॥

अर्थ—उदयको प्राप्त संग्रह कृष्टिका इस घात द्रव्यसे ही मध्यमखण्डादि करना होता है । इसतरह समयसमय प्रति सब समयोंमें विधान होना है ॥ ५२४ ॥ इसप्रकार घातद्रव्यकर एक गोपुच्छ हुआ ।

अब दूसरा विधान कहते हैं;—

हेट्ठाकिट्टिप्पहुदिसु संकमिदासंखभागमेत्तं तु ।
सेसा संखाभागा अंतरकिट्टिस्स दवं तु ॥ ५२५ ॥

अधस्तनकृष्टिप्रभृतिषु संक्रमितासंख्यभागमात्रं तु ।
शेषा असंख्यभागा अंतरकृष्टेर्द्रव्यं तु ॥ ५२५ ॥

अर्थ—संक्रमणद्रव्यका असंख्यातवां भाग द्रव्य नीचेकी कृष्टिमें दिया जाता है और शेष असंख्यात बहुभाग अन्तरकृष्टियोंका द्रव्य है इसीसे अन्तरकृष्टिकी जाती है ॥५२५॥

बंधदवाणंतिमभागं पुण पुवकिट्टिपडिबद्धं ।
सेसाणंता भागा अंतरकिट्टिस्स दवं तु ॥ ५२६ ॥

बंधद्रव्यानंतिमभागं पुनः पूर्वकृष्टिप्रतिबद्धम् ।
शेषानंता भागा अंतरकृष्टेर्द्रव्यं तु ॥ ५२६ ॥

अर्थ—बन्धद्रव्यका अनन्तवां भाग पूर्वकृष्टि संबन्धी है और शेष अनन्त बहुभाग अन्तर कृष्टियोंका द्रव्य है । इस द्रव्यसे नवीन अन्तरकृष्टि की जाती है ॥ ५२६ ॥

कोहस्स पढमकिट्टिं मोत्तूणेकारसंगहाणं तु।
बंधणसंकमदव्वादपुव्वकिट्टिं करेदी हु ॥ ५२७ ॥

क्रोधस्य प्रथमकृष्टिं मुक्त्वा एकादशसंग्रहाणां तु।
बंधनसंक्रमद्रव्यादपूर्वकृष्टिं करोति हि ॥ ५२७ ॥

अर्थ—क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिके विना शेष ग्यारह संग्रह कृष्टियोंके यथासंभव बन्धद्रव्य अथवा संक्रमद्रव्यसे अपूर्व कृष्टि करता है ॥ ५२७ ॥

संखातीदगुणाणि य पल्लस्सादिमपदाणि गंतूण ।
एक्केक्कबंधकिट्टी किट्टीणं अंतरे होदि ॥ ५२८ ॥

संख्यातीतगुणानि च पल्यस्यादिमपदानि गत्वा।
एकैकबंधकृष्टिः कृष्टीनामंतरे भवति ॥ ५२८ ॥

अर्थ—अवयवकृष्टियोंका असंख्यातवां भागमात्र बन्ध योग्य नहीं है और बीचमें जो बन्धने योग्य हैं उनकी दो कृष्टियोंके बीचमें एक अन्तराल है ऐसे पल्यके प्रथमवर्गमूल-मात्र अन्तरालोंको छोड़कर उन कृष्टियोंके बीचमें एक एक अपूर्वकृष्टि होती है ॥ ५२८॥

दिज्जदि अणंतभागेणूणकमं बंधगे य णंतगुणं।
तण्णंतरे णंतगुणूणं तत्तोणंतभागूणं ॥ ५२९ ॥

दीयते अनंतभागेनोनक्रमं बंधके चानंतगुणम्।
तदनंतरेऽनंतगुणोनं ततोऽनंतभागोनम् ॥ ५२९ ॥

अर्थ—अनन्तवें भागमात्रसे घटता द्रव्य दूसरी कृष्टिमें देते हैं जबतक अपूर्व कृष्टि प्राप्त न हो तबतक यह क्रम है। और उसके बाद पूर्वकृष्टियोंमें अनन्तगुना घन द्रव्य दिया जाता है। उसके बाद अनन्तवां भागरूप विशेष घटता क्रमलिये द्रव्य दिया जाता है जबतक कि अपूर्वकृष्टि प्राप्त न हो ॥ ५२९॥ इसप्रकार बन्धकृष्टिका स्वरूप कहा।

संकमदो किट्टीणं संगहकिट्टीणमंतरे होदि।
संगह अंतरजादो किट्टी अंतरभवा असंखगुणा ॥ ५३० ॥

संक्रमतः कृष्टीनां संग्रहकृष्टीनामंतरे भवति।
संग्रहे अन्तरजाताः कृष्ट्यंतर्भवा असंख्यगुणा ॥ ५३० ॥

अर्थ—संक्रमण द्रव्यसे उत्पन्न हुई अपूर्वकृष्टियां कितनी एक तो संग्रहकृष्टियोंके नीचे होती हैं [illegible] उत्पन्न होती हैं [illegible] संग्रहकृष्टियोंके अन्तरालमें [illegible] असंख्यातगुणी हैं ॥ ५३०॥

संगहअंतरजाणं अपुव्वकिट्टिं व बंधकिट्टिं वा ।
इदराणमंतरं पुण पल्लपदासंखभागं तु ॥ ५३१ ॥

संग्रहांतरजानामपूर्वकृष्टिमिव बंधकृष्टिमिव ।
इतरेषामंतरं पुनः पल्यपदासंख्यभागस्तु ॥ ५३१ ॥

अर्थ—संग्रहकृष्टियोंके नीचे कृष्टि की थीं वहां द्रव्य देनेका विधान अपूर्वकृष्टिके समान जानना । और दूसरी कृष्टियोंका अन्तराउरूपस्थान पल्यके वर्गमूलका असंख्यातवां भाग है ॥ ५३१ ॥

कोहादिकिट्टिवेदगपढमे तस्स य असंखभागं तु ।
णासेदि हु पडिसमयं तस्सासंखेज्जभागकमं ॥ ५३२ ॥

क्रोधादिकृष्टिवेदकप्रथमे तस्य च असंख्यभागस्तु ।
नाशयति हि प्रतिसमयं तस्यासंख्येयभागक्रमम् ॥ ५३२ ॥

अर्थ—क्रोधकी प्रथमसंग्रहकृष्टिका वेदक जीव प्रथमसमयमें सब कृष्टियोंका असंख्यातवां भागमात्र कृष्टियोंको नाश करता है और इसीतरह क्रमसे हरएक समयमें असंख्यातवां भागमात्र घात जानना ॥ ५३२ ॥

कोहस्स य जे पढमे संगहकिट्टिम्हि णट्ठकिट्टीओ ।
बंधुज्झियकिट्टीणं तस्स असंखेज्जभागो हु ॥ ५३३ ॥

क्रोधस्य च ये प्रथमे संग्रहकृष्टौ नष्टकृष्टयः ।
बंधोज्झितकृष्टीनां तस्यासंख्येयभागो हि ॥ ५३३ ॥

अर्थ—क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिवेदकके सब कालमें जो कृष्टियां घात हुईं उनका प्रमाण बन्धरहित कृष्टियोंके प्रमाणके असंख्यातवें भाग है ॥ ५३३ ॥

कोहादिकिट्टियादिट्ठिदिम्हि समयाहियावलीसेसे ।
ताहे जहण्णुदीरद चरिमो पुण वेदगो तस्स ॥ ५३४ ॥

क्रोधादिकृष्टिकादिस्थितौ समयाधिकावलीशेषे ।
तत्र जघन्यमुदीरयति चरमः पुनर्वेदकस्तस्य ॥ ५३४ ॥

अर्थ—क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी प्रथमस्थितिमें समय अधिक आवलि शेष रहनेपर जघन्यस्थितिकी उदीरणा करता है और वहां ही उस वेदकका अन्तसमय होता है ॥ ५३४ ॥

ताहे संजलणाणं बंधो अंतोमुहुत्तपरिहीणो ।
सत्तोवि य सददिवसा अडमासब्भहियछव्वरिसा ॥ ५३५ ॥

तत्र संज्वलनानां बंधो अन्तर्मुहूर्तपरिहीनः ।
सत्त्वमपि च शतदिवसा अष्टमासाभ्यधिकषड्वर्षाः ॥ ५३५ ॥

अर्थ—यहां संज्वलनका स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्तकम सौ दिन है, पहले चार महीने था । और उसका स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्तकम आठमहीना अधिक छह वर्ष है, पहले आठवर्ष था सो घटकर इतना रहा ॥ ५३५ ॥

घादितियाणं बंधो दसवासं तोमुहुत्तपरिहीणा ।
सत्तं संखं वस्सा सेसाणं संखऽसंखवस्साणि ॥ ५३६ ॥

घातित्रयाणां बंधो दशवर्षा अंतर्मुहूर्तपरिहीनाः ।
सत्त्वं संख्यं वर्षाः शेषाणां संख्यासंख्यवर्षाः ॥ ५३६ ॥

अर्थ—घातिकर्मोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तकम दशवर्षमात्र है और उनका स्थितिसत्त्व संख्यातहजार वर्षमात्र है तथा अघातिकर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यातहजार वर्षमात्र है और आयुके विना तीन अघातियाओंका स्थितिसत्त्व असंख्यातवर्षमात्र है ॥ ५३६ ॥ इसप्रकार क्रोधकी प्रथमसंग्रह कृष्टिवेदकका कथन किया ।

से काले कोहस्स य विदियादो संगहादु पढमठिदी ।
कोहस्स विदियसंगहकिट्टिस्स य वेदगो होदि ॥ ५३७ ॥

स्वे काले क्रोधस्य च द्वितीयतः संग्रहात् प्रथमस्थितिः ।
क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकृष्टेश्च वेदको भवति ॥ ५३७ ॥

अर्थ—उसके बाद अपने कालमें क्रोधकी द्वितीयसंग्रहकृष्टिसे अपकर्षणकर उदयादि गुणश्रेणीरूप प्रथमस्थिति करता है वहांपर ही क्रोधकी द्वितीयसंग्रह कृष्टिका वेदक होता है ॥ ५३७ ॥

कोहस्स पढमसंगहकिट्टिस्सावलिपमाण पढमठिदी ।
दोसमऊणदुआवलिणवकं च वि चेउदे ताहे ॥ ५३८ ॥

क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकृष्टेरावलिप्रमाणं प्रथमस्थितिः ।
द्विसमयोनद्व्यावलिनवकं चापि चतुर्दश तत्र ॥ ५३८ ॥

अर्थ—क्रोधकी प्रथमसंग्रहकृष्टिकी प्रथमस्थितिमें उच्छिष्टावलिमात्र निषेक और द्वितीयस्थितिमें दो समय कम दो आवलिमात्र नवकसमयप्रबद्धरूप निषेक शेष सत्त्वरूप रहते हैं उसकालमें क्रोधकी द्वितीयसंग्रहकृष्टिका द्रव्य चौदहगुना होजाता है ॥ ५३८ ॥

पढमादिसंगहाणं चरिमे फालिं तु विदियपहुदीणं ।
हेट्ठा सव्वं देदि हु मज्झे पुव्वं व इगिभागं ॥ ५३९ ॥

प्रथमादिसंग्रहाणां चरमे फालिं तु द्वितीयप्रभृतीनाम् ।
अधस्तनं सर्वं ददाति हि मध्ये पूर्वं इव एकभागम् ॥ ५३९ ॥

अर्थ—प्रथमादिसंग्रह कृष्टियोंके अन्तसमयमें जो संक्रमण द्रव्यरूप फालि उसको

घातित्रयाणां बंधो वर्षपृथक्त्वं तु शेषप्रकृतीनाम् ।
वर्षाणां संख्येयसहस्राणि भवंति नियमेन ॥ ५४८ ॥

अर्थ—तीन घातियाओंका स्थितिबन्ध पृथक्त्व (तीनके ऊपर) वर्षमात्र है और शेष अघातियाओंका स्थितिबन्ध संख्यातहजार वर्षमात्र नियमसे है ॥ ५४८ ॥

घादितियाणं सत्तं संखसहस्साणि होंति वस्साणं ।
तिण्हं पि अघादीणं वस्साणि असंखमेत्ताणि ॥ ५४९ ॥

घातित्रयाणां सत्त्वं संख्यसहस्राणि भवंति वर्षाणां ।
त्रयाणामपि अघातिनां वर्षा असंख्यमात्राः ॥ ५४९ ॥

अर्थ—तीन घातियाओंका स्थितिसत्त्व संख्यातहजार वर्ष है और आयुके विना तीन अघातियाओंका स्थितिसत्त्व असंख्यातवर्षमात्र है ॥ ५४९ ॥

से काले कोहस्स य तदियादो संगहादु पढमठिदी ।
अंते संजलणाणं बंधं सत्तं दुमास चउवस्सा ॥ ५५० ॥

स्वे काले क्रोधस्य च तृतीयतः संग्रहात् प्रथमस्थितिः ।
अंते संज्वलनानां बंधं सत्त्वं द्विमासं चतुर्वर्षाः ॥ ५५० ॥

अर्थ—उसके बाद अपने कालमें क्रोधकी तीसरी संग्रहकृष्टिका वेदक होता है उस वेदककालसे आवलि अधिकमात्र प्रथमस्थिति करता है । और वहां अन्तसमयमें संज्वलन चारका स्थितिबन्ध दो महीने तथा स्थितिसत्त्व चार वर्षमात्र जानना । शेषकर्मोंका पूर्ववत् है ॥ ५५० ॥

से काले माणस्स य पढमादो संगहादु पढमठिदी ।
माणोदयअद्धाए तिभागमेत्ता हु पढमठिदी ॥ ५५१ ॥

स्वे काले मानस्य च प्रथमात् संग्रहात् प्रथमस्थितिः ।
मानोदयाद्धायाः त्रिभागमात्रा हि प्रथमस्थितिः ॥ ५५१ ॥

अर्थ—उसके बाद अपने कालमें मानकी प्रथमसंग्रहकृष्टिकी गुणश्रेणीरूप प्रथमस्थिति करता है । वह मानके वेदककालका तीसरा भाग आवलिसे अधिक उस प्रथमस्थितिका प्रमाण है । वहां मानकी प्रथमसंग्रहकृष्टिका वेदक होता है ॥ ५५१ ॥

कोहपढमं व माणो चरिमे अंतोमुहुत्तपरिहीणो ।
दिणमासपण्णचत्तं बंधं सत्तं तिसंजलणगाणं ॥ ५५२ ॥

क्रोधप्रथमं व मानः चरमे अंतर्मुहूर्तपरिहीनः ।
दिनमासपंचाशच्चत्वारिंशत् बंधः सत्त्वं त्रिसंज्वलनानाम् ॥ ५५२ ॥

अर्थ—क्रोधकी प्रथमसंग्रहकृष्टिके वेदककी तरह मानकी प्रथमसंग्रहकृष्टिका वेदकविधान जानना । और अन्तसमयमें क्रोधके विना तीन संज्वलनका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तकम पचास दिन है और स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्तकम चालीस महीनेमात्र है ॥ ५५२ ॥

विदियस्स माणचरिमे चत्तं बत्तीसदिवसमासाणि ।
अंतोमुहुत्तहीणा बंधो सत्तो तिसंजलणगाणं ॥ ५५३ ॥

द्वितीयस्य मानचरमे चत्वारिंशद्द्वात्रिंशत् दिवसमासाः ।
अंतर्मुहूर्तहीना बंधः सत्त्वं त्रिसंज्वलनानाम् ॥ ५५३ ॥

अर्थ—मानकी दूसरी संग्रहकृष्टिके वेदकके अन्तसमयमें तीन संज्वलनका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तकम चालीस दिन और स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्तकम बत्तीस महीनेमात्र है ॥५५३॥

तदियस्स माणचरिमे तीसं चउवीस दिवसमासाणि ।
तिण्हं संजलणाणं ठिदिबंधो तह य सत्तो य ॥ ५५४ ॥

तृतीयस्य मानचरमे त्रिंशत् चतुर्विंशत् दिवसमासाः ।
त्रयाणां संज्वलनानां स्थितिबंधस्तथा च सत्त्वं च ॥ ५५४ ॥

अर्थ—इसके बाद मानकी तीसरी संग्रहकृष्टिवेदकके अन्तसमयमें तीन संज्वलनका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तकम तीस दिन और स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्तकम चौबीस महीने मात्र होता है ॥ ५५४ ॥

पढमगमायाचरिमे पणवीसं वीस दिवसमासाणि ।
अंतोमुहुत्तहीणा बंधो सत्तो दुसंजलणगाणं ॥ ५५५ ॥

प्रथमगमायाचरमे पंचविंशतिः विंशतिः दिवसमासाः ।
अंतर्मुहूर्तहीना बंधः सत्त्वं द्विसंज्वलनकयोः ॥ ५५५ ॥

अर्थ—मायाकी प्रथमसंग्रहकृष्टि वेदकके अन्तसमयमें संज्वलन माया लोभ इन दोका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तकम पचीस दिन और स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्तकम वीस महीनेका है ॥ ५५५ ॥

विदियगमायाचरिमे वीसं सोलं च दिवसमासाणि ।
अंतोमुहुत्तहीणा बंधो सत्तो दुसंजलणगाणं ॥ ५५६ ॥

[illegible] दिवसमासाः ।
[illegible] ॥ ५५६ ॥

अर्थ—[illegible] संज्वलनोंका स्थितिबन्ध [illegible] महीना है ॥ ५५६ ॥

तदियगमायाचरिमे पण्णरवारसय दिवसमासाणि ।
दोण्हं संजलणाणं ठिदिबंधो तह य सत्तो य ॥ ५५७ ॥
तृतीयकमायाचरमे पंचदशद्वादश दिवसमासाः ।
द्वयोः संज्वलनयोः स्थितिबंधस्तथा च सत्त्वं च ॥ ५५७ ॥

अर्थ—मायाकी तीसरी संग्रहकृष्टिवेदकके अन्तसमयमें दो संज्वलनोंका स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्तकम पन्द्रह दिन है और स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्तकम बारह महीने है ॥ ५५७ ॥

मासपुधत्तं वासा संखसहस्साणि बंध सत्तो य ।
घादितियाणिदराणं संखमसंखेज्जवस्साणि ॥ ५५८ ॥
मासपृथक्त्वं वर्षाः संख्यसहस्राः बंधः सत्त्वं च ।
घातित्रयाणामितरेषां संख्यमसंख्येयवर्षाः ॥ ५५८ ॥

अर्थ—तीन घातियाओंका स्थितिबन्ध पृथक्त्वमासप्रमाण है और स्थितिसत्त्व संख्यातहजार वर्षमात्र है। तथा तीन अघातियाओंका स्थितिबन्ध संख्यातवर्षमात्र है और स्थितिसत्त्व असंख्यातवर्षमात्र है ॥ ५५८ ॥

लोहस्स पढमचरिमे लोहस्संतोमुहुत्त बंधदुगे ।
दिवसपुधत्तं वासा संखसहस्साणि घादितिये ॥ ५५९ ॥
लोभस्य प्रथमचरमे लोभस्यांतर्मुहूर्तं बंधद्विके ।
दिवसपृथक्त्वं वर्षाः संख्यसहस्रा घातित्रये ॥ ५५९ ॥

अर्थ—लोभकी प्रथमसंग्रहकृष्टिवेदकके अन्तसमयमें संज्वलनलोभका स्थितिबन्ध अथवा स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्त है परंतु बंधसे सत्त्व संख्यातगुणा है। और तीन घातियाओंका स्थितिबंध पृथक्त्वदिनमात्र तथा स्थितिसत्त्व संख्यातहजार वर्ष है ॥ ५५९ ॥

सेसाणं पयडीणं वासपुधत्तं तु होदि ठिदिबंधो ।
ठिदिसत्तमसंखेज्जा वस्साणि हवंति णियमेण ॥ ५६० ॥
शेषाणां प्रकृतीनां वर्षपृथक्त्वं तु भवति स्थितिबंधः ।
स्थितिसत्त्वमसंख्येया वर्षा भवंति नियमेन ॥ ५६० ॥

अर्थ—शेष तीन अघातियाओंका स्थितिबन्ध पृथक्त्ववर्षमात्र है और स्थितिसत्त्व असंख्यातवर्षमात्र नियमसे होता है ॥ ५६० ॥

से काले लोहस्स य विदियादो संगहादु पढमठिदी ।
तादे सुहुमं किट्टिं करेदि तब्बिदियतदियादो ॥ ५६१ ॥
स्वे काले लोभस्य च द्वितीयतः संग्रहात् प्रथमस्थितिः ।
तत्र सूक्ष्मां कृष्टिं करोति तद्वितीयतृतीयतः ॥ ५६१ ॥

दवं पढमे समये देदि हु सुहुमेसणंतभागूणं ।
थूलपढमे असंखगुणूणं तत्तो अणंतभागूणं ॥ ५६६ ॥

द्रव्यं प्रथमे समये ददाति हि सूक्ष्मेष्वनंतभागोनम् ।
स्थूलप्रथमे असंख्यगुणोनं ततो अनंतभागोनम् ॥ ५६६ ॥

अर्थ—सूक्ष्मकृष्टिकरणकालके प्रथमसमयमें सूक्ष्मकृष्टिकी जघन्यकृष्टिसे लेकर अनन्तवां भाग घटता हुआ क्रमलिये, उत्कृष्ट सूक्ष्मकृष्टिसे प्रथम जघन्यबादर कृष्टिमें असंख्यातगुणा घटता और उससे द्वितीयादि बादर कृष्टियोंमें अनन्तवां भाग घटता क्रमलिये द्रव्य दिया जाता है ॥ ५६६ ॥ इसतरह प्रथमसमयमें सूक्ष्मकृष्टिकी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

विदियादिसु समयेसु अपुवाओ पुवकिट्टिहेट्ठाओ ।
पुवाणमंतरेसुवि अंतरजणिदा असंखगुणा ॥ ५६७ ॥

द्वितीयादिषु समयेषु अपूर्वाः पूर्वकृष्ट्यधस्तनाः ।
पूर्वासामंतरेष्वपि अंतरजनिता असंख्यगुणाः ॥ ५६७ ॥

अर्थ—द्वितीय आदि समयोंमें अपूर्व (नवीन) सूक्ष्मकृष्टियां पूर्वकृष्टियोंके नीचे की जातीं हैं और उनके बीच बीचमें अन्तर कृष्टियां की जातीं हैं । वहां अधस्तन कृष्टियोंसे अन्तरकृष्टियोंका प्रमाण असंख्यातगुणा है ॥ ५६७ ॥

दवगपढमे सेसे देदि अपुवेसणंतभागूणं ।
पुवापुवपवेसे असंखभागूणमहियं च ॥ ५६८ ॥

द्रव्यगप्रथमे शेषे ददाति अपूर्वेष्वनंतभागोनम् ।
पूर्वापूर्वप्रवेशे असंख्यभागोनमधिकं च ॥ ५६८ ॥

अर्थ—द्वितीयादि समयोंमें प्रथमसमयकी तरह द्रव्य दिया जाता है । विशेष इतना है कि सूक्ष्मकृष्टिके द्रव्यको अधस्तन अपूर्वकृष्टियोंमें अनन्तवां भाग घटता हुआ क्रमलिये, पूर्वकृष्टिके प्रवेशमें असंख्यातवां भागमात्र घटता और अपूर्वकृष्टिके प्रवेश होनेपर असंख्यातवां भागमात्र अधिक द्रव्य दिया जाता है ॥ ५६८ ॥

पढमादिसु दिस्सकमं सुहुमेसु अणंतभागहीणकमं ।
बादरकिट्टिपदेसो असंखगुणिदं तदो हीणं ॥ ५६९ ॥

प्रथमादिषु दृश्यकमं सूक्ष्मेष्वनंतभागहीनक्रमम् ।
बादरकृष्टिप्रदेशो असंख्यगुणितस्ततो हीनः ॥ ५६९ ॥

अर्थ—प्रथमादिसमयोंमें दृश्यमान द्रव्यका क्रम सूक्ष्मकृष्टियोंमें अनन्तगुणा घटता क्रमलिये है । उसके बाद द्वितीयादि द्वितीयसंग्रहकी अन्त बादरकृष्टिपर्यंत दृश्यमानद्रव्य अनन्तगुणा घटता क्रमलिये है ऐसा जानना ॥ ५६९ ॥

लोहस्स तदियादो सुहुमगदं बिदियदो दु तदियगदं ।
बिदीयादो सुहुमगदं दव्वं संखेज्जगुणिदकमं ॥ ५७० ॥

लोभस्य तृतीयतः सूक्ष्मगतं द्वितीयतस्तु तृतीयगतं ।
द्वितीयतः सूक्ष्मगतं द्रव्यं संख्येयगुणितक्रमम् ॥ ५७० ॥

अर्थ—लोभकी तीसरी संग्रहकृष्टिसे सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणत हुआ द्रव्य थोड़ा है उससे द्वितीयसंग्रहकृष्टिसे तीसरी संग्रह कृष्टिरूप परिणत द्रव्य संख्यातगुणा है और लोभकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसे सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणत द्रव्य संख्यातगुणा है ॥ ५७० ॥

किट्टीवेदगपढमे कोहस्स य बिदियदो दु तदियादो ।
माणस्स य पढमगदो माणतियादो दु मायपढमगदो ॥ ५७१ ॥
मायतिगादो लोभस्सादिगदो लोभपढमदो बिदियं ।
तदियं च गदा दव्वा दसपदमहियकमा होंति ॥ ५७२ ॥

कृष्टिवेदकप्रथमे क्रोधस्य च द्वितीयतस्तु तृतीयतः ।
मानस्य च प्रथमगतं मानत्रयात् तु मायाप्रथमगतः ॥ ५७१ ॥
मायात्रिकात् लोभस्यादिगतो लोभप्रथमतो द्वितीयं ।
तृतीयं च गतानि द्रव्याणि दशपदमधिकक्रमाणि भवंति ॥ ५७२ ॥

अर्थ—बादरकृष्टिवेदककालके प्रथमसमयमें क्रोधकी द्वितीयसंग्रह कृष्टिसे मानकी प्रथम-संग्रहकृष्टिमें संक्रमण हुआ द्रव्य थोड़ा है, उससे क्रोधकी तीसरी संग्रहकृष्टिसे मानकी प्रथ-मसंग्रहकृष्टिमें संक्रमण हुआ द्रव्य विशेष अधिक है, उससे मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिसे मायाकी प्रथमसंग्रहमें संक्रमण हुआ द्रव्य विशेष अधिक है, उससे मानकी दूसरी संग्र-हकृष्टिसे मायाकी प्रथमसंग्रहकृष्टिमें संक्रमण हुआ द्रव्य विशेष अधिक है, उससे मानकी तीसरी संग्रहकृष्टिसे मायाकी प्रथमसंग्रहकृष्टिमें संक्रमण हुआ द्रव्य विशेष अधिक है, उस मायाकी प्रथमसंग्रहकृष्टिसे लोभकी प्रथमसंग्रहकृष्टिमें संक्रमण हुआ द्रव्य विशेष अधिक है, उस मायाकी दूसरी संग्रहकृष्टिसे लोभकी प्रथमसंग्रहकृष्टिमें संक्रमण हुआ द्रव्य विशेष अधिक है, उससे मायाकी तीसरी संग्रहसे लोभकी प्रथमसंग्रहमें संक्रमण हुआ द्रव्य विशेष अधिक है उस लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिसे लोभकी दूसरी संग्रहकृ- [illegible]

[illegible]

[illegible]

क्रोधस्य च प्रथमात् मानादौ क्रोधतृतीयद्वितीयगतम् ।
ततः संख्येयगुणमधिकं संख्येयसंगुणितम् ॥ ५७३ ॥

अर्थ—क्रोधकी प्रथमसंग्रहकृष्टिसे मानकी प्रथमसंग्रहमें संक्रमण द्रव्य संख्यातगुणा है, उससे लोभकी प्रथमसंग्रहकृष्टिसे क्रोधकी तीसरी संग्रहकृष्टिमें संक्रमण हुआ द्रव्य विशेष (पल्यका असंख्यातवां भाग) अधिक है, उसके बाद क्रोधकी प्रथमसंग्रहकृष्टिसे क्रोधकी दूसरी संग्रहकृष्टिमें संक्रमण हुआ प्रदेशसमूह संख्यातगुणा है ॥ ५७३ ॥

लोभस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जाव पढमठिदी ।
आवलितियमवसेसं आगच्छदि विदियदो तदियं ॥ ५७४ ॥
लोभस्य द्वितीयकृष्टिं वेदयमानस्य यावत् प्रथमस्थितिः ।
आवलित्रिकमवशेषमागच्छति द्वितीयतस्तृतीयम् ॥ ५७४ ॥

अर्थ—इसप्रकार लोभकी द्वितीयकृष्टिको वेदते हुए जीवके उसकी प्रथमस्थितिमें जबतक तीन आवलि शेष रहें तबतक दूसरीसंग्रहसे तीसरी संग्रहको द्रव्य संक्रमणरूप होके प्राप्त होता है ॥ ५७४ ॥

तत्तो सुहुमं गच्छदि समयाहियआवलीयसेसाए ।
सव्वं तदियं सुहुमे णव उच्छिट्ठं विहाय विदियं च ॥ ५७५ ॥
ततः सूक्ष्मं गच्छति समयाधिकावलीशेषायाम् ।
सर्वं तृतीयं सूक्ष्मे नवकमुच्छिष्टं विहाय द्वितीयं च ॥ ५७५ ॥

अर्थ—द्वितीय संग्रहकी प्रथमस्थितिमें समय अधिक आवलि शेष रहनेपर अनिवृत्तिकरणका अन्तसमय होता है वहां लोभकी तीसरी संग्रहकृष्टिका सब द्रव्य सूक्ष्मकृष्टिको प्राप्त होता है और पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा आगेके समयमें उच्छिष्टावलिमात्र निषेक और समयकम दो आवलिमात्र नवक समयप्रबद्ध इन दोनोंके विना अन्य सब द्वितीय संग्रहका द्रव्य सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणमता है ऐसा जानना ॥ ५७५ ॥

लोभस्स तिघादीणं तादे अघादीतियाण ठिदिबंधो ।
अंतो दु मुहुत्तस्स य दिवसस्स य होदि वरिसस्स ॥ ५७६ ॥
लोभस्य त्रिघातिनां तस्मिन् अघातित्रयाणां स्थितिबंधः ।
अंतर्मुहूर्तस्य च दिवसस्य च वर्षस्य भवति ॥ ५७६ ॥

अर्थ—अनिवृत्तिकरणके अन्तसमयमें संज्वलनलोभका स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्तमात्र है। बादरके तीन घातियाओंकी स्थिति दिनों की है। तीन घातियाओंका कुछ दिनों कुछ कम और तीन अघातियाओंका कुछ वर्ष कुछ कम स्थितिबंध होता है ॥ ५७६ ॥

ताणं पुण ठिदिसंतं कमेण अंतोमुहुत्तयं होइ ।
वस्साणं संखेज्जसहस्साणि असंखवस्साणि ॥ ५७७ ॥

तेषां पुनः स्थितिसत्त्वं क्रमेणांतर्मुहूर्तकं भवति ।
वर्षाणां संख्येयसहस्राणि असंख्यवर्षाणि ॥ ५७७ ॥

अर्थ—उनका स्थितिसत्त्व क्रमसे लोभका अन्तर्मुहूर्त, तीन घातियाओंका संख्यातह-जार वर्ष और तीन अघातियाओंका असंख्यात वर्षमात्र है ॥ ५७७ ॥

से काले सुहुमगुणं पडिवज्जदि सुहुमकिट्टिठिदिखंडं ।
आणायदि तद्दव्वं उक्कट्टिय कुणदि गुणसेढिं ॥ ५७८ ॥

स्वे काले सूक्ष्मगुणं प्रतिपद्यते सूक्ष्मकृष्टिस्थितिखंडं ।
आनयति तद्द्रव्यं अपकृष्य करोति गुणश्रेणिं ॥ ५७८ ॥

अर्थ—अपने कालमें सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानको प्राप्त होता है वहांपर लोभकी सूक्ष्मकृ-ष्टिके स्थितिखण्डको करता है और मोहके एकभाग द्रव्यको अपकर्षणकर गुणश्रेणी करता है ॥ ५७८ ॥

गुणसेढि अंतरट्ठिदि बिदियट्ठिदि इदि हवंति पव्वतिया ।
सुहुमगुणादो अहिया अवट्ठिदुदयादि गुणसेढी ॥ ५७९ ॥

गुणश्रेणिरंतरस्थितिः द्वितीयस्थितिरिति भवंति पर्वत्रयाणि ।
सूक्ष्मगुणतोऽधिका अवस्थितोदयादिः गुणश्रेणी ॥ ५७९ ॥

अर्थ—गुणश्रेणी अन्तरस्थिति द्वितीयस्थिति—ये तीन पर्व हैं । सूक्ष्मसांपरायके कालसे कुछ विशेष अधिक उदयादि अवस्थितरूप गुणश्रेणी आयाम है ॥ ५७९ ॥

उक्कट्टिदइगिभागं गुणसेढीए असंखबहुभागं ।
अंतरहिदे बिदियठिदी संखसलागा हि अवहरिया ॥ ५८० ॥
गुणिय चउरादिखंडे अंतरसयलट्ठिदिम्हि णिक्खिवदि ।
सेसबहुभागमावलिहीणे बिदियट्ठिदीए दु ॥ ५८१ ॥

अपकर्षितैकभाग गुणश्रेण्यामसंख्यबहुभागम् ।
अन्तरहिते द्वितीयस्थितिः संख्यशलाका हि अपहरिताः ॥ ५८० ॥
गुणितं चतुरादिखंडे अन्तरसकलस्थितौ निक्षिप्यते ।
शेषबहुभागमावलिहीने द्वितीयस्थितौ हि ॥ ५८१ ॥

अर्थ—[illegible]
[illegible]

संख्यातशलाका उसका भागदेनेसे जो आवे उस एकभागको चारसे गुणाकरे जो प्रमाण आवे उतना द्रव्य अन्तरस्थितिमें दिया जाता है । और शेष बहुभागरूप सब द्रव्य अतिस्थापनावलीसे हीन जो द्वितीयस्थिति उसमें दिया जाता है ॥ ५८० । ५८१ ॥

अंतरपढमठिदित्तिय असंखगुणिदकमेण दिज्जदि हु ।
हीणकमं संखेजगुणूणं हीणकमं तत्तो ॥ ५८२ ॥

अंतरप्रथमस्थित्यंतं च असंख्यगुणितक्रमेण दीयते हि ।
हीनक्रमं संख्येयगुणोनं हीनक्रमं ततः ॥ ५८२ ॥

अर्थ—अन्तरायामकी प्रथमस्थितितक तो असंख्यातगुणा क्रमलिये द्रव्य दिया जाता है उसके बाद हीनक्रमलिये संख्यातगुणा घटता फिर हीनक्रमलिये द्रव्य दिया जाता है ॥ ५८२ ॥

अंतरपढमठिदित्ति य असंखगुणिदकमेण दिस्सदि हु ।
हीणकमेण असंखेज्जेण गुणं तो विहीणकमं ॥ ५८३ ॥

अंतरप्रथमस्थित्यंतं च असंख्यगुणितक्रमेण दृश्यते हि ।
हीनक्रमेण असंख्येयेन गुणमतो विहीनक्रमम् ॥ ५८३ ॥

अर्थ—वर्तमान दृश्यद्रव्यसे अन्तरायामके प्रथमनिषेकतक असंख्यातगुणा क्रमलिये दृश्यमान द्रव्य है । उसके बाद अन्तरामके प्रथमनिषेकतक विशेष घटता क्रमलिये है । और उसके बाद द्वितीयस्थितिके प्रथमनिषेकका दृश्यमान द्रव्य असंख्यातगुणा है उसके बाद उसके अन्तनिषेकतक विशेष घटता क्रमलिये दृश्यमान द्रव्य है ॥ ५८३ ॥

आगे प्रथम कांडककी अन्तफालिके द्रव्यका प्रमाणदिखलाते हैं;—

कंडयगुणचरिमठिदी सविसेसा चरिमफालिया तस्स ।
संखेज्जभागमंतरठिदिम्हि सधे हु बहुभागं ॥ ५८४ ॥

कांडकगुणचरमस्थितिः सविशेषा चरमफालिका तस्य ।
संख्येयभागमंतरस्थितौ सर्वायां तु बहुभागम् ॥ ५८४ ॥

अर्थ—कांडकायामसे गुणित जो विशेषसहित अन्तस्थिति उसके प्रमाण अन्तफालिका द्रव्य है । उसका संख्यातवां भाग अन्तरस्थितिमें और संख्यात बहुभाग सब स्थितिमें दिया जाता है ॥ ५८४ ॥

अंतरपढमठिदित्ति य असंखगुणिदकमेण दिज्जदि हु ।
हीणं तु मोहविदियट्ठिदिम्हि उच्छिट्ठावलिं मुच्चा ॥ ५८५ ॥

अन्तरप्रथमस्थितिरिति च असंख्यगुणितक्रमेण दीयते हि ।
हीनं तु मोहद्वितीयस्थितौ उच्छिष्टावलिं मुक्त्वा ॥ ५८५ ॥

अर्थ—मोहकी द्वितीयस्थितिकांडकघातसे लेकर द्विचरमकांडक घाततक द्रव्यको अन्तरके प्रथमनिषेकपर्यंत तो असंख्यातगुणा क्रमकर देते हैं । और उसके ऊपर एक एक विशेष घटता क्रमलिये अतिस्थापनावलिपर्यंत द्रव्यदिया जाता है ॥ ५८५ ॥

अंतरपढमठिदित्ति य असंखगुणिदकमेण दिस्सदि हु ।
हीणं तु मोहविदियट्ठिदिखंडयदो दुघादोत्ति ॥ ५८६ ॥

अंतरप्रथमस्थितिरिति च असंख्यगुणितक्रमेण दृश्यते हि ।
हीनं तु मोहद्वितीयस्थितिकांडकतो द्विघातांतम् ॥ ५८६ ॥

अर्थ—मोहके द्वितीयस्थितिकांडकघातसे लेकर द्विचरमकांडक घाततक दृश्यमान द्रव्य गुणश्रेणीके प्रथमनिषेकसे गुणश्रेणीशीर्षके ऊपर अन्तरायामके प्रथमनिषेकतक असंख्यातगुणा क्रम लिये है । उसके बाद अन्तमें एक विशेष घटता क्रम लिये दृश्यमान द्रव्य है ॥ ५८६ ॥

पढमगुणसेढिसीसं पुव्विल्लादो असंखसंगुणियं ।
उवरिमसमये दिस्सं विसेसअहियं हवे सीसे ॥ ५८७ ॥

प्रथमगुणश्रेणिशीर्षं पूर्वस्मात् असंख्यसंगुणितम् ।
उपरिमसमये दृश्यं विशेषाधिकं भवेत् शीर्षे ॥ ५८७ ॥

अर्थ—प्रथमसमयमें गुणश्रेणीशीर्ष पहलेसे असंख्यातगुणा है और आगेके समयमें शीर्षमें दृश्यद्रव्य विशेष अधिक है ॥ ५८७ ॥

सुहुमद्धादो अहिया गुणसेढी अंतरं तु तत्तो दु ।
पढमं खंडं पढमे संतो मोहस्स संखगुणिदकमा ॥ ५८८ ॥

सूक्ष्माद्धातो अधिका गुणश्रेणी अंतरं तु ततस्तु ।
प्रथमं खंडं प्रथमे सत्त्वं मोहस्य संख्यगुणितक्रमं ॥ ५८८ ॥

अर्थ—सूक्ष्मसांपरायके कालसे असंख्यातवें भागकर अधिक मोहकी गुणश्रेणीका आयाम है, उससे अन्तरायाम संख्यातगुणा है, उससे सूक्ष्मसांपरायके मोहका प्रथमस्थितिकांडक आयाम संख्यातगुणा है, और उससे सूक्ष्मसांपरायके प्रथमसमयमें मोहका स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है ॥ ५८८ ॥

एदेणप्पाबहुगविधाणेण विदियखंडयादीसु ।
गुणसेढिमुज्झिदूणा गोपुच्छा होदि सुहुमम्हि ॥ ५८९ ॥

[illegible]

[illegible]

अर्थ—इस अल्पबहुत्वविधानकर सूक्ष्मसांपरायमें द्वितीय आदि स्थितिकांडकोंके कालमें गुणश्रेणीको छोड़ ऊपरकी सब स्थितिका एक गोपुच्छ होता है ॥ ५८९ ॥

सुहुमाणं किट्टीणं हेट्ठा अणुदिण्णगा हु थोवाओ ।
उवरिं तु विसेसहिया मज्झे उदया असंखगुणा ॥ ५९० ॥
सूक्ष्मानां कृष्टीनां अधस्तना अनुदीर्णका हि स्तोकाः ।
उपरि तु विशेषाधिका मध्ये उदया असंख्यगुणाः ॥ ५९० ॥

अर्थ—सूक्ष्मकृष्टियोंमें जो जघन्यकृष्टि आदि नीचेकी कृष्टियां उदयरूप नहीं होतीं उनका प्रमाण थोड़ा है । उससे ऊपरकी कृष्टियोंका प्रमाण पल्यासंख्यातवें भाग विशेषकर अधिक है और बीचकी उदयरूप कृष्टियां असंख्यातगुणी हैं ॥ ५९० ॥

सुहुमे संखसहस्से खंडे तीदे वसाणखंडेण ।
आगायदि गुणसेढी आगादो संखभागे च ॥ ५९१ ॥
सूक्ष्मे संख्यसहस्रे खंडेऽतीतेऽवसानखंडेन ।
आगाप्यते गुणश्रेणी अग्रतः संख्यभागे च ॥ ५९१ ॥

अर्थ—सूक्ष्मसांपरायमें संख्यातहजार स्थितिकांडक बीतनेपर अन्तके स्थितिखण्डसे पूर्वगुणश्रेणी आयामके संख्यातवें भागमात्र आयाममें गुणश्रेणी करता है ॥ ५९१ ॥

एत्तो सुहुमंतोत्ति य दिज्जस्स य दिस्समाणगस्स कमो ।
सम्मत्तचरिमखंडे तक्कदिकज्जेवि उत्तं व ॥ ५९२ ॥
इतः सूक्ष्मांत इति च देयस्य च दृश्यमानस्य क्रमः ।
सम्यक्त्वचरमखंडे तत्कृतकार्येपि उक्तमिव ॥ ५९२ ॥

अर्थ—यहांसे लेकर सूक्ष्मसांपरायके अन्ततक देय द्रव्य और दृश्यमानद्रव्यका क्रम है वह जैसे सम्यक्त्वमोहनीयके अन्तस्थितिकांडकमें अथवा उसके कृतकृत्यपनेमें पहले कहा था वैसे ही जानना ॥ ५९२ ॥

उक्किण्णे अवसाणे खंडे मोहस्स णत्थि ठिदिघादो ।
ठिदिसत्तं मोहस्स य सुहुमद्धासेसपरिमाणं ॥ ५९३ ॥
उत्कीर्णेऽवसाने खंडे मोहस्य नास्ति स्थितिघातः ।
स्थितिसत्त्वं मोहस्य च सूक्ष्माद्धाशेषपरिमाणं ॥ ५९३ ॥

अर्थ—इसप्रकार मोहराजाके मस्तक समान लोभके अन्तकांडकका घातकरते हुए मोहका स्थितिघात नहीं होता । अब सूक्ष्मसांपरायका जितना काल शेष रहा है उतना ही मोहका स्थितिसत्त्व रहा है ॥ ५९३ ॥

णामदुगे वेयणिये अडबारमुहुत्तयं तियादीणं।
अंतोमुहुत्तमेत्तं ठिदिबंधो चरिम सुहमम्हि ॥ ५९४ ॥

नामद्विके वेदनीये अष्टद्वादशमुहूर्तकं त्रिघातिनाम्।
अंतर्मुहूर्तमात्रं स्थितिबंधः चरमे सूक्ष्मे ॥ ५९४ ॥

अर्थ—सूक्ष्मसांपरायके अन्तसमयमें नामगोत्रका आठ मुहूर्त, वेदनीयका बारह मुहूर्त, और तीन घातियाओंका अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्यस्थितिबन्ध होता है ॥ ५९४ ॥

तिण्हं घादीणं ठिदिसंतो अंतोमुहुत्तमेत्तं तु।
तिण्हमघादीणं ठिदिसंतमसंखेज्जवस्साणि ॥ ५९५ ॥

त्रयाणां घातिनां स्थितिसत्त्वमंतर्मुहूर्तमात्रं तु।
त्रयाणामघातिनां स्थितिसत्त्वमसंख्येयवर्षाः ॥ ५९५ ॥

अर्थ—तीन घातियाओंका स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्तमात्र है और तीन अघातियाओंका स्थितिसत्त्व असंख्यातवर्षमात्र है ॥ ५९५ ॥ इसप्रकार कृष्टिवेदनाका अधिकार कहा।

से काले सो खीणकसाओ ठिदिरसगबंधपरिहीणो।
सम्मत्तडवस्सं वा गुणसेढी दिज्ज दिस्सं च ॥ ५९६ ॥

स्वे काले स क्षीणकषायः स्थितिरसगबंधपरिहीनः।
सम्यक्त्वाष्टवर्षमिव गुणश्रेणी देयं दृश्यं च ॥ ५९६ ॥

अर्थ—समस्त चारित्रमोहके क्षयके बाद अपने कालमें क्षीणकषायवाला होता है। वह स्थिति अनुभाग इन दोनों बन्धोंसे रहित है केवल योगके निमित्तसे प्रकृति प्रदेशरूप ईर्यापथ बन्ध होता है। और जैसे सम्यक्त्वमोहनीयकी आठ वर्षकी स्थिति शेष रहनेपर कथन किया था उसी तरह यहां भी गुणश्रेणी वा देयद्रव्य वा दृश्यमान द्रव्य जानना॥५९६॥ यहां ऐसा जानना कि क्षीणकषायके प्रथमसमयसे लेकर अन्तर्मुहूर्ततक तो पहला पृथक्त्ववितर्कविचार नामा शुक्लध्यान रहता है और क्षीणकषायकालका संख्यातवां भाग शेष रहनेपर एकत्ववितर्क अविचार नामा दूसरा शुक्लध्यान वर्तता है।

घादीण मुहुत्तंतं अघादियाणं असंखगा भागा।
ठिदिखंडं रसखंडो अणंतभागा असत्थाणं ॥ ५९७ ॥

घातिनां मुहूर्तांतमघातिकानामसंख्यका भागाः।
स्थितिखंडं रसखंडं अनंतभागा अशस्तानाम् ॥ ५९७ ॥

अर्थ—इस क्षीणकषायमें तीन घातियाओंका अन्तर्मुहूर्तमात्र और तीन अघातियाओंका पूर्वबंधके असंख्यात बहुभागमात्र स्थितिकांडक आयाम है और अप्रशस्तप्रकृतियोंका पूर्वके अनन्त बहुभाग अनुभागकांडक आयाम [illegible] ॥ ५९७ ॥

बहुठिदिखंडे तीदे संखा भागा गदा तदद्धाए ।
चरिमं खंडं गिण्हदि लोमं वा तत्थ दिज्जादि ॥ ५९८ ॥
बहुस्थितिखंडेऽतीते संख्यभागा गताद्धायाः ।
चरमं खंडं गृह्णाति लोम इव तत्र देयादि ॥ ५९८ ॥

अर्थ—पूर्वरीतिसे क्रमसे बहुत स्थितिकांडक वीत जानेपर क्षीणकषायकालके संख्यात बहुभाग वीत जानेपर तीन घातियोंके अन्तकांडकको ग्रहण करता है । वहां देयादि द्रव्यका विधान सूक्ष्मलोभके समान जानना ॥ ५९८ ॥

चरिमे खंडे पडिदे कदकरणिज्जोत्ति भण्णदे एसो ।
तस्स दुचरिमे णिद्दा पयला सत्तुदयवोच्छिण्णा ॥ ५९९ ॥
चरमे खंडे पतिते कृतकरणीय इति भण्यते एषः ।
तस्य द्विचरमे निद्रा प्रचला सत्त्वोदयव्युच्छिन्ना ॥ ५९९ ॥

अर्थ—इसप्रकार अन्तकांडकका घात होनेपर इसको कृतकृत्य वेदक छद्मस्थ कहते हैं । और क्षीणकषायके द्विचरमसमयमें निद्रा प्रचला कर्मका सत्त्व और उदयका व्युच्छेद हुआ ॥ ५९९ ॥

आगे पुरुष वेद और मानादिकषायसहित श्रेणी चढनेवालेके विशेषता कहते हैं;—

कोहस्स य पढमठिदीजुत्ता कोहादिएक्कदोतीहिं ।
खवणद्धा हि कमसो माणतियाणं तु पढमठिदी ॥ ६०० ॥
क्रोधस्य च प्रथमस्थितियुक्ता क्रोधादिएकद्वित्रयाणाम् ।
क्षपणाद्धा हि क्रमशो मानत्रयाणां तु प्रथमस्थितिः ॥ ६०० ॥

अर्थ—क्रोधकी प्रथमस्थिति सहित क्रोधादि एक दो तीन कषायोंका क्षपणाकाल क्रमसे मानादि तीन कषायोंकी प्रथमस्थिति होती है ॥ ६०० ॥

माणतियाणुदयमहो कोहादिगिदुतिय खवियपणिधम्हि ।
हयकण्णकिट्टिकरणं किचा लोहं विणासेदि ॥ ६०१ ॥
मानत्रयाणामुदयमथ क्रोधाद्येकद्वित्रयं क्षपकप्रणिधौ ।
हयकर्णकिट्टिकरणं कृत्वा लोभं विनाशयति ॥ ६०१ ॥

अर्थ—मानादिक तीन कषायोंके उदयसहित श्रेणी चढा जीव क्रमसे क्रोधादिक एक दो तीन कषायोंका क्षपणाकालके निकट अश्वकर्ण सहित कृष्टिकरणको करके लोभका नाश करता है ॥ ६०१ ॥ इसप्रकार पुरुषवेदसहित चढे चारप्रकार जीवोंकी विशेषता कही ।

अब स्त्रीवेदसहित चढे चारप्रकार जीवोंके विशेष कहते हैं;—

पुरिसोदएण चडिदस्सित्थी खवणद्धउत्ति पढमठिदी।
इत्थिस्स सत्तकम्मं अवगदवेदो समं विणासेदि ॥ ६०२ ॥

पुरुषोदयेन चटितस्य स्त्री क्षपणाद्धांतं प्रथमस्थितिः।
स्त्रिया सप्तकर्माणि अपगतवेदः समं विनाशयति ॥ ६०२ ॥

अर्थ—पुरुषवेदसहित चढे हुए जीवके स्त्रीवेदके क्षपणाकालतक प्रथमस्थिति होती है। स्त्रीवेद सहित चढा जीव वेद उदयकर रहित हुआ सात नोकषायके क्षपणाकालमें सब सात नोकषायोंको खिपाता है ॥ ६०२ ॥

अब नपुंसकवेद सहित चढे जीवोंका व्याख्यान करते हैं;—

थीपढमट्ठिदिमेत्ता संढस्सवि अंतरादु संढेक।
तस्सद्धाति तदुवरिं संढा इत्थिं च खवदि थीचरिमे ॥ ६०३ ॥
अवगयवेदो संतो सत्त कसाये खवेदि कोहुदये।
पुरिसुदये चडणविही सेसुदयाणं तु हेट्ठुवरिं ॥ ६०४ ॥

स्त्रीप्रथमस्थितिमात्रा षंढस्यापि अंतरात् षंढैकः।
तस्याद्धा इति तदुपरि षंढं स्त्री च क्षपयति स्त्रीचरमे ॥ ६०३ ॥
अपगतवेदः संतः सप्त कषायान् क्षपयति क्रोधोदयेन।
पुरुषोदयेन चटनविधिः शेषोदयानां तु अधस्तनोपरि ॥ ६०४ ॥

अर्थ—स्त्रीवेदकी प्रथमस्थिति प्रमाण नपुंसकवेदकी भी प्रथमस्थिति स्थापन करता है। अन्तरकरणके बाद नपुंसकवेदका क्षपणाकाल है। उसके बाद स्त्रीवेदके क्षपणाकालके अंतसमयमें सब नपुंसक व स्त्रीवेदको एक समयमें क्षय करता है। उसके बाद वेद रहित हुआ सात नोकषायोंका क्षय करता है। अब शेष नीचे वा ऊपर सब विधान क्रोधके उदय और पुरुषवेदके उदयसहित श्रेणी चढे हुएके समान जानना ॥ ६०३। ६०४ ॥ इसतरह क्षीणकषायके द्विचरमसमयतक कथन किया।

अब आगेका कथन करते हैं;—

चरिमे पढमं विग्घं चउदंसण उदयसत्तवोच्छिण्णा।
से काले जोगिजिणो सव्वण्हू सव्वदरसी य ॥ ६०५ ॥

और चारप्रकार दर्शनावरण उदयसे और सत्त्वसे व्युच्छित्तिरूप होते हैं। इसप्रकार क्षीण-कषायके अन्तसमयमें घातिकर्मोंका नाश करके उसके बाद अपने कालमें सयोग केवली जिन होता है। वह सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होता है। उसका शरीर निगोदरहित परमौदारिक होजाता है ऐसा जानना ॥ ६०५ ॥

खीणे घादिचउक्के णंतचउक्कस्स होदि उप्पत्ती ।
सादी अपज्जवसिदा उक्कस्साणंतपरिसंखा ॥ ६०६ ॥

क्षीणे घातिचतुष्केऽनंतचतुष्कस्य भवति उत्पत्तिः ।
सादिरपर्यवसिता उत्कृष्टानंतपरिसंख्या ॥ ६०६ ॥

अर्थ—चार घातियाकर्मोंका नाश होनेपर अनन्तज्ञानादि अनन्तचतुष्टयकी उत्पत्ति होती है और वह उत्कृष्टानन्तकी संख्या आदि सहित और अन्तरहित है ॥ ६०६ ॥

आवरणदुगाण खये केवलणाणं च दंसणं होइ ।
विरियंतरायियस्स य खएण विरियं हवे णंतं ॥ ६०७ ॥

आवरणद्विकयोः क्षये केवलज्ञानं च दर्शनं भवति ।
वीर्यांतरायिकस्य च क्षयेण वीर्यं भवेदनंतम् ॥ ६०७ ॥

अर्थ—ज्ञानावरण दर्शनावरण इन दोनोंके नाशसे केवलज्ञान और केवल दर्शन होते हैं। और वीर्यांतरायकर्मके क्षयसे अनन्तवीर्य होता है, वह सब पदार्थोंको सदाकाल जाननेपर भी खेद नहीं होने देनेमें उपकारी ऐसी सामर्थ्यरूप है ॥ ६०७ ॥

णवणोकसायविग्घचउक्काणं च य खयादणंतसुहं ।
अणुवममव्वाबाहं अप्पसमुत्थं णिरावेक्खं ॥ ६०८ ॥

नवनोकषायविघ्नचतुष्काणां च क्षयादनंतसुखम् ।
अनुपममव्याबाधमात्मसमुत्थं निरपेक्षम् ॥ ६०८ ॥

अर्थ—नव नोकषाय और दानादि चार अन्तरायका क्षय होनेसे अनन्तसुख होता है। वह अनुपम है, किसीसे बाधा नहीं किया जाता इसलिये अव्याबाध है, आत्मासे ही उत्पन्न हुआ है और इन्द्रियादि अपेक्षासे रहित है ॥ ६०८ ॥

सत्तण्हं पयडीणं खयादु खइयं तु होदि सम्मत्तं ।
वरचरणं उवसमदो खयदो दु चरित्तमोहस्स ॥ ६०९ ॥

सप्तानां प्रकृतीनां क्षयात् क्षायिकं तु भवति सम्यक्त्वम् ।
वरचरणं उपशमतः क्षयतस्तु चारित्रमोहस्य ॥ ६०९ ॥

अर्थ—चार अनन्तानुबन्धी और तीन मिथ्यात्व—इन सातप्रकृतियोंके क्षयसे क्षायिक

सम्यक्त्व होता है। तथा चारित्रमोहकी इक्कीस प्रकृतियोंके उपशमसे वा क्षयसे उत्कृष्ट यथाख्यातचारित्र होता है वह निःकषाय आत्मचरणरूप है ॥ ६०९ ॥

अब यहां कोई प्रश्न करे कि केवलीके असातावेदनीयके उदयसे क्षुधा आदि परीषह होतीं हैं इसलिये आहारादि क्रियाका संभव है उसका समाधान कहते हैं;—

जं णोकसायविग्घचउक्काण बलेण दुक्खपहुदीणं।
असुहपयडिणुदयभवं इंदियखेदं हवे दुक्खं ॥ ६१० ॥

यत् नोकषायविघ्नचतुष्काणां बलेन दुःखप्रभृतीनाम्।
अशुभप्रकृतीनामुदयभवं इंद्रियखेदं भवेत् दुःखं ॥ ६१० ॥

अर्थ—जो नोकषाय और चार अन्तरायके उदयके बलसे असाता वेदनी आदि अशुभ प्रकृतियोंके उदयसे उत्पन्न हुआ ऐसा इन्द्रियोंके खेद (आकुलता) उसका नाम दुःख है। वह केवलीके नहीं है ॥ ६१० ॥

जं णोकसायविग्घचउक्काण बलेण सादपहुदीणं।
सुहपयडीणुदयभवं इंदियतोसं हवे सोक्खं ॥ ६११ ॥

यत् नोकषायविघ्नचतुष्काणां बलेन सातप्रभृतीनाम्।
शुभप्रकृतीनामुदयभवं इंद्रियतोषं भवेत् सौख्यम् ॥ ६११ ॥

अर्थ—जो नोकषाय और चार अन्तरायके उदयके बलसे साता वेदनीय आदि शुभ प्रकृतियोंके उदयसे उत्पन्न हुआ इन्द्रियोंको संतोष (कुछ निराकुलता) उसका नाम इन्द्रियजनित सुख है। वह भी केवलीके नहीं संभव होता है ॥ ६११ ॥

उसका कारण बतलाते हैं;—

णट्ठा य रायदोसा इंदियणाणं च केवलिम्हि जदो।
तेण दु सातासादजसुहदुक्खं णत्थि इंदियजं ॥ ६१२ ॥

नष्टौ च रागद्वेषौ इंद्रियज्ञानं च केवलिनि यतः।
तेन तु सातासातजसुखदुःखं नास्ति इंद्रियजम् ॥ ६१२ ॥

अर्थ—क्योंकि केवलीमें रागद्वेष नष्ट होगये हैं और इन्द्रियजनितज्ञान भी नष्ट होगया है इसकारण साता व असाता वेदनीयके उदयसे उत्पन्न हुआ इन्द्रियजनित सुख दुःख नहीं है [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

समयस्थितिको बंधः सातस्योदयात्मको यतो तस्य ।
तेन असातस्योदयः सातस्वरूपेण परिणमति ॥ ६१३ ॥

अर्थ—क्योंकि केवली भगवानके एक समयमात्र स्थितिलिये सातावेदनीयका बन्ध होता है वह उदयस्वरूप ही है इसकारण असाताका उदय भी सातारूप होके परिणमता है। यहां परमविशुद्धि होनेसे साताका अनुभाग बहुत है इसलिये असाता जन्य क्षुधादि परीषह की वेदना नहीं है और वेदनाके विना उसका प्रतीकार आहार भी नहीं संभव होता ॥ ६१३ ॥

आगे कोई प्रश्न करे कि आहार नहीं है तो केवलीके आहारमार्गणा कैसे कही है उसका उत्तर कहते हैं;—

पडिसमयं दिव्वतमं जोगी णोकम्मदेहपडिबद्धं ।
समयपवद्धं बंधदि गलिदवसेसाउमेत्तठिदी ॥ ६१४ ॥

प्रतिसमयं दिव्यतमं योगी नोकर्मदेहप्रतिबद्धम् ।
समयप्रबद्धं बध्नाति गलितावशेषायुमात्रस्थितिः ॥ ६१४ ॥

अर्थ—सयोगकेवली जिन समय समय प्रति औदारिक शरीर संबन्धी अति उत्तम परमाणुओंके समयप्रबद्धको ग्रहण करते हैं उसकी स्थिति आयु व्यतीत होनेके बाद जितना शेष रहे उतनी है । इसलिये नोकर्मवर्गणाको ग्रहण करनेका ही नाम आहारमार्गणा है। उसका सद्भाव केवलीमें है। क्योंकि ओज १ लेप्य १ मानस १ कवल १ कर्म १ नोकर्म १ भेदसे छह प्रकारका आहार है। उनमेंसे केवलीके कर्म नोकर्म ये दो आहार होते हैं। साता वेदनीयके समयप्रबद्धको ग्रहण करता है वह कर्म आहार है और औदारिक समयप्रबद्धको ग्रहण करता है वह नोकर्म आहार है ॥ ६१४ ॥

णवरि समुग्घादगदे पदरे तह लोगपूरणे पदरे ।
णत्थि तिसमये णियमा णोकम्माहारयं तत्थ ॥ ६१५ ॥

नवरि समुद्घातगते प्रतरे तथा लोकपूरणे प्रतरे ।
नास्ति त्रिसमये नियमात् नोकर्माहारकस्तत्र ॥ ६१५ ॥

अर्थ—इतना विशेष है कि केवलसमुद्घातको प्राप्त केवलीके दो प्रतरके समय और एक लोकपूरणका समय—इसतरह तीन समयोंमें नोकर्मरूप आहार नियमसे नहीं है अन्य सब सयोगीकालमें नोकर्मका आहार है ॥ ६१५ ॥

अब जिस कालमें समुद्घात क्रिया होती है उसे कहते हैं;—

अंतोमुहुत्तमाऊ परिसेसे केवली समुग्घादं ।
दंड कवाटं पदरं लोगस्स य पूरणं कुणई ॥ ६१६ ॥

अंतर्मुहूर्तमायुषि परिशेषे केवली समुद्घातम्।
दंडं कपाटं प्रतरं लोकस्य च पूर्णं करोति ॥ ६१६ ॥

अर्थ—अपनी आयु अन्तर्मुहूर्तमात्र शेष रहनेपर केवली समुद्घात क्रिया करते हैं। वह दण्ड कपाट प्रतर लोकपूर्णरूप चार तरहकी करते हैं ॥ ६१६ ॥

हेट्ठा दंडस्संतोमुहुत्तमावज्जिदं हवे करणं।
तं च समुग्घादस्स य अहिमुहभावो जिणिंदस्स ॥ ६१७ ॥

अधस्तनं दंडस्यांतर्मुहूर्तमावर्जितं भवेत् करणं।
तच्च समुद्घातस्य च अभिमुखभावो जिनेंद्रस्य ॥ ६१७ ॥

अर्थ—दण्डसमुद्घातकरनेके कालके पहले अन्तर्मुहूर्ततक आवर्जितकरण होता है। वह जिनेंद्र देवको समुद्घातक्रियाके सन्मुख होना है ॥ ६१७ ॥

सट्ठाणे आवज्जिदकरणेवि य णत्थि ठिदिरसाण हदी।
उदयादि अवट्ठिदया गुणसेढी तस्स दव्वं च ॥ ६१८ ॥

स्वस्थाने आवर्जितकरणेपि च नास्ति स्थितिरसयोः हतिः।
उदयादिः अवस्थिता गुणश्रेणी तस्य द्रव्यं च ॥ ६१८ ॥

अर्थ—आवर्जितकरण करनेके पहले स्वस्थानमें और आवर्जितकरणमें भी सयोगकेवलीके कांडकादि विधानकर स्थिति और अनुभागका घात नहीं होता तथा उदयादि अवस्थितरूप गुणश्रेणी आयाम है और उस गुणश्रेणीका द्रव्य भी अवस्थित है ॥ ६१८ ॥

आगे आवर्जित करणमें गुणश्रेणी आयाम दिखलाते हैं;—

जोगिस्स सेसकालो गयजोगी तस्स संखभागो य।
जावदियं तावदिया आवज्जिदकरणगुणसेढी ॥ ६१९ ॥

योगिनः शेषकालः गतयोगी तस्य संख्यभागश्च।
यावत् तावत्के आवर्जितकरणगुणश्रेणी ॥ ६१९ ॥

अर्थ—आवर्जितकरण करनेके पहलेसमय जो सयोगीका शेषकाल, अयोगीका सबकाल और अयोगीके कालका संख्यातवां भाग इन सबको मिलानेसे जितना होवे उतना आवर्जितकरणकी अवस्थित गुणश्रेणी आयाम है ॥ ६१९ ॥ अघातिया कर्मोंकी स्थिति आयुके समान करनेके लिये जीवके प्रदेशोंका फैलनारूप केवलिसमुद्घात होता है। पहले समयमें दण्ड, दूसरे समयमें कपाट, तीसरे समयमें प्रतर करता है उस समय वातवलयके विना बाकी सब लोकमें आत्माके प्रदेश फैल जाते हैं सो इसका नाम मंथान भी है और चौथे समयमें लोकपूरण होता है उस समय वातवलयसहित सब लोकमें आत्माके प्रदेश फैल जाते हैं, ऐसे चार समयमें चारतरह समस्त प्रदेश फैलते हैं।

आगे कार्यविशेष जो होता है उसे कहते हैं;—

ठिदिखंडमसंखेज्जे भागे रसखंडमप्पसत्थाणं।
हणदि अणंता भागा दंडादीचउसु समएसु ॥ ६२० ॥

स्थितिखंडमसंख्येयान् भागान् रसखंडमप्रशस्तानाम्।
हंति अनंतान् भागान् दंडादिचतुर्षु समयेषु ॥ ६२० ॥

अर्थ—दण्डादिके चार समयोंमें स्थितिखण्ड असंख्यात बहुभागमात्र और अप्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागखण्ड अनन्त भागमात्र घातता है ॥ ६२० ॥

चउसमएसुरसस्स य अणुसमओवट्टणा असत्थाणं।
ठिदिखंडस्सिगिसमयिगघादो अंतोमुहुत्तुवरिं ॥ ६२१ ॥

चतुःसमयेषु रसस्य च अनुसमयापवर्तनमप्रशस्तानाम्।
स्थितिखंडस्यैकसमयिकघातो अंतर्मुहूर्तोपरि ॥ ६२१ ॥

अर्थ—चारसमयोंमें अप्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागका अनुसमय अपवर्तन होता है अर्थात् समय समय प्रति अनुभाग घटता है। और स्थितिखण्डका घात एकसमयकर होता है। एक एक समयमें एकएक स्थितिकांडक घात करना यह माहात्म्य समुद्घात कियाका है। लोकपूर्णके बाद अन्तर्मुहूर्तकालकर स्थिति अनुभागका घटाना जानना ॥ ६२१ ॥

जगपूरणम्हि एक्का जोगस्स य वग्गणा ठिदी तत्थ।
अंतोमुहुत्तमेत्ता संखगुणा आउआ होहि ॥ ६२२ ॥

जगत्पूरणे एका योगस्य च वर्गणा स्थितिस्तत्र।
अंतर्मुहूर्तमात्रा संख्यगुणा आयुषो भवति ॥ ६२२ ॥

अर्थ—लोकपूर्णके समयमें योगोंकी एक वर्गणा है और उसी समयमें अन्तर्मुहूर्तमात्र शेष रहती है वह शेष रहे आयुसे संख्यातगुणी है ॥ ६२२ ॥

आगे लोकपूर्णक्रियाके बाद समुद्घात क्रियाको समेटता है उसका क्रम कहते हैं;—

एत्तो पदर कवाडं दंडं पथा चउत्थसमयम्हि।
पविसिय देहं तु जिणो जोगणिरोधं करेदीदि ॥ ६२३ ॥

अतः प्रतरं कपाटं दंडं प्रतीत्य चतुर्थसमये।
प्रविश्य देहं तु जिनो योगनिरोधं करोतीति ॥ ६२३ ॥

अर्थ—इस लोकपूर्णके बाद प्रथमसमयमें लोकपूर्णको समेट प्रतररूप, दूसरे समयमें प्रतरको समेट कपाटरूप, तीसरे समयमें कपाट समेट दण्डरूप और चौथे समयमें दण्डको समेट सब प्रदेश मूल शरीरमें प्रवेश करते हैं। यहां क्रिया करने समेटनेमें सात समय होते हैं। उसके बाद अन्तर्मुहूर्त विश्रामकर योगोंका निरोध करना है ॥ ६२३ ॥

पादरमण वचि उस्सास कायजोगं तु सुहुमजचउक्कं ।
रुंभदि कमसो बादरसुहुमेण य कायजोगेण ॥ ६२४ ॥
बादरमनो वच उच्छ्वास काययोगं तु सूक्ष्मजचतुष्कम् ।
रुणद्धि क्रमशो बादरसूक्ष्मेण च काययोगेन ॥ ६२४ ॥

अर्थ—बादर काययोगरूप होकर बादर मनयोग, वचनयोग, उच्छ्वास, काययोग—इन चारोंका क्रमसे नाश करता है और सूक्ष्मकाय योगरूप होकर उन चारों सूक्ष्मोंको क्रमसे नाश करता है ॥ ६२४ ॥

आगे कहते हैं कि बादरयोग सूक्ष्मरूप परिणमानेसे कैसे होते हैं;—

सण्णिबिसुहुमणि पुण्णे जहण्णमणवयणकायजोगादो ।
कुणदि असंखगुणूणं सुहुमणिपुण्णवरदोवि उस्सासं ॥ ६२५ ॥
संज्ञिद्वित्रिसूक्ष्मनि पूर्णे जघन्यमनोवचनकाययोगतः ।
करोति असंख्यगुणोनं सूक्ष्मनिपूर्णावरतोपि उच्छ्वासं ॥ ६२५ ॥

अर्थ—संज्ञीपर्याप्तके जघन्य मनोयोग है उससे असंख्यातगुणा कम सूक्ष्म मनोयोग करता है, दो इंद्रियपर्याप्तके जघन्य वचनयोग है उससे असंख्यातगुणा कम सूक्ष्मवचनयोग करता है और सूक्ष्मनिगोदिया पर्याप्तके जघन्य काययोगसे असंख्यातगुणा कम सूक्ष्मकाययोग करता है। तथा सूक्ष्मनिगोदिया पर्याप्तकके जघन्य उच्छ्वाससे असंख्यातगुणा कम सूक्ष्म उच्छ्वास करता है ॥ ६२५ ॥

एक्केकस्स णिरुंभणकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो हु ।
सुहुमं देहणिमाणमाणं हियमाणि करणाणि ॥ ६२६ ॥
एकैकस्य निरुंधनकालो अंतर्मुहूर्तमात्रो हि ।
सूक्ष्मं देहनिर्माणं आनं हीयमानं करणानि ॥ ६२६ ॥

अर्थ—एक एक बादर व सूक्ष्म मनोयोगादिके निरोध करनेका काल प्रत्येक अन्तर्मुहूर्तमात्र है और सूक्ष्मकाययोगमें स्थित सूक्ष्म–उश्वासके नष्ट करनेके बाद सूक्ष्मकाययोगके नाश करनेको प्रवर्तता है ॥ उसके विनाइच्छा कार्य होते हैं ॥ ६२६ ॥

सुहुमस्स य पढमादो मुहुत्तअंतोत्ति कुणदि हु अपुव्वे ।
पुव्वगफड्डगहेट्ठा सेडिस्स असंखभागमिदो ॥ ६२७ ॥
सूक्ष्मस्य च प्रथमात् मुहूर्तान्तरिति करोति हि अपूर्वान् ।
पूर्वगस्पर्धकाधस्तात् श्रेण्या असंख्यभागमितम् ॥ ६२७ ॥

अर्थ—[illegible] प्रथमसमयसे लेकर अन्तर्मुहूर्तकालतक पूर्वस्पर्धकोंके नीचे जघन्यस्पर्धकके [illegible] अपूर्वस्पर्धक करता है ॥ ६२७ ॥

पुव्वादिवग्गणाणं जीवपदेसाविभागपिंडादो ।
होदि असंखं भागं अपुव्वपढमम्हि ताण दुगं ॥ ६२८ ॥
पूर्वादिवर्गणानां जीवप्रदेशाविभागपिंडतः ।
भवति असंख्यं भागमपूर्वप्रथमे तयोर्द्विकम् ॥ ६२८ ॥

अर्थ—पूर्व स्पर्धकोंके जीवके प्रदेशोंके पिंडसे और आदि वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदोंके पिंडसे अपूर्वस्पर्धकके प्रथमसमयमें वे दोनों असंख्यातवें भागमात्र होते हैं॥ ६२८॥

उक्कट्टदि पडिसमयं जीवपदेसे असंखगुणियकमे ।
कुणदि अपुव्वफड्ढयं तग्गुणहीणकमेणेव ॥ ६२९ ॥
अपकर्षति प्रतिसमयं जीवप्रदेशान् असंख्यगुणितक्रमेण ।
करोति अपूर्वस्पर्धकं तद्गुणहीनक्रमेणैव ॥ ६२९ ॥

अर्थ—द्वितीयादि समयोंमें समय समय प्रति असंख्यातगुणा क्रमकर जीवप्रदेशोंको अपकर्षण करता है और असंख्यातगुणा हीन क्रमकर नवीन (अपूर्व) स्पर्धक करता है ॥ ६२९ ॥

सेढिपदस्स असंखं भागं पुव्वाण फड्ढयाणं वा ।
सव्वे होंति अपुव्वा हु फड्ढया जोगपडिवद्धा ॥ ६३० ॥
श्रेणिपदस्यासंख्यं भागं पूर्वेषां स्पर्धकानां वा ।
सर्वे भवंति अपूर्वा हि स्पर्धका योगप्रतिबद्धा ॥ ६३० ॥

अर्थ—सब समयोंमें किये योग संबन्धी अपूर्वस्पर्धकोंका प्रमाण जगच्छ्रेणीके प्रथमवर्गमूलके असंख्यातवें भागमात्र है अथवा सब पूर्वस्पर्धकोंके प्रमाणके असंख्यातवें भागमात्र है ॥ ६३० ॥

एत्तो करेदि किट्टिं मुहुत्तअंतोत्ति ते अपुव्वाणं ।
हेट्ठादु फड्ढयाणं सेढिस्स असंखभागमिदं ॥ ६३१ ॥
इतः करोति कृष्टिं मुहूर्तांतरिति ता अपूर्वेषाम् ।
अधस्तनात् स्पर्धकानां श्रेण्या असंख्यभागमितं ॥ ६३१ ॥

अर्थ—उसके बाद अन्तर्मुहूर्तकालतक अपूर्वस्पर्धकोंके नीचे सूक्ष्मकृष्टि करता है उन सूक्ष्मकृष्टियोंका प्रमाण जगच्छ्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र, एक स्पर्धकमें वर्गणाओंका प्रमाण उसके असंख्यातवें भागमात्र है ॥ ६३१ ॥

अपुव्वादिवग्गणाणं जीवपदेसाविभागपिंडादो ।
होंति असंखं भागं किट्टीपढमम्हि ताण दुगं ॥ ६३२ ॥

अपूर्वादिवर्गणानां जीवप्रदेशाविभागपिंडतः ।

भवंति असंख्यं भागं कृष्टिप्रथमे तयोर्द्विकम् ॥ ६३२ ॥

अर्थ—अपूर्वस्पर्धकसंबन्धी सब जीवप्रदेशोंके और अपूर्वस्पर्धककी प्रथमवर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदोंके असंख्यातवें भागमात्र कृष्टिकरणके प्रथमसमयमें वे दोनों होते हैं ॥ ६३२ ॥

उक्कट्टदि पडिसमयं जीवपदेसे असंखगुणियकमे ।

तंगुणहीणकमेण य करेदि किट्टिं तु पडिसमए ॥ ६३३ ॥

अपकर्षति प्रतिसमयं जीवप्रदेशान् असंख्यगुणितक्रमेण ।

तद्गुणहीनक्रमेण च करोति कृष्टिं तु प्रतिसमये ॥ ६३३ ॥

अर्थ—द्वितीयादि समयोंमें समय समय प्रति असंख्यातगुणक्रमकर जीवके प्रदेशोंको अपकर्षण करता है और समय समय प्रति पूर्वसमयमें की हुई कृष्टियोंके नीचे असंख्यातगुना घटता क्रमलिये नवीन कृष्टियां करता है ॥ ६३३ ॥

सेढिपदस्स असंखं भागमपुव्वाण फड्डयाणं व ।

सव्वाओ किट्टीओ पल्लस्स असंखभागगुणिदकमा ॥ ६३४ ॥

श्रेणिपदस्य असंख्यं भागं अपूर्वाणां स्पर्धकानां वा ।

सर्वाः कृष्टयः पल्यस्य असंख्यभागगुणितक्रमाः ॥ ६३४ ॥

अर्थ—सब समयोंमें की हुई कृष्टियोंका प्रमाण जगच्छ्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र है अथवा अपूर्वस्पर्धकोंके प्रमाणके असंख्यातवें भागमात्र हैं । ये कृष्टियां क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित हैं ॥ ६३४ ॥

एत्थापुव्वविहाणं अपुव्वफड्डयविहिं व संजलणे ।

बादरकिट्टिविहिं वा करणं सुहुमाण किट्टीणं ॥ ६३५ ॥

अत्रापूर्वविधानं अपूर्वस्पर्धकविधिरिव संज्वलने ।

बादरकृष्टिविधिरिव करणं सूक्ष्माणां कृष्टीनाम् ॥ ६३५ ॥

अर्थ—यहांपर दोनोंके अपूर्वस्पर्धक करनेका विधान पूर्व कहे संज्वलन कषायके अपूर्वस्पर्धक करनेके विधानके समान जानना और दोनोंकी सूक्ष्मकृष्टि करनेका विधान संज्वलनकी बादर कृष्टि करनेके विधानके समान जानना ॥ ६३५ ॥

किट्टीकरणे चरिमे से काले उभयफड्डये सव्वे ।

णासेइ मुहुत्तं तु किट्टीगदवेदगो जोगी ॥ ६३६ ॥

[illegible]

[illegible]

अर्थ—कृष्टिकरणकालके अन्तसमय हुए बाद अपने कालमें सब पूर्व अपूर्व स्पर्धकरूप प्रदेशोंको नाश करता है। और इस समयसे लेकर सयोगी गुणस्थानके अन्तपर्यंत जो अन्तर्मुहूर्तकाल उसमें कृष्टिको प्राप्त योगको वह सयोगकेवली अनुभव करता है ॥ ६३६ ॥

पढमे असंखभागं हेट्ठुवरिं णासिदूण विदियादी ।
हेट्ठुवरिमसंखगुणं कमेण किट्टिं विणासेदि ॥ ६३७ ॥
प्रथमे असंख्यभागं अधस्तनोपरि नाशयित्वा द्वितीयादौ ।
अधस्तनोपर्यसंख्यगुणं क्रमेण कृष्टिं विनाशयति ॥ ६३७ ॥

अर्थ—कृष्टिवेदककालके प्रथमसमयमें थोड़े अविभागप्रतिच्छेदयुक्त नीचेकी और बहुत अविभागप्रतिच्छेदयुक्त ऊपरकी असंख्यातवें भागमात्र कृष्टियोंको बीचकी कृष्टिरूप परिणमाके नाश करता है। और द्वितीयादि समयोंमें उनसे असंख्यातगुणा क्रमलिये नीचे ऊपरकी कृष्टियोंको बीचकी कृष्टिरूप परिणमाके नाश करता है ॥ ६३७ ॥

मज्झिम बहुभागुदया किट्टिं वेक्खिय विसेसहीणकमा ।
पडिसमयं सत्तीदो असंखगुणहीणया होंति ॥ ६३८ ॥
मध्या बहुभागोदयाः कृष्टिमपेक्ष्य विशेषहीनक्रमाः ।
प्रतिसमयं शक्तितो असंख्यगुणहीनका भवंति ॥ ६३८ ॥

अर्थ—सब कृष्टियोंके असंख्यातबहुभागमात्र बीचकी कृष्टियां उदयरूप होतीं हैं इस अपेक्षा प्रतिसमय विशेष घटता क्रम लिये हैं। इसप्रकार कृष्टिके नाश करनेसे अविभाग प्रतिच्छेदरूप शक्तिकी अपेक्षा प्रथमसमयसे द्वितीयादि सयोगीके अन्तसमयतक असंख्यात गुणा घटता क्रम लिये योग पाये जाते हैं ॥ ६३८ ॥

किट्टिगजोगी झाणं झायदि तदियं खु सुहुमकिरियं तु ।
चरिमे अ संखभागे किट्टीणं णासदि सजोगी ॥ ६३९ ॥
कृष्टिगयोगी ध्यानं ध्यायति तृतीयं खलु सूक्ष्मक्रियं तु ।
चरमे च संख्यभागान् कृष्टीनां नाशयति सयोगी ॥ ६३९ ॥

अर्थ—इसतरह सूक्ष्मकृष्टिका वेदक सयोगी जिन तीसरा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिनामा शुक्लध्यानको ध्यावता है। यहां चिंताका कारण योग है उसके निरोधको भी ध्यान "कारणमें कार्यका उपचार कर" कहा गया है। इसप्रकार कृष्टियोंको नाश करता हुआ सयोगी अपने अन्तसमयमें कृष्टियोंका संख्यात बहुभाग शेष रहे हुएको नाश करता है ॥ ६३९॥

जोगिस्स सेसकालं मोत्तूण अजोगिसव्वकालं च ।
चरिमं खंडं गेण्हदि सीसेण य उवरिमट्ठिदीओ ॥ ६४० ॥

योगिनः शेषकालं मुक्त्वा अयोगिसर्वकालं च ।
चरमं खंडं गृह्णाति शीर्षेण च उपरिस्थितेः ॥ ६४० ॥

अर्थ—सयोगी गुणस्थानका अन्तर्मुहूर्तमात्र काल शेष रहनेपर वेदनीय नाम गोत्रका अन्तस्थितिकांडकको ग्रहण करता है उसमें सयोगीका शेष रहा हुआ काल और अयोगीका सब काल मिलाकर जो प्रमाण हो उतने निषेकोंको छोड़कर शेष सब स्थितिके गुणश्रेणीशीर्ष सहित ऊपरकी स्थितिके निषेकोंके नाश करनेका प्रारंभ करता है ॥ ६४० ॥

तत्थ गुणसेढिकरणं दिज्जादिकमो य सम्मखवणं वा ।
अंतिमफालीपडणं सजोगगुणठाणचरिमम्हि ॥ ६४१ ॥

तत्र गुणश्रेणिकरणं देयादिक्रमश्च सम्यक्क्षपणमिव ।
अंतिमफालिपतनं सयोगगुणस्थानचरमे ॥ ६४१ ॥

अर्थ—यहां गुणश्रेणीका करना वा देय द्रव्यादिका अनुक्रम सम्यक्त्वमोहनीयके क्षपणाविधानकी तरह जानना । और सयोगी गुणस्थानके अन्तसमयमें अघातियाओंके अन्तकांडककी अन्तफालिका पतन होता है ॥ ६४१ ॥ इसप्रकार सयोगीके अन्तसमयमें अघातियोंकी अन्तफालिका पतन, योगका निरोध और सयोगगुणस्थानकी समाप्ति—ये तीनों एक ही समय होते हैं । इसतरह सयोगकेवलीगुणस्थानका कथन समाप्त हुआ ॥

से काले जोगिजिणो ताहे आउगसमा हि कम्माणि ।
तुरियं तु समुच्छिण्णं किरियं झायदि अयोगिजिणो ॥ ६४२ ॥

स्वे काले योगिजिनः तत्र आयुष्कसमानि कर्माणि ।
तुरीयं तु समुच्छिन्नक्रियं ध्यायति अयोगिजिनः ॥ ६४२ ॥

अर्थ—उसके बाद अपनेकालमें अयोगी जिन होता है वहां आयुकर्मके समान अघातियाओंकी स्थिति होती है । वह अयोगी जिन चौथा समुच्छिन्न क्रियानिवृत्तिनामा शुक्लध्यानको ध्याता है ॥ भावार्थ—उच्छेद हुई मन वचन कायकी क्रिया और निवृत्ति अर्थात् प्रतिपातता इन दोनोंसे रहित यह ध्यान है इसलिये इसका सार्थक नाम है । यहांपर भी ध्यानका उपचार पहलेकी तरह जानना । सब आस्रवरहित केवलीके शेपकर्मोंकी निर्जराका कारण जो निज आत्मामें प्रवृत्ति उसीका नाम ध्यान है ॥ ६४२ ॥

सीलेसिं संपत्तो णिरुद्धणिस्सेसआसओ जीवो ।
बंधरयविप्पमुक्को गयजोगो केवली होई ॥ ६४३ ॥

शीलेशित्वं संप्राप्तः निरुद्धनिःशेषास्रवो जीवः ।
बंधरजोविप्रमुक्तः गतयोगः केवली भवति ॥ ६४३ ॥

अर्थ—समस्त शीलगुणका स्वामी हुआ सब आस्रवोंको रोककर कर्मबन्धरूपी रज (धूलि) रहित हुआ योग रहित अयोगी केवली होता है। भावार्थ—यद्यपि सयोगी जिनके सब शील गुणोंका स्वामीपना सम्भवता है परंतु योगोंका आस्रव पाया जाता है इसलिये सकल संवरके न होनेसे शीलेशस्थान सम्भव है। और यह अयोगी जिन सब तरहसे निरास्रव और निर्बंध होगया है ॥ ६४३ ॥

बाहत्तरिपयडीओ दुचरिमगे तेरसं च चरिमम्हि ।
झाणजलणेण कवलिय सिद्धो सो होदि से काले ॥ ६४४ ॥

द्वासप्ततिप्रकृतयः द्विचरमके त्रयोदश च चरमे ।
ध्यानज्वलनेन कवलिताः सिद्धः स भवति स्वे काले ॥ ६४४ ॥

अर्थ—अयोगीका काल पांच ह्रस्व अक्षर उच्चारणकालके समान है। वहां एक एक समयमें एक एक निषेक गलनरूप जो अधःस्थितिगलन उससे क्षीण हुई उस कालके द्विचरमसमयमें बहत्तरि प्रकृतियां और अन्तसमयमें तेरह प्रकृतियां शुक्लध्यानरूपी अग्निसे भस्मीभूत (नष्ट) होती है। ऐसे क्षयकर अनन्तर समयमें सिद्ध होता है। जैसे कालिमासे रहित होके शुद्ध सुवर्ण सोना ही होवे उसीतरह यह जीव सब कर्ममल रहित कृतकृत्यस्वरूप सिद्ध होता है ॥ ६४४ ॥ उन बहत्तर और तेरह प्रकृतियोंके नाम कहते हैं—अनुदयरूप वेदनीय १ देवगति १ शरीर पांच ५ बन्धन पांच ५ संघात पांच ५ संस्थान छह ६ आंगोपांग तीन ३ संहनन छह ६ वर्णादिक वीस २० देवगत्यानुपूर्वी १ अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ उच्छ्वास १ अप्रशस्तविहायोगति १ प्रशस्तविहायोगति १ अपर्याप्त १ प्रत्येक १ स्थिर १ अस्थिर १ शुभ १ अशुभ १ दुर्भग १ सुस्वर १ दुःस्वर १ अनादेय १ अयशस्कीर्ति १ निर्माण १ नीचगोत्र १—ये बहत्तरि प्रकृतियां हैं। और उदयरूप सातावेदनीय १ मनुष्यायु १ मनुष्यगति १ पंचेंद्रीजाति १ मनुष्यानुपूर्वी १ त्रस १ बादर १ पर्याप्त १ सुभग १ आदेय १ यशस्कीर्ति १ तीर्थंकर १ उच्चगोत्र १—ये तेरह प्रकृतियां अन्तसमयमें क्षय होती हैं।

तिहुवणसिहरेण मही वित्थारे अट्ठजोयणुदयथिरे ।
धवलच्छत्तायारे मणोहरे ईसिपब्भारे ॥ ६४५ ॥

त्रिभुवनशिखरेण मही विस्तारे अष्ट योजनान्युदयस्थिरा ।
धवलछत्राकारा मनोहरा ईषत्प्राग्भारा ॥ ६४५ ॥

अर्थ—वह सिद्ध [illegible] तीन लोकके शिखरपर ईषत्प्राग्भार नामकी आठ-वीं पृथ्वीके ऊपर एकसमयमें जाकर [illegible] प्रमाण होता है। कैसी पृथ्वी है उसे कहते हैं। वो पृथ्वी मनुष्यक्षेत्रके समान [illegible]

ऐसे आकार है। आठ योजन ऊंची है, सिर है और सफेद छत्रके आकार है स्वेत वर्ण है बीचमें मोटी किनारेपर पतली है और मनको हरनेवाली है॥ यद्यपि ईषत्प्राग्भार नाम पृथ्वी मनोदधिवान तनुवात है परंतु यहां इस पृथ्वीके बीचमें सिद्धशिला पाई जाती है उसकी अपेक्षा ऐसा कथन है। धर्मास्तिकायके अभावसे यहांसे आगे गमन नहीं होता, यहां ही चरम (अन्तके) शरीरसे कुछ कम आकाररूप जीवद्रव्य अनन्त ज्ञानानन्दमय विराजता है॥ ६४५॥

पुव्वण्हस्स तिजोगो संतो खीणो य पढमसुक्कं तु।
विदियं सुक्कं खीणो इगिजोगो झायदे झाणी॥ ६४६॥

पूर्वज्ञस्य त्रियोगः शांतः क्षीणश्च प्रथमशुक्लं तु।
द्वितीयं शुक्लं क्षीण एकयोगो ध्यायति ध्यानी॥ ६४६॥

अर्थ—जो महामुनि पूर्वोंका ज्ञाता तीन योगोंका धारक उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणीवर्ती है वह पृथक्त्ववितर्कवीचार नामा पहला शुक्लध्यानको ध्याता है और दूसरे शुक्लध्यानको क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती तीनयोगोंमें एक योगका धारक होकर ध्याता है। यहांपर पृथक्त्ववितर्क वीचार उसे कहते हैं कि जुदा जुदा भावश्रुत ज्ञानकर अर्थ व्यञ्जन योगोंका संक्रमण होना। उसमें अर्थ तो द्रव्य गुण पर्याय हैं, व्यञ्जन श्रुतके शब्द हैं और योग मन वचन काय हैं—इनका पलटना वीचार कहा जाता है। इसतरह जिसध्यानमें प्रवृत्ति होना वही पृथक्त्ववितर्कवीचार है। और जिस जगह एकता लिये भावश्रुतसे पलटना नहीं होता अर्थात् जिस अर्थको, श्रुतरूप शब्दको, जिस योगकी प्रवृत्तिलिये ध्यावे उसको वैसे ही ध्यावे पलटे नहीं ऐसा एकत्ववितर्क ध्यान जानना॥ ६४६॥

सो मे तिहुवणमहियो सिद्धो बुद्धो णिरंजणो णिच्चो।
दिसदु वरणाणदंसणचरित्तसुद्धिं समाहिं च॥ ६४७॥

स मे त्रिभुवनमहितः सिद्धः बुद्धो निरंजनो नित्यः।
दिशतु वरज्ञानदर्शनचारित्रशुद्धिं समाधिं च॥ ६४७॥

अर्थ—तीनलोकसे पूजित, सबके जाननेवाले, कर्मरूपी अञ्जनसे रहित और विनाशरहित ऐसे वे सिद्ध भगवान मुझे उत्कृष्ट ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी शुद्धि और समाधि (अनुभवदशा या सन्यासमरण) को देवें॥ भावार्थ—यहां सिद्धोंके मोक्ष अवस्था होना उसका स्वरूप सब कर्मोंका सवनाशसे नाश होनेसे संपूर्ण आत्मस्वरूपकी प्राप्ति ही है। इस बारेमें अन्यमतवाले विपरीतकथन करते हैं वह श्रद्धान नहीं करना। उनमेंसे बौद्ध कहता है—जैसे दीपक बुझना उसीतरह आत्माका स्कंधसन्तानका नाश होनेसे अभाव

होना वह निर्वाण (मोक्ष) है । उसको आचार्य समझाते हैं कि—जहां मूलवस्तुका नाश होजावे तो उसके लिये उपाय क्यों करना। ज्ञानी पुरुष तो अपूर्वलाभके लिये उपाय करते हैं, इसलिये अभावमात्र मोक्ष कहना ठीक नहीं है ॥ दूसरा नैयायिकमतवाला कहता है—बुद्धि सुख दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न धर्म अधर्म संस्कार—इन नौ आत्माके गुणोंका नाश होना वही मोक्ष है । उसको भी पूर्वकथितवचनसे समाधान करना चाहिये, क्योंकि जहां विशेषरूप गुणोंका अभाव हुआ वहां आत्मवस्तुका ही अभाव आया सो ऐसा ठीक नहीं है ॥ तीसरा सांख्यमतवाला कहता है—कार्य कारणसंबन्धसे रहित आत्माके बहुत सोते हुए पुरुषकी तरह अव्यक्त चैतन्यरूप होना वह मोक्ष है । उसका भी समाधान पूर्वकथित वचनसे होचुका, यहांपर अपना चैतन्यगुण था वह उलटा अव्यक्त होजाता है ॥ इसतरह नानाप्रकार अन्यथा कहते हैं उनका निराकरण जैनन्याय शास्त्रोंमें किया गया है वहांसे जानना । मोक्ष अवस्थाको प्राप्त सिद्ध भगवान हमेशा अनन्त अतींद्रिय आनन्दका अनुभव करते हैं । क्योंकि जब इन्द्रिय मनकर कुछ ज्ञान होनेमें कुछ निराकुलता होती है तब ही आत्मा अपनेको सुखी मानता है लेकिन जिस जगह सबका जानना हुआ और सर्वथा निराकुल हुआ वहांपर तो परम सुख कैसे न हो होता ही है । तीनलोकके तीनकालके पुण्यवान् जीवोंके सुखसे भी अनन्तगुणा सुख सिद्धोंके एक समयमें होता है । क्योंकि संसारमें सुख ऐसा है कि जैसे महारोगी रोगकी कमी होनेसे अपनेको सुखी मानता है और सिद्धोंके सुख ऐसा है कि जैसे रोगरहित निराकुल पुरुष स्वभावसे ही सुखी हो । ऐसे अनन्तसुखमें विराजमान सम्यक्त्वादि आठगुण सहित लोकाग्रमें विराजे हुए सिद्धभगवान हैं वे मेरा तथा सबका कल्याण करो ॥ ६४७ ॥ इसप्रकार बाहुबलि मामा मंत्रीकर पूजित जो माधव चंद्र आचार्य उनने क्षपणासार ग्रन्थ रचा । वह यतिवृषभ आचार्य मूलकर्ता और वीरसेन आचार्य टीका कर्ता ऐसे धवल जयधवल शास्त्रके अनुसार क्षपणासार ग्रन्थ किया गया है । उसके अनुसार यहां भी क्षपणाके वर्णनरूप लब्धिसारकी गाथा उनका व्याख्यान किया है ॥

इसप्रकार श्रीनेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती विरचित लब्धिसारमें चारित्रलब्धि अधिकारमें क्षायिकचारित्रको कहनेवाला कर्मोंकी क्षपणारूप तीसरा अधिकार पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥

ग्रन्थकर्तृप्रशस्तिः ।

अब आचार्य लब्धिसार शास्त्रकी समाप्ति करनेमें अपना नाम प्रगट करते हैं;—

वीरिंदणंदिवच्छेणप्पसुदेणभयणंदिसिस्सेण ।
दंसणचरित्तलद्धी सुसूयिया णेमिचंदेण ॥ ६४८ ॥

वीरेंद्रनंदिवत्सेनाल्पश्रुतेनाभयनंदिशिष्येण ।
दर्शनचारित्रलब्धिः सुसूचिता नेमिचंद्रेण ॥ ६४८ ॥

अर्थ—वीरनंदि और इन्द्रनंदि आचार्यका वत्स, अभयनन्दि आचार्यका शिष्य ऐसे अल्पज्ञानी मुझ नेमिचन्द्रने इस लब्धिसार शास्त्रमें दर्शन चारित्रकी लब्धि अच्छीतरह दिखलाई है ॥ यहां ज्ञानदानसे पालन करनेकी अपेक्षा वत्स कहा है । और दीक्षाकी अपेक्षा शिष्य कहा है ॥ ६४८ ॥

अंतमंगल ।

अब आचार्य अपने गुरूके नमस्काररूप अन्तमंगल करते हैं;—

जस्स य पायपसाए णणंतसंसारजलहिमुत्तिण्णो ।
वीरिंदणंदिवच्छो णमामि तं अभयणंदिगुरुं ॥ ६४९ ॥

यस्य च पादप्रसादेनानंतसंसारजलधिमुत्तीर्णः ।
वीरेंद्रनंदिवत्सो नमामि तमभयनंदिगुरुम् ॥ ६४९ ॥

अर्थ—वीरनंदि और इंद्रनंदि आचार्यका वत्स मैं नेमिचंद्र ग्रन्थकर्ता जिसके चरणकमलोंके प्रसादसे अनन्तसंसारसमुद्रसे पार होगया उन अभयनंदि नामा गुरूको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ६४९ ॥

इसतरह क्षपणासार गर्भित लब्धिसारका व्याख्यान संस्कृत छाया तथा संक्षिप्त हिंदीभाषाटीकासहित समाप्त हुआ । शुभं भवतु प्रकाशकपाठकयोः ।